RNI Number : MPHIN/2016/70609

ISSN NUMBER : 2455-9814

Dhingra Family Foundation USA

वर्ष : 8

अंक : 32

जनवरी-मार्च 2024

मूल्य 50 रुपये

विभोम स्वर

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

नूतन वर्षाभिनंदन 2024

शिवना प्रकाशन द्वारा प्रकाशित नई पुस्तकें

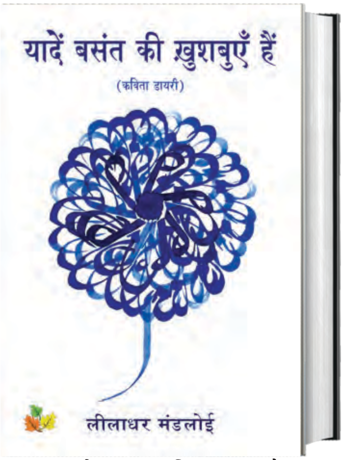

यादें बसंत की ख़ुशबू हैं
कविता डायरी
लेखक - लीलाधर मंडलोई
मूल्य- 200 रुपये, वर्ष- 2024

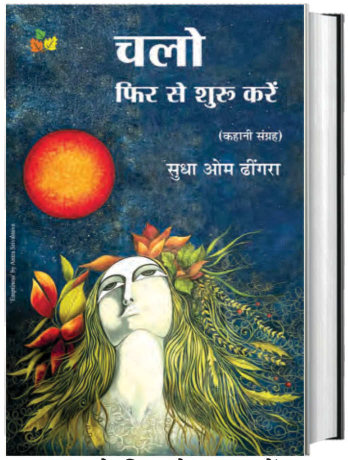

चलो फिर से शुरू करें
कहानी संग्रह
लेखक - सुधा ओम ढींगरा
मूल्य- 250 रुपये, वर्ष- 2024

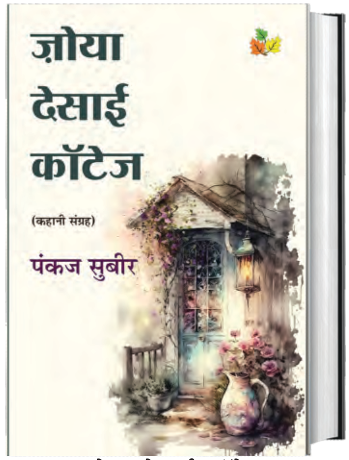

ज़ोया देसाई कॉटेज
कहानी संग्रह
लेखक - पंकज सुबीर
मूल्य- 300 रुपये, वर्ष- 2024

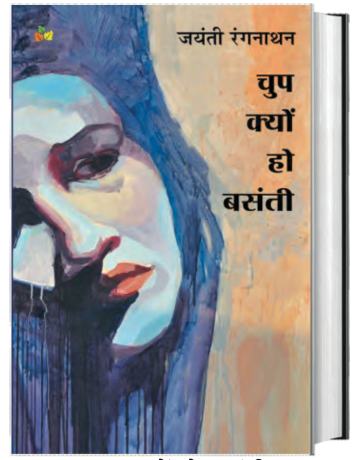

चुप क्यों हो बसंती
उपन्यास
जयंती रंगनाथन
मूल्य- 200 रुपये, वर्ष- 2024

पंख से छूटा
उपन्यास
लेखक - प्रज्ञा पांडेय
मूल्य- 300 रुपये, वर्ष- 2024

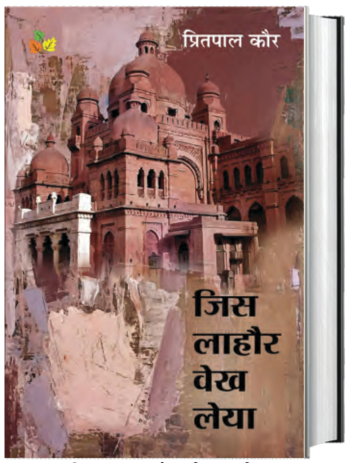

जिस लाहौर वेख लेया
यात्रा संस्मरण
लेखक - प्रितपाल कौर
मूल्य- 200 रुपये, वर्ष- 2024

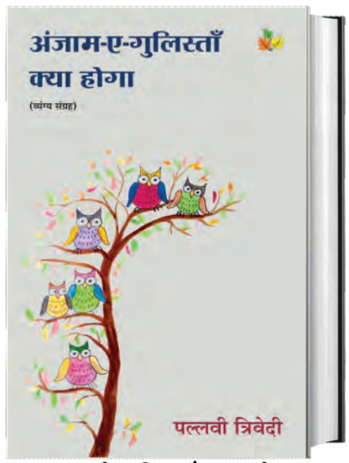

अंजामे गुलिस्ताँ क्या होगा
व्यंग्य संग्रह
लेखक - पल्लवी त्रिवेदी
मूल्य- 300 रुपये, वर्ष- 2024

डोर अंजानी सी
कहानी संग्रह
लेखक - ममता त्यागी
मूल्य- 250 रुपये, वर्ष- 2024

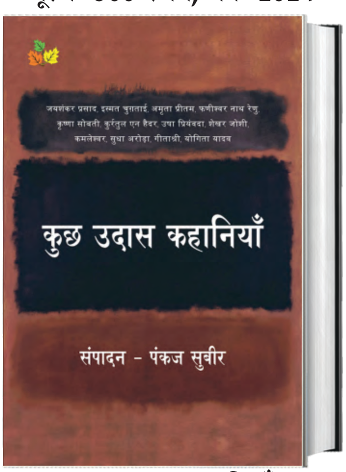

कुछ उदास कहानियाँ
कहानी संकलन
संपादक - पंकज सुबीर
मूल्य- 200 रुपये, वर्ष- 2024

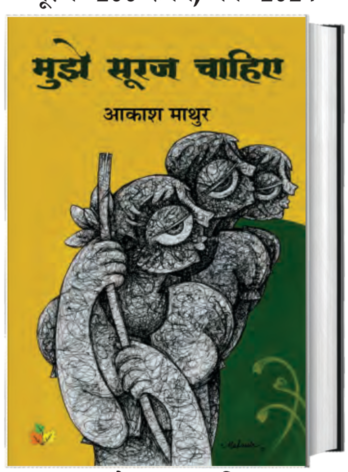

मुझे सूरज चाहिए
उपन्यास
आकाश माथुर
मूल्य- 200 रुपये, वर्ष- 2024

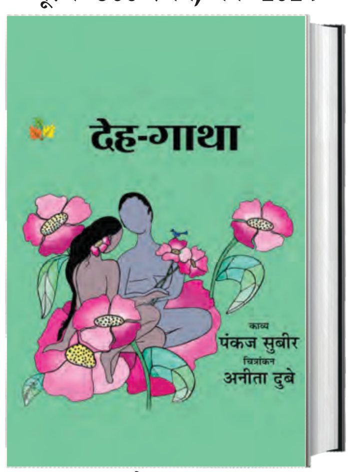

देह-गाथा
काव्य-चित्र
लेखक - पंकज सुबीर, अनीता दुबे
मूल्य- 250 रुपये, वर्ष- 2024

आधी दुनिया पूरा आसमान
उपन्यास
ब्रह्मदत्त शर्मा
मूल्य- 350 रुपये, वर्ष- 2024

शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने
सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in

amazon
http://www.amazon.in
flipkart.com
http://www.flipkart.com

Mobile - +91-9806162184, +91-6265665580
+91-8819806162
https://twitter.com/shivnac
https://www.facebook.com/shivna.prakashan
https://www.youtube.com/c/ShivnaCreations
Email- shivna.prakashan@gmail.com

संरक्षक एवं प्रमुख संपादक
सुधा ओम ढींगरा

संपादक
पंकज सुबीर

क़ानूनी सलाहकार
शहरयार अमजद ख़ान (एडवोकेट)

डिज़ायनिंग
सनी गोस्वामी, सुनील सूर्यवंशी, शिवम गोस्वामी

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय
पी. सी. लैब, शॉप नं. 2-7
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001
दूरभाष : +91-7562405545
मोबाइल : +91-9806162184
ईमेल : vibhomswar@gmail.com

ऑनलाइन 'विभोम-स्वर'
http://www.vibhom.com/vibhomswar.html

फेसबुक पर 'विभोम-स्वर'
https://www.facebook.com/vibhomswar

एक प्रति : 50 रुपये (विदेशों हेतु 5 डॉलर $5)

सदस्यता शुल्क
3000 रुपये (पाँच वर्ष), 6000 रुपये (दस वर्ष)
11000 रुपये (आजीवन सदस्यता)

बैंक खाते का विवरण-
Name: Vibhom Swar
Bank Name: Bank Of Baroda,
Branch: Sehore (M.P.)
Account Number: 30010200000312
IFSC Code: BARB0SEHORE

संपादन, प्रकाशन एवं संचालन पूर्णतः अवैतनिक, अव्यवसायिक। पत्रिका में प्रकाशित सामग्री लेखकों के निजी विचार हैं। संपादक तथा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों का पूर्ण उत्तरदायित्व लेखक पर होगा। पत्रिका जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्टूबर माह में प्रकाशित होगी। समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र सीहोर (मध्यप्रदेश) रहेगा।

Dhingra Family Foundation
USA

विभोम स्वर

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

वर्ष : 8, अंक : 32, त्रैमासिक : जनवरी-मार्च 2024
RNI NUMBER : MPHIN/2016/70609
ISSN NUMBER : 2455-9814

सल्फ़र कास्मोस या तितली गेंदा के फूल से पराग प्राप्त करती हुई भारतीय मधुमक्खी या एपिस सेराना इंडिका।

आवरण चित्र
पंकज सुबीर

Dhingra Family Foundation
101 Guymon Court, Morrisville
NC-27560, USA
Ph. +1-919-801-0672
Email: sudhadrishti@gmail.com

इस अंक में

विभोम स्वर

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

वर्ष : 8, अंक : 32

जनवरी-मार्च 2024

संपादकीय 3

मित्रनामा 5

साक्षात्कार

स्त्री-विमर्श और देह स्वातंत्र्य की सही परिभाषा समझनी होगी

कहानीकार-उपन्यासकार लक्ष्मी शर्मा से आकाश माथुर की बातचीत 11

विस्मृति के द्वार

सलाखों को झकझोरते हाथ और हवा में लटकते पाँव

अनिल प्रभा कुमार 14

कथा-कहानी

हर सवाल का जवाब नहीं होता

डॉ. रमाकांत शर्मा 19

क्लब क्रॉलिंग

अरुणा सब्बरवाल 25

रूपान्तरण- कीड़े से तितली

चंद्रकला जैन 28

पीपल की शीतल छाया

डॉ. रमेश यादव 31

ख़ुद के बनाए रास्ते

अदिति सिंह भदौरिया 33

देवदूत

राजा सिंह 38

भाषांतर

हाशिए से...

पंजाबी कहानी

मूल लेखक : जतिंदर सिंह हांस

अनुवाद : जसविंदर कौर बिन्द्रा 42

सिसकती ज़िंदगी

प्रवासी पंजाबी कहानी

मूल लेखक : रविंदर सिंह सोढी

अनुवाद : प्रो. नव संगीत सिंह 48

लघुकथा

कंजक

डॉ. नितीन उपाध्ये 37

रिचार्ज

सुरेश सौरभ 49

स्वाद- बेस्वाद

सतीश राठी 52

रेखाचित्र

वो पुण्यात्मा

ज्योति जैन 53

संस्कृति

अमेरिका में राम

रेखा भाटिया 55

ललित निबंध

परिचय–न तुम हमें जानो...

वंदना मुकेश 59

छूटने का बंधन

पंकज त्रिवेदी 71

व्यंग्य

खाओ पियो मौज मनाओ पार्टी

दीपक गोस्वामी 61

दीमकों का उर्दू साहित्य से प्रेम

उर्दू व्यंग्य रचना

मूल रचनाकार – मुजतबा हुसैन

अनुवाद – अखतर अली 63

दोहे

डॉ. गोपाल राजगोपाल 62

ग़ज़ल

जय चक्रवर्ती 64

के. पी. अनमोल 41

शहरों की रूह

ग्रैंड कैनियन का सफ़र-तृष्णा या तृप्ति

रेखा भाटिया 65

आख़िरी पन्ना 72

विभोम-स्वर सदस्यता प्रपत्र

यदि आप विभोम-स्वर की सदस्यता लेना चाहते हैं, तो सदस्यता शुल्क इस प्रकार है : 3000 रुपये (पाँच वर्ष), 6000 रुपये (दस वर्ष) 11000 रुपये (आजीवन सदस्यता)। सदस्यता शुल्क आप चैक / ड्राफ़्ट द्वारा विभोम स्वर (VIBHOM SWAR) के नाम से भेज सकते हैं। आप सदस्यता शुल्क को विभोम-स्वर के बैंक खाते में भी जमा कर सकते हैं, बैंक खाते का विवरण-

Name of Account : Vibhom Swar, Account Number : 30010200000312, Type : Current Account, Bank : Bank Of Baroda, Branch : Sehore (M.P.), IFSC Code : BARB0SEHORE (Fifth Character is “Zero”)

(विशेष रूप से ध्यान दें कि आई. एफ. एस. सी. कोड में पाँचवा कैरेक्टर अंग्रेज़ी का अक्षर 'ओ' नहीं है बल्कि अंक 'ज़ीरो' है।)

सदस्यता शुल्क के साथ नीचे दिये गए विवरण अनुसार जानकारी ईमेल अथवा डाक से हमें भेजें जिससे आपको पत्रिका भेजी जा सके: 1- नाम, 2- डाक का पता, 3- सदस्यता शुल्क, 4- चैक/ड्राफ़्ट नंबर, 5- ट्रांज़ेक्शन कोड (यदि ऑनलाइन ट्रांस्फ़र है), 6-दिनांक (यदि सदस्यता शुल्क बैंक खाते में नकद जमा किया है तो बैंक की जमा रसीद डाक से अथवा स्कैन करके ईमेल द्वारा प्रेषित करें।)

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय : पी. सी. लैब, शॉप नंबर. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001, दूरभाष : 07562405545, मोबाइल : 09806162184, ईमेल : vibhomswar@gmail.com

संपादकीय

क्या सोशल मीडिया आपको अकेला कर रहा है ?

सुधा ओम ढींगरा
101, गाईमन कोर्ट, मोर्रिस्विल
नॉर्थ कैरोलाइना-27560, यू.एस. ए.
मोबाइल- +1-919-801-0672
ईमेल- sudhadrishti@gmail.com

कैलिफ़ोर्निया के मेन्टल हेल्थ और वेलनेस सेंटर के क्लिनिकल साइकोलॉजिस्ट डॉक्टर माइकल टोरेस का कहना है कि सोशल मीडिया दोस्तों, दूर और पास के रिश्तेदारों से मिलने और वर्षों पहले बिछुड़ गए साथियों को ढूँढ़ने और उनके साथ समय बिताने का एक आन्ददायक स्थान हो सकता है, पर इसका प्रयोग करके फिर भी व्यक्ति अकेला हो रहा है। क्यों?

शोधकर्ताओं ने लंबे शोध के बाद पाया है, कि व्यक्ति जब अकेला महसूस करता है तो सोशल मीडिया की ओर मुड़ता है, कुछ घंटे व्यस्त भी रहता है, पर हैरानगी की बात है, घंटों सोशल मीडिया पर व्यतीत कर वह और भी एकाकी हो जाता है। उदास और निर्जन महसूस करता है, क्योंकि वह वहाँ बहुत लोगों को अपने से बेहतर देखता है, एक तरह की तुलना होने लगती है। मानवीय प्रवृति है, यह तुलना कोई नहीं करता बल्कि स्वयं व्यक्ति करता है।

मैं अपने कई संपादकीय में लिख चुकी हूँ, जहाँ सोशल मीडिया के लाभ हैं वहाँ यह हानिकारक भी बहुत है। विवेक से चला जाए तो यह ताकत बन जाता है पर 'क्राउड साइकोलॉजी' की भाँति व्यक्ति सोशल मीडिया पर भी विवेक खो देता है। वहीं से इसके घातक परिणाम शुरू हो जाते हैं। असल ज़िंदगी में तो प्रतिस्पर्द्धा लोगों में रहती है, पर यहाँ भी वही सब कुछ देखने को मिलता है। स्वस्थ प्रतिस्पर्द्धा आगे बढ़ाती है पर दिखावे की होड़ अकेलेपन की ओर ले जाती है और कभी-कभी अवसाद का कारण भी बनती है। यही सब सोशल मीडिया के मंचों पर भी मिलता है। पोस्टों पर बढ़ा-चढ़ा कर लिखा जाता है, जिन्हें देख कर अक्सर सोच लिया जाता है, "मुझे भी ऐसा करना चाहिए", "मुझे भी ऐसा जीवन जीना चाहिए", "मुझे भी इतना खुश होना चाहिए", "मेरा भी इस तरह का शरीर होने चाहिए", "मेरा भी इस तरह का परिवार होना चाहिए।" इस तरह की सोच और भावनाएँ उस अवसाद को उकसा देती हैं जो व्यक्ति के भीतर दिखावे की प्रतिस्पर्द्धा से पहले ही पनपा होता है। कई बार तो सोशल मीडिया के मंचों पर दूसरों की मित्र संख्या देख कर भी निराशा आ जाती है। कभी-कभी सामाजिक तुलना

संपादकीय

सब कुछ बीत जाने की नियति लेकर आया है। जो है उसका बीत जाना तय है। वर्ष बीतता है, नया वर्ष आता है, और एक दिन वह नया वर्ष भी बीत जाता है। अपने पीछे बहुत सी स्मृतियाँ छोड़ कर। समय के क्षरण का शिकार होकर ये स्मृतियाँ भी धीरे-धीरे धुँधली होती जाती हैं। जो आज भव्य है उसका कल खंडहर होना तय है।

इतनी बढ़ जाती है, कि दूसरों को हुए अनुभवों से वंचित होना भी खल जाता है। इस तरह के पल अकेलेपन में बढ़ोतरी करते हैं और यह एकाकीपन अवसाद की उस अवस्था में ले जाता है, जहाँ जीवन निरर्थक लगने लगता है। आकर्षक बना कर पेश की गई बातें, चीज़ें और पोस्ट मस्तिष्क पर नकारात्मक प्रभाव डालती हैं, आत्म निर्णय, आत्म विशेषण के साथ नैराश्य बढ़ने लगता है, आत्म सम्मान की कमी महसूस होने लगती है। ये स्थितियाँ मस्तिष्क और सोच को एक ऐसे दौर में ले जाती हैं, जिससे नकारात्मकता पर काबू पाना मुश्किल हो जाता है। अवसाद और निराशा ही आत्महत्या की ओर ले जाते हैं। आत्महत्या के अन्य कारणों में एक तुलनात्मक मूल्यांकन भी है, जो समाज के साथ-साथ सोशल मीडिया से भी उपजता है।

आँकड़े बताते हैं कि सोशल मीडिया पर जितना अधिक समय परिवार के सदस्य बिताते हैं, उतने ही वे अकेले होते जा रहे हैं। उनका संवाद स्वयं परिवार में भी कम होता जा रहा है और समाज से भी कटते जा रहे हैं। यह जो 'अकेलापन' पारिवारिक और सामाजिक इकाइयों में बढ़ रहा है। यह छोटे-छोटे बच्चों में भी उदासीनता बढ़ा रहा है। विश्व में अवसाद की दवाइयों की बिक्री बहुत बढ़ गई है। पूरी दुनिया में निराशा और अवसाद इतना तेज़ी से बढ़ रहा है कि यह बात संज्ञान में रहनी चाहिए कि विश्व भर में 280 मिलियन लोग अवसाद में हैं। अमेरिका में सन् 2022 में 50 हज़ार लोगों की आत्महत्या के आँकड़े हैं। भारत के अलग-अलग प्रदेशों के आँकड़े इकट्ठे किये जाएँ तो तक़रीबन यही आँकड़े बनते हैं।

मस्तिष्क में रसायनों के बदलाव से पैदा हुए अवसाद को साइकोलॉजिस्ट या साइकियाट्रिक ही ठीक कर सकते हैं पर सोशल मीडिया से पैदा हुए अवसाद को कुछ उपयोगी सुझावों से दूर किया जा सकता है।

किसी की भी पोस्ट पर सिर्फ लाइक न करें, सकारात्मक संदेश छोड़ें, संवाद भी करें, इसे सामाजिक मंच बनाए। दोनों तरफ का संवाद दिमाग को क्रियाशील रखता है।

सोशल मीडिया पर आप अधिक समय न बिताएँ, कुछ सप्ताह की छूट लें, फिर देखें कैसा महसूस होता है।

अगर किसी की पोस्ट ग़ुस्सा दिलाती है, बेचैन करती है, उदासी लाती है, या ईर्ष्या पैदा करती है तो उसे हटा दें, हटाने का बटन दबाने से घबराएँ नहीं। मानसिक स्वास्थ्य से ऊपर और कुछ भी नहीं।

सोशल मीडिया पर ज़्यादा लोगों को फॉलो करने की बजाय उस संस्थाओं से जुड़ें जो कुछ करने के लिए प्रेरित करें। जो सृजनात्मक कार्यों के लिए उकसाएँ।

उन्हीं पोस्ट को पढ़ें या उन्हीं लोगों से जुड़ें जो रचनात्मकता को बढ़ावा दें।

सोशल मीडिया बहुत रचनात्मक, सृजनात्मक, सकारात्मक साबित हो सकता है, अगर पोस्ट को ईर्ष्या जगाने के लिए चमकीला या आदर्शवादी न बना कर कुछ सीखने, दूसरों की मदद करने के लिए प्रयोग किया जाए। पोस्ट में विचार रखें जाएँ पर किसी को नीचे न दिखाया जाए।

शयनकक्ष को सोशल मीडिया से दूर रखने की कोशिश करें।

सोशल मीडिया की बजाय लोगों से अधिक मिलें-जुलें।

अगर इन बातों के प्रति सतर्क रहें तो सोशल मीडिया से पैदा हुई उदासी, अकेलापन और बेचैनी पर काबू पाया जा सकता है।

विभोम-स्वर और शिवना साहित्यिकी की ओर से नववर्ष की बधाई और ढेरों शुभकामनाएँ।

आपकी,

सुधा ओम ढींगरा

मित्रनामा

"वह लड़की" सशक्त कहानी

'विभोम-स्वर' जुलाई-सितम्बर, 2023 का अंक मिला। हमेशा की तरह पत्रिका को भरपूर चाव से आरम्भ किया। सबसे पहले तो सुधा ओम ढींगरा का संपादकीय पत्र पढ़ा जिससे मैं पूर्ण रूप से सहमत हूँ। निराश और असहाय व्यक्ति जब सरकारी इमारतें, बसें जला कर अपना आक्रोश व्यक्त करते हैं तो स्वयं अपना ही नुकसान करते है, सरकारी नेताओं का क्या! असहमति और आक्रोश प्रकट करने का यह तरीका विश्व भर में फैल रहा है, यह बहुत ही ज़्यादा चिन्ताजनक स्थिति है।

नीलिमा शर्मा की "वह लड़की" कहानी इतनी सशक्त है, इसने पढ़ने का प्रवाह रोक दिया और रुक कर अपनी पुरानी मान्यताओं की सार्थकता और अखंडता पर दुबारा मनन करने के लिए बाध्य किया। सरल आत्म विश्वास से, बेझिझक कथा नायिका ख़ुशबू कहती है-

'आप कुछ भी पूछ लीजिये।' वह कॉल गर्ल है और अपनी जीविका के साधन से ख़ुश है।

वह हर प्रश्न का उत्तर ईमानदारी और तर्कसंगत रूप से प्रस्तुत करती है। रेडियो इंटरव्यू लेने वाली महिला के प्रश्नों का उत्तर देने के पहले वह स्वयं प्रश्न करती है क्या आप से कोई पूछता है, 'यह काम ही क्यों?' आप अपनी वाकपटुता से, मैं अपने देह का नमक बेच कर, दूसरों का मनोरंजन कर जीविका कमाती हूँ, मुझे अच्छा लगता है। मेरा शरीर मेरी जीविका का साधन है। यह मेरा मंदिर है। इसे सँभालना मेरा धर्म है। मन का क्या! वह तो बार-बार टूटता है। वह किसी भी मजबूरी की आड़ में नहीं छिपी। उसे किसी की अनुमति की आवश्यकता है न सहमति की! 'रात के कालेपन को उघाड़ना व्यर्थ है' कह ख़ुशबू ठहाका मार कर हँसी।

यानी दर्द तो है, पर उसकी बात करने से क्या फ़ायदा! हर पथ पर कुछ फूल हैं, कुछ काँटे! जिसे जो चुनना है चुने और अपना स्वतंत्र जीवन यापन करें, समाज को आपत्ति क्यों?

शरीर और मन, इच्छा, आत्मा, जो भी नाम दीजिये, शाश्वत कुछ भी नहीं है, शरीर की शुद्धता को हर कीमत पर बचाना या मन की इच्छा पूर्ति के लिए शरीर को हर प्रकार की अनावश्यक पीड़ा देना-दोनों ही तर्क संगत नहीं लगता।

सहानुभूति के साथ अतिथि को समझने के प्रयत्न में इंटरव्यू लेने वाली मिन्नी ने पूछा कि आर्थिक स्थिति कठिन होने के कारण आपको वर्जिनिटी खोनी पड़ी? तो स्वयंसिद्धा ख़ुशबू अपनी बात समझाते हुए बोली –

"नहीं, मैंने अपनी इज़्ज़त खोयी नहीं, पायी थी।" मन को झकझोर देने वाला सशक्त वाक्य! 'मन मार कर जी ले, या मन का कर के जी ले। मिट्टी की देह, एक दिन मिट्टी में ही मिल जानी है।' भूखे को पेट की आग सताती है और सब कुछ करती है। आत्मसम्मान भी क्या है? नश्वर काया को अनछुआ बचा कर रखने में या मन को, जिसने किसी की दया की भीख माँगने से बचने का रास्ता चुना? अपनी ज़रूरतों और इच्छाओं को स्वयं सिद्ध करने का ज़ज़्बा! सामर्थ!

नीलिमा शर्मा ने हमारे विवेक को ललकारा है। जीवन में प्राय: हम सभी अपने चुनाव की चादर बुनते हैं, फिर वही ओढ़ते हैं। ख़ुशबू भी वही करेगी।

जैसा साहिर लुधियानवी ने कहा-

ले दे के अपने पास फ़क़त इक नज़र तो है

क्यों देखें ज़िंदगी को किसी की नज़र से हम।

नीलिमा जी ने अपना संदेश बहुत ही रोचक और गंभीर सोच वाली ख़ूबसूरत लड़की के माध्यम से प्रस्तुत किया है, ख़ुशबू से मिलने को मन उत्सुक है। यह भी लेखिका के सफल लेखन का परिचायक है। बधाई सहित।

-मीरा गोयल, डरहम, अमेरिका

000

सहेज कर रखने योग्य

अक्टूबर-दिसम्बर, 2023 के संपादकीय में मेंढक की चर्चा देख पहले अचंभित हुआ कि, आख़िर मेंढक के सहारे क्या कहना चाह रही हैं आप, लेकिन बड़ी ही रोचकता के साथ जिस सच को उद्घाटित किया गया है संपादकीय में, उससे मैं सवा सोलह आने सहमत हूँ! भारतीय मेंढक ही नहीं बल्कि अधिकांश भारतीय स्त्री-पुरुष भी एक-दूसरे की टाँग खिंचाई करने में माहिर हैं और इसलिए कुएँ के मेंढक की तरह बाहरी संसार से अलग अपनी ही खोल में मस्त रहते हैं। संपादकीय को पढ़ने के लिए प्रेरित हुआ जिस शीर्षक को देखकर, वह बहुत हद तक पूरी तरह से सच भी लगता है। कुनबे और क़बीलाई युग से हम काफी दूर निकल आए हैं लेकिन जब भी बात जाति, धर्म और प्रांत की आती है, तो फिर हमारी कुनबापरस्ती क़बीलाई सभ्यता को भी मात देने वाली होती हैं।

सोचिए अगर हमारी सभ्यता क़बीलाई समूहों से आगे न बढ़ती तो आज मनुष्य कहाँ होता। आज जिस तरह से लोकतांत्रिक और मानवीय मूल्यों को हमारे इस विश्व में चहुँ ओर रौंदा जा रहा है, कभी-कभी तो लगने लगता है कि हम सही मायने में सभ्य न हो सके हैं शायद।

आज अराजकता जीवन में हर कहीं है ! चाहे परिवार हो, समाज हो, देश हो या विदेश कहाँ नहीं है अराजकता ? इसलिए साक्षात्कार के शीर्षक से कुछ ज़्यादा आश्चर्य नहीं हुआ, लेकिन स्त्री के संदर्भ में हिन्दी साहित्य में जो विमर्श चलता आ रहा है उसमें भी अराजकता के विद्यमान होने के दोषारोपण को हल्के में न लेना ही मैंने उचित समझा और बहुत ही गंभीरता और तल्लीनता से इक-इक शब्द को पढ़कर वीणा वत्सल सिंह के व्यक्तित्व और कृतित्व से प्रभावित हुआ। नई पीढ़ी को हिन्दी की समृद्ध विरासत से जोड़ने के लिए जो इनके प्रयास हैं उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा होनी चाहिए।

अंक की कहानियाँ और कविताएँ सहेज कर रखने योग्य हैं।

-नवनीत कुमार झा

हरिहरपुर

000

'विभोम-स्वर' के अक्टूबर-दिसम्बर 2023 अंक में छपी किसलय पंचोली की कहानी 'मंदिर वाला घर' पर खंडवा में साहित्य संवाद तथा वीणा संवाद ने चर्चा की। इस चर्चा के संयोजक गोविन्द शर्मा तथा समन्वयक राजश्री शर्मा थे।

कहानी बहुत रोचक

बुनना एक कौशल है जो दुनिया भर में किया जाता रहा है, कई कहानियाँ भी इसी कौशल से उपजी हैं। अत: कहानी, कुछ घटनाओं, पात्रों, स्थलों, परिस्थियों इत्यादि को लेकर बुना गया एक स्वेटर होता है ऐसा कहा न सकता है। यह स्वेटर कितना आकर्षक (रोचक) है यह बुनने वाले के कौशल पर निर्भर करता है।

मंदिर वाला घर भी एक आकर्षक स्वेटर (रोचककहानी) है, आकर्षक हो भी क्यों न ? एक कुशल महिला ने जो बुना है। माता पिता, चार लड़के (प्रज्ज्वल, नीरज, आकाश और समीर) जो उच्च पदों पर मुंबई, दिल्ली, कलकत्ता व बेंगलोर में पदस्थ हैं। चारों विवाहित, जिनमें से तीन बहुएँ सजातीय और छोटी विजातीय।

माता पिता बचवा (सबसे छोटा समीर) के घर मे महीनों रहते किंतु अन्य बेटों के घर कुछ दिन ही। अन्य तीन बहुएँ तो माँ बन गईं किंतु छोटी बहू के यहाँ कोई संतान नहीं। इसी तरह उन सबके घर में उपासना स्थल (मंदिर) बने थे, छोटी बहू के घर मे कोई भी ऐसा स्थान नहीं था जहाँ बैठकर पूजा पाठ कर सकें। सासू जी की यही एक शिकायत सदा रहती कि यहाँ भी किसी कोने (पूर्व-उत्तर) में एक ठो मंदिर बना लें। इसमें छोटी बहू सहमत नहीं थी और समीर का उसे पूरा समर्थन था उसे। दरअसल समीर इनके मामले में दखलअंदाज़ी करना पसंद नहीं करता था। कहानी इसी तरह अपना विस्तार लेती रही।

केलिडोस्कोप पर एक झटका लगा और पूरा सीन उस समय बदल गया जब एक सड़क दुर्घटना में सासूजी दिवंगत हो जाती हैं। इस बीच समीर दम्पत्ति ने अनाथालय से एक छोटी बच्ची को गोद ले लिया था। उसके आने पर घर का माहौल ही बदल गया था सासू जी की स्मृति स्वरूप उनकी एक तस्वीर पूर्वोत्तर कोने में लगा दी गई जिससे यह घर भी मंदिर वाला घर बन गया। कहानी बहुत रोचक है घटना क्रम अपनी गति से गतिमान होते रहे। कहीं भी पाठक की पढ़ने में रुचि को किसी प्रकार का व्यवधान नहीं होता। किसलय पंचोली बधाई की पात्र हैं।

-मोरेश्वर मंडलोई

000

ख़ूबसूरत कहानी

कहानी "मंदिर वाला घर" में किसलय पंचोली ने एक ऐसी यथार्थ कथा पाठकों के समक्ष रखी है, जिसे पढ़कर कभी आँखें भीग जाती हैं तो कभी अधरों पर हल्की सी मुस्कराहट रेंगने लगती है। कहानी का कथानक बहुत ही सुगठित है। कहानी का वाचन करने वाली नायिका एक विजातीय बहू है, जो अपने सास-ससुर के प्रति पूर्ण आस्था और समर्पण भाव रखती है। जो जीवित इंसानों से प्रेम करती है और मूर्ति पूजा में तनिक विश्वास नहीं करती। चूँकि उसके पति समीर में कमी है अत: वह माँ न बन सकी, उसके माँ नहीं बनने का कारण समाज के द्वारा यही समझा जाता है कि उसके घर में मंदिर न होने के कारण वह नि:संतान है। यह सोच साधारण वर्ग की उस निकृष्ट धारणा को दर्शाती है जहाँ हम किसी भी कामकाज के लिए असली दोषी को सज़ा न देकर दोष किसी तीसरे व्यक्ति पर थोप देते हैं, बिना यह जाने कि वह आदमी सच में दोषी है भी अथवा नहीं..?

चार बेटों के बीच माता-पिता किस तरह रहते हैं और उन्हें तीन बेटों के द्वारा तो मात्र किसी धार्मिक आयोजन अथवा पारिवारिक आयोजन में ही प्रतिभाग करने के लिए दो-चार दिन को बुलाया जाता है, बाकी उनका पूरा ख़याल विजातीय बहू और उसका पति समीर ही रखते हैं। विजातीय बहू से सास के द्वारा घर में मंदिर न होने की शिकायत करना ...अथवा मंदिर बनवाने का आग्रह करना... बार-बार करना ...बुज़ुर्गों की पुरातन सोच को दर्शाता है। हम इस सोच को ग़लत नहीं ठहरा सकते क्योंकि बुज़ुर्ग व्यक्ति भी यही चाहते हैं कि उनके बच्चे सुखी रहें...वंश वृद्धि हो... घर में समृद्धि आए... यदि घर में कोई भी किसी प्रकार की कमी दिखाई देती है तो उनका ध्यान इस ओर जाना प्राकृतिक ही है। जब बार-बार वे किसी भी बेटे के यहाँ एक महीने के लिए कह कर जाती हैं और मात्र तीन या चार दिन में ही वापस समीर के घर आ जाती हैं, तो पाठकों के मन में यह प्रश्न अवश्य उठता है कि आख़िर इतने आस्तिक तीनों बेटे माँ- बाप के प्रति आस्था क्यों नहीं रखते..?

लेखिका इस उत्कृष्ट कहानी के माध्यम से आजकल की संतान के सर्द व्यवहार की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट करती हैं। वाकई में आजकल की पीढ़ी इतनी व्यस्त है कि उनके पास माता-पिता के साथ समय बिताने का समय ही नहीं है। वह अपने-अपने कार्यों में मगन हैं। आजकल के दम्पत्ति ज़्यादातर कामकाजी होते हैं और फिर किसी धार्मिक आयोजन में माता-पिता को मात्र औपचारिकतावश बुला लेते हैं। घर में ख़ूबसूरत मंदिर तो स्थापित कर लेते हैं किंतु उस मंदिर की आत्मा यानी कि अपने माँ-बाप से मुँह फेर लेते हैं। उनकी याद तो मात्र काम आने पर ही पड़ती है। स्वार्थी दुनिया की प्रवृत्ति को दिखाने वाली यह कहानी सहज ही मन में गहरी पैठ बना लेती है। एक हृदयस्पर्शी कहानी लिखने के लिए मैं कलमकारा को कोटि-कोटि प्रणाम करती हूँ। कहानी के सभी पात्र ऐसे प्रतीत होते हैं जैसे अपने आसपास ही हमने यह देखे हों। पात्रों का चरित्र-चित्रण बहुत ही जीवंत और अद्वितीय है। ऊँचे-ऊँचे पदों पर आसीन होने के बावजूद माता-पिता को अपने घर में नहीं ठहराने वाली ये कामकाजी पीढ़ी भौतिकवादिता की चकाचौंध में किस तरह लिप्त हो गई है, यह लेखिका ने बड़ी ही ख़ूबसूरती से दर्शाया है।

कहानी उद्देश्यपूर्ण है और इस आधुनिक समाज को यह संदेश देती है कि मात्र कृष्ण की मूर्ति अपने घर में स्थापित कर लेने से कोई व्यक्ति ईश्वरीय कृपा का पात्र नहीं हो जाता। घर के बुज़ुर्गों का सम्मान, उनकी देखभाल और उनके आशीर्वाद से ही घर में समृद्धि, लक्ष्मी और ख़ुशियाँ आती हैं।

एक और मुद्दा जो लेखिका ने उठाया है

वह है गोद लेने का विचार। हमने अक्सर देखा है कि यदि हमारे परिवार में कोई नि:संतान दंपति है, तो उसे अपने रिश्तेदारों में से ही बालक गोद लेने की सलाह दी जाती है। लेखिका ने समाज को जागरूक करने का आह्वान किया है कि क्यों न हम उन अनाथ बालिकाओं को गोद लें, जिन्हें सच में एक घर की आवश्यकता है। जो अनाथ-आश्रम में किसी अपने के आने की राह देखते हैं। जिनका कोई परिवार नहीं है। मैं लेखिका की समृद्ध लेखनी को बार-बार नमन करती हूँ और हतप्रभ हूँ कि आख़िर एक ही कहानी में कोई इतने सारे प्रेरणादायक संदेश समाज को कैसे दे सकता है..? लेकिन यह दुष्कर काज लेखिका ने कर दिखाया है।

प्रत्येक पात्र एक विचारधारा को दर्शाता है- जैसे सासू माँ का पात्र पुरातन विचारों का अनुसरण अनुसरण करता है। जिनका भोला विश्वास भगवान् से शुरू होकर मंदिर पर ख़त्म होता है। या मंदिर से शुरू होकर भगवान् पर। उनके अनुसार "लड़कन में का खोट होत, खोट होत कोख मा। आख़िर कोख भगवान् ने लड़कीउन को दी है। लड़कों को नहीं ना।"

समीर का व्यक्तित्व भी उस युवा वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है, जो न तो पुरानी पीढ़ी की आलोचना करते हैं, न ही नई पीढ़ी को पुराने रीति-रिवाज को मानने के लिए विवश करते हैं- "हर व्यक्ति को अपने हिसाब से जीने का पूरा हक़ है माँ को भी है तुम्हें भी हैं। वे करती हैं उनकी आस्था है। उन्हें करने दो। तुम्हें नहीं करना, तुम्हारे अपने तर्क और विचार हैं। तुम मत करो।"

कुल मिलाकर एक ख़ूबसूरत कहानी के लिए लेखिका किसलय पंचोली को बहुत बहुत बधाई।

-प्रीति चौधरी "मनोरमा"

जनपद -बुलंदशहर उत्तरप्रदेश

000

सारगर्भित कहानी

एक पारिवारिक रिश्तों की सुगंध लिए बड़ी मार्मिक कहानी पाठकों के सामने आई है, जिसमें सास बहू के बीच बस एक ही बात पर नोंक-झोंक चलती है कि घर में एक छोटा मंदिर बन जाए।

पढ़ते हुए पाठकों के मन में ये विचार भी आता है कि जब बहू इतनी संस्कारी है कि अपने सास-ससुर का पूरा ख़याल रखती है तो उनकी ये छोटी सी ख़ुशी भी क्यों नहीं पूरी कर देती, पर यहीं उसके आत्मसम्मान का भी तो प्रश्न है कि उसने तो कर्त्तव्यों को ही पूजा माना है तो वह ग़लत कहाँ है। परिवार में और भी 3 पुत्र हैं और बहुएँ भी हैं, जो महज संस्कारों का ढोंग करते हैं, किन्तु अपने बुज़ुर्ग माता-पिता को चार दिन से अधिक घर में नहीं रख पाते। माताजी भी अपनी विजातीय बहू को आशीर्वाद तो देती हैं, स्नेह भी रखती हैं पर निसंतान होने पर आरोप की बंदूक का कंधा, घर में मंदिर का न होना ही होता है।

उनके गले यह बात नहीं उतरती, कि सन्तान न होने का कारण उनका पुत्र भी हो सकता है। कहानी में बड़ा सुंदर मोड़ आता है जब बेटा-बहू एक बेटी गोद लेने का निर्णय ले लेते हैं, किंतु वे उस निर्णय को माँ की उपस्थिति तक स्थगित रखते हैं, क्योंकि वे जानतें हैं कि इसे स्वीकार करने में उन्हें वक्त लगेगा।

घर में नन्ही परी आ जाती है और साथ लाती है ढेरों ख़ुशियाँ, जिसे कहानी के नायक समीर और बहू अपनी माँ के साथ बाँटना भी चाहते हैं। कहानी का अंत दु:खद है-माँ ये ख़ुशी देखने से पहले ही स्वर्ग सिधार जाती हैं। बहू की ये बात मन को द्रवित कर जाती है ! माँ भी देख लेती उसका 'मंदिर वाला घर' जहाँ बेटी के रूप में साक्षात देवी आ चुकी है। इस सारगर्भित कहानी लिए लेखिका किसलय पंचोली का अभिनंदन करती हूँ।

-साधना शर्मा, पुणे

000

सुंदर कहानी

मन्दिर वाला घर बेहतरीन कहानी है जिसने धर्म के अलग मायने रखने का प्रयास किया है। दो विचारधाराएँ पूरी कहानी में साथ -साथ चलती हैं। कर्म ही पूजा है, घर में मंदिर की ज़रूरत नहीं है ये विचारधारा अम्मा की विजातीय बहू की है। वहीं हर घर में मंदिर होना ही चाहिए, उसी से घर में सुख-शांति यहाँ तक कि बच्चे भी मिलते हैं ये विचार अम्मा के हैं। विचार भले नहीं मिलते पर सास इसी बहू के पास रहना पसंद करती है। घर में मंदिर रखने वाली, भगवान् को मानने वाली बहुएँ सास को अपने पास क्यों नहीं रख पाती हैं और कर्म को पूजा मानने वाली बहू सास की इतनी छोटी पर दिल की गहराई से जुड़ी एक इच्छा को पूरी करना क्यों नहीं चाहती, ये प्रश्न पाठकों के मन में कहानी के अंत तक चलता रहता है।

सास को अपने परिवार का बच्चा चाहिए पर बहू अनाथ आश्रम से बेटी को लाना चाहती है। विचारों के मतभेद को बड़े सुन्दर और शालीनता से प्रस्तुत किया गया है कि पाठक बिना रुके कहानी को पढ़ने को मजबूर हो जाता है। कहानी के अंत में वही बहू जो कर्म को पूजा मानती थी अचानक, बच्ची को घर लाने के बाद घर में सास की फोटो रखती है दिया जलाती है और उन्हें याद करते हुए कहती है 'लो बन गया ये भी मंदिर वाला घर'

प्यार से बार-बार कही गई बात कितना भी ज़िद्दी और अपने विचारों का पक्का हो बदलने को मजबूर कर देती है, इस तथ्य को सुंदरता से प्रस्तुत किया है।

कहानीकार और समन्वयक को सुंदर कहानी को पढ़ने का अवसर देने के लिए सादर आभार।

-संध्या पारे, सुर्ख

000

एक अच्छी कहानी

हमारे जीवन में कई प्रकार की विचारधाराएँ और कुछ दृढ़ विश्वास होते हैं, जिन पर हमारे जीवन की आधारशिला रखी होती है। ऐसे ही विश्वासों के कभी समानांतर चलने कभी टकराते चलने की यह कहानी है। कहानी तीन प्रमुख पात्रों अम्माजी, बेटे समीर और बहू और कुछ सहायक पात्रों जैसे समीर के पिता, अन्य तीन स्थापित भाई, और उनकी सजातीय पत्नियों के साथ बुनी गई है।

अम्माजी को अन्य तीन बेटों की बनिस्बत समीर और उसकी पत्नी के साथ ज़्यादा सुविधाजनक लगता है, यद्यपि कहानी में

नायिका के विजातीय बहू होने और नास्तिक होने को प्रमुख रूप से एकाधिक बार रेखांकित किया गया है किंतु किसी का नास्तिक होना, उसके किसी भी जाति के होने पर निर्भर नहीं करता अपितु मन में आस्था के होने अथवा नहीं होने पर निर्भर करता है। कई बार लोग केवल तार्किक रूप से ईश्वर की उपस्थिति के आधार पर अपने आप को नास्तिक अथवा आस्तिक के रूप में परिभाषित करते हैं लेकिन कोई भी व्यक्ति कर्मकांडी होकर भी कभी कभी नास्तिक हो सकता है और कोई किसी भी प्रकार के पूजा अर्चना न करते हुए भी अंतर्मन से प्रार्थना से भरा हुआ हो सकता है। जैसा कि इस कहानी की नायिका का चरित्र है।

कहानी एक सकारात्मक अंत के साथ बहू के अंतर में आस्तिकता के परिचय के साथ समाप्त होती है, तथा यह संदेश देती है कि ईश्वर को हम कुछ निर्जीव प्रतीकों के अलावा जीवित इंसानों के रूप में भी देख सकते हैं। एक अच्छी कहानी के प्रकाशन हेतु किसलय पंचोली को हार्दिक बधाई।

-गरिमा चवरे

000

कहानी संदेश देती है

यह एक ख़ूबसूरत पारिवारिक कहानी है जिसमें प्रवाह भी है और मार्मिकता भी। यदि हम धन ज्ञान और विचारों से सम्पन्न हों, लेकिन वह वैचारिक संपन्नता हमारे कार्य, व्यवहार और संप्रेषण में न रहे तो फिर संपन्नता काहे की। यदि हमारा जीवन प्रेम और सम्मान आधारित न हो तो वह जीवन फिर जीवन कैसा? इस कहानी में जीवन के ऐसे अनेक सूत्र हैं जो पाठक को स्वयं पकड़ने होंगे ये सूत्र कहानी में दूध में पानी की तरह मिले हुए हैं। जो दिखाई नहीं देते। इस लिहाज से कहानी बहुत सोचने और समझने का अवसर देती है। यही इस कहानी का उज्ज्वल पक्ष है।

कहानी के पात्र चारों भाई चारों सम्पन्न और अपने माता पिता की सेवा में सदैव तत्पर बहुएँ भी वैसी ही सास ससुर को आदर देने वाली, माता-पिता भी उनके अनुकूल और किसी भी चीज़ में हस्तक्षेप नहीं करने वाले, एक उत्तम परिवार के लिए इससे बेहतर स्थिति क्या हो सकती है। लेकिन कहीं न कहीं एकाध कमी ज़रूर होती है। सबसे छोटे बेटे समीर के यहाँ एक कमी थी वो नि:संतान है। माँ के लिए यह एक टीस थी।

लेकिन जब बच्चा गोद लिया तब वे रहीं नहीं। बार-बार कहने पर भी विजातीय छोटी बहू ने घर में एक छोटा सा मन्दिर नहीं बनने दिया। वह अपने कर्म को ही पूजा मानती रही। लेकिन सासू जी के जाने का दु:ख उसे भीतर तक हिला गया। उनके जाने के बाद वह घर के पूर्व में मन्दिर बनवाने के लिए राज़ी है। लेकिन अब मन्दिर को देखकर ख़ुश होने और पूजा पाठ करने वाला रहा नहीं।

यह कहानी संदेश देती है कि जीवन की यही अनिश्चितता है। इसलिए अपने परिवार के साथ छोटी-छोटी ख़ुशियों के लिए अवसर आने की प्रतीक्षा नहीं करना चाहिए, बल्कि निर्णयात्मक विचारों को अवसर में तब्दील करना चाहिए। वाह-वाह! बहुत ही ख़ूबसूरत कहानी के लिए किसलय जी को हार्दिक साधुवाद।

-श्याम सुन्दर तिवारी, खण्डवा

000

भाव प्रवण कथा

ज़िद और आग्रह के ताने-बाने में गुथी यह कहानी अंततः अवाक् करके छोड़ देती है। और फिर एक आत्मग्लानि जीवन भर के लिए साथ रह जाती है। रिश्तों को सँभालना एक बात है और उनका सम्मान करना एक बात, नायिका का अपनी सास के साथ संबंध भले ही कितना भी मधुर क्यों न हो पर उनके एक छोटे आग्रह को नज़रअंदाज़ करना जीवन की एक बड़ी भूल हो गई। वस्तुत: कथा का यह भाग ही कथा की मूल वस्तु है जो हमें भावनात्मक रूप से जोड़ती है। सच तो यह है कि आप स्वयं के लिए नहीं जीते हैं और जिनसे भावनात्मक लगाव हो जाता है वहाँ तो यह जीवन और भी अपना नहीं होता। सास जो कि स्वयं इतनी आत्मीय है कि दूसरे बेटों के यहाँ जाकर भी बार-बार छोटे बेटे के घर लौट आती है की एक चाहत पूरी न कर पाना ठीक नहीं था। सुंदर भाव प्रवण कथा। सहज पठनीय। लेखिका को बधाइयाँ कि सोद्देश्य कथा में कोई झोल नहीं रहा।

-सुधीर देशपांडे

000

कहानी अच्छी लगी

कहानी घर परिवार के बीच सास, बहू, बेटों के बीच पारिवारिक रिश्तों के सुदृढ़ होने के साथ ईश्वर के प्रति श्रद्धा भाव पर केंद्रित है, जिसका अंत मार्मिक है।

तीन सजातीय बहुएँ और एक विजातीय बहु, सभी संस्कारित और सास को सम्मान देने वाले।

तीन लड़कों के घर के कोने में मंदिर है, जो ईश्वर के प्रति आस्था और श्रद्धा का प्रतीक है। सास प्राय: विजातीय बहु के घर रहती है, जो नि:संतान है। सास उसे अक्सर टोकती है कि घर के एक कोने में मंदिर बनवा ले, किंतु बहू उसे हर बार टाल देती है।

सास कुछ दिनों के लिए जब अपने दूसरे बेटे के घर जाती है, तब नि:संतान बहू एक बेटी गोद ले लेती है।

बेटी के गोद लेते ही घर बेटी की किलकारियों से भर जाता है। एक गृहस्थ जीवन में बच्चों का होना घर को स्वर्गिक आनंद से भरना है। बहू यह सोच कर ख़ुश होती है कि माँ अर्थात् सास आएगी तो उसे भी बच्ची को देखकर ख़ुशी होगी। सास अपने बेटे के यहाँ से आने वाली होती है, तभी राह में अटैक आने से उसकी मृत्यु हो जाती है। यह ख़बर सुन विजातीय बहू सन्न रह जाती है। तभी वह घर के एक कोने में बच्ची की सुंदर सी फ़ोटो सजा देती है, जो एक मंदिर के सदृश ही लगता है।

यह अपने मन मंदिर में बना सुंदर सा मंदिर ही है, जो जीवन के प्रति रागात्मक भाव का होना है। कहानी सहज रूप से भारतीय परिवेश में घर में मंदिर होने की अवधारणा को जीवन से जोड़ती है। कहानी अच्छी लगी।

-अरुण सातले, खंडवा

000

संदेशपरक कहानी

यह पारिवारिक पृष्ठभूमि पर बुनी हुई

कहानी है जो प्रवाहमय तो है ही अत्यंत मार्मिक भी है। पाठक विचारों में ही इस कहानी के सभी पात्रों से यथोचित जुड़ाव महसूस करने लगता है। एक ख़ुशहाल परिवार की कहानी में मोड़ तब आता है, जब सबसे छोटे बेटे समीर के यहाँ कोई संतान नही होती, समीर की माँ के मन में यही टीस घर कर जाती है। जब वे बच्चा गोद लेते हैं तो सासू माँ का स्वर्गवास हो जाता है। कहानी का दूसरा महत्त्वपूर्ण पक्ष यह था कि विजातीय छोटी बहू बार-बार बोलने पर भी घर के पूर्व में मन्दिर बनवाने के लिए बिल्कुल तैयार नही होती वह अपने कर्म को ही पूजा मानती है। वैचारिक संपन्नता के अभाव को लेखक की कलम ने पैनापन देकर भावनाओं को स्पष्ट रूप प्रदान करने का सफल प्रयास किया है। कहानी में एक सफल परिवार के सभी सूत्र दिखाई देते हैं जो पाठक को निरंतर बाँधे रखते हैं यही कहानी का उज्ज्वल पक्ष भी है। यह कहानी संदेश देती है कि जीवन अनिश्चित है अत: अपने परिवार के साथ छोटी-छोटी ख़ुशियों के लिए अवसर आने की प्रतीक्षा नहीं करना चाहिए, परिवार को सदैव सबसे आगे रखना चाहिए। वैचारिक दृष्टिकोण से भी कहानी समृद्ध प्रतीत होती है। छोटी-छोटी ख़ुशियाँ ही रिश्तों को प्रगाढ़ बनाती हैं। अत्यंत ख़ूबसूरत और संदेशपरक कहानी के लिए आदरणीय किसलय पंचोली जी को हार्दिक बधाई ।

-कल्पना दुबे, खण्डवा, मध्यप्रदेश

000

अच्छा संदेश देती है

कहानी "मंदिर वाला घर" में किसलय पंचोली जी ने सास बहू के रिश्ते का बहुत ही ख़ूबसूरत चित्रण किया है।

होने को तो सासू जी की चार बहुएँ हैं लेकिन वे ज़्यादातर अपने छोटे बेटे और बहू के साथ रहती हैं जो विजातीय है। कहानी छोटी बहू की आत्म कथा है। छोटी बहू सेवाभावी है तो सास भी सहृदय है बिल्कुल माँ का प्रतिरूप है उन्हे अपनी बहू से बहुत प्रेम है लेकिन उन्हें सिर्फ एक ही बात से शिकायत है कि उनकी बहू ने घर में मंदिर नहीं रखा है। पूरी कहानी शुरुआत से लेकर अंत तक उनकी इसी अदम्य इच्छा के ऊपर केंद्रित है। सास का मानना है कि मंदिर होने से भगवान् की कृपा होती है और किसी प्रकार का अभाव हो तो मंदिर वाले भगवान् उसे दूर कर देते हैं। छोटे बेटे बहू के संतान नहीं है इसका कारण भी वे मंदिर के न होने को ही मानती हैं लेकिन बहू के विचार अलग हैं। बहू मंदिर के भगवान् की पूजा न करके अपने सास ससुर की सेवा को ही पूजा समझ कर करती है लेकिन यह बात वह अपनी सास को जीते जी नहीं समझा पाई लेकिन हृदय गति रुकने से सास की मृत्यु हो जाती है तो तुरंत ही पूर्वोत्तर कोने में एक पाटा रख सास की फ़ोटो स्थापित कर देती है यही बहू का मंदिर था। एक अनाथ बच्ची को गोद लेना और अपने कर्म को ही पूजा मानना समीर की बहू को उच्च श्रेणी की महिला का दर्जा देता है। कहानी संवेदना से पूर्ण और सुगठित है और ऊँचे आदर्शों को स्थापित करती है। सास की स्थानीय बोली कहानी की सरसता बढ़ा रही। कथानक अच्छा है। अंत में सास की मृत्यु विस्मित करती है। कहानीकार ने समाज की कई समस्याओं को उठाया है और सारगर्भित निराकरण भी दिया है जैसे प्रेम विवाह करके आने वाली विजातीय बहू भी अच्छी हो सकती है। दूसरा सास-ससुर की सेवा ही ईश्वर की पूजा है और किसी अनाथ बच्चे को गोद लेकर उसे प्यार देना ज़्यादा अच्छा है बनिस्पत अपने रिश्तेदार के बच्चे को लेने से। कहानी अच्छी है समाज को अच्छा संदेश देती है।

-अरुणा अग्रवाल, रायपुर

000

सीधे दिल को छूती है

लेखक किसलय पंचोली द्वारा रचित कहानी "मंदिर वाला घर" एक हृदय स्पर्शी कहानी है जो किसी भी पाठक के अन्तर्मन को छूने में सक्षम है।

यह एक पारिवारिक कहानी है। एक संभ्रांत परिवार, माँ-बाप और चार बेटे-बहू। सभी महानगरों में ऊँचे पदों पर कार्यरत। माता -पिता अपनी इच्छानुसार सभी बेटों के यहाँ आते-जाते रहते हैं। कभी किसी पोते का मुंडन संस्कार, तो कभी किसी बहू का उद्यापन समारोह, कभी किसी बेटे के घर मंदिर की स्थापना जैसे कार्यक्रम चलते ही रहते हैं। सभी बच्चों की यह ज़िम्मेदारी है कि जहाँ भी उनके जाने की इच्छा हो, वहाँ का टिकट चाहे तत्काल हो अथवा हवाई तुरंत करवाती जाती है।

कहानी की वक्ता या मुख्य पात्रा कह लें, माता जी की अन्तर्जातीय बहू है जो नि:संतान है। यद्यपि वह अलग जाति की है फिर भी वह मानवीय गुणों से भरपूर है। सही या ग़लत बात हो, सास -ससुर का मान रखती है। जबाब नहीं देती। हर आवश्यकताओं का तत्परता से निर्वहन करती है। सास का पैर दबाते हुए उनकी सारी कहानियों को सुनती रहती है। शायद वह दो पीढ़ियों के विचार के अंतराल को समझती है इसलिए समझदारी से काम लेती है।

माता जी को उससे एक ही शिकायत है कि उसने घर में एक छोटा सा मंदिर नहीं बनवा रखा है। यद्यपि घर के ड्राइंग रूम के कोने में पर्याप्त जगह है। अक्सर बहू को वे इस बात के लिए सुनाती रहती हैं। कहीं न कहीं उन्हें ऐसा लगता है कि यही बच्चा नहीं होने का कारण है। ताना मारना उनका स्वभाव नहीं है वरन एक अभिभावक होने के नाते वह घर का भला चाहती हैं। बहू को पारिवारिक कामों में मदद करने से भी कभी पीछे नहीं हटती।

वहीं बहू यह कभी नहीं जताती कि पति समीर में पुरुषोचित कमी के कारण वह मातृत्व सुख से वंचित है।

माँ महीने-दो महीने का समय लेकर अन्य बेटों के पास जाती है परन्तु दस-पाँच दिन में ही वापस आ जाती है। ऐसा क्यूँ है जबकि वहाँ मंदिर भी हैं, बच्चे भी हैं, तब शायद वहाँ यह शकुन नहीं है, यह आत्मीयता नहीं है, जो बिना मंदिर वाले घर में है। बेटे-बहू की योजना है एक प्यारी सी बच्ची को गोद लेने की। उन्हें इंतज़ार है इस बार माँ जब बाहर जाएँगी तो बच्ची को घर ले आएँगे और धीरे-धीरे उन्हें भी राज़ी कर लिया जाएगा।

होना कुछ और ही था, गाड़ी में ही उनको अटैक आ जाता है और वो सदा केलिए चली जाती है। कहानी में मोड़ तब आता है जब बहू

मंदिर वाले स्थान पर सास की फ़ोटो लगा देती है और अश्रुपूरित नयनों से कहती है कि यह घर भी अब मंदिर वाला हो गया है।

कहानी बहुत से संदेश छोड़ जाती है, जात-पात गुणों का मानदंड नहीं है। पति-पत्नी में सामंजस्य हो तो परिवार ख़ुशहाल रहता है। किसी बच्ची को अपनाकर उसे एक नई ज़िंदगी देना धर्म से भी ऊपर मानवतावादी कार्य है।

झूठे कर्म- कांड से अच्छा निश्छल व्यवहार है। ठेठ लोक भाषा की मिठास सीधे दिल को छूती है। सभी पात्र सम्पूर्ण हैं। कहानी का प्रवाह कहीं रुकता नहीं। सबसे बड़ी बात जो कहानी इंगित करती है वह यह है कि जिस घर में माँ-बाप का आदर सम्मान है, वह स्वयं में ही एक मंदिर है।

-मधु रूँगटा, मुंगेर

000

भाव पूर्ण कहानी

प्रस्तुत कहानी "मंदिर वाला घर" में किसलय पंचोली ने बहुत ही सुंदर ढंग से सास बहू के बेहतरीन रिश्ते को दर्शाया है। चार बहूओं के होने के बावजूद भी सबसे छोटे बेटे-बहू के साथ सास ज़्यादा समय बिताना चाहती हैं। समीर की पत्नी विजातीय होने के बावजूद भी अपनी सास का बिल्कुल अपनी माँ- के जैसा ध्यान रखती है और सास भी सभी बहुओं में से सबसे ज़्यादा छोटी बहू को ही मानती हैं।

लेकिन सासु माँ को सिर्फ एक ही बात से शिकायत है कि उनकी बहू ने घर में मंदिर नहीं बनाया है। ये पूरी कहानी शुरू से लेकर अंत तक बस एक ही बात पर केंद्रित है और वह है घर में "मंदिर का होना"। सास का मानना है कि घर में मंदिर होने से ईश्वर की कृपा बनी रहती है और उन्हें किसी भी तरह का अभाव नहीं होता है। छोटे बेटे-बहू को संतान नहीं है इसका कारण भी वह मंदिर को ही मानती हैं। इधर छोटी बहू समीर में भी जो कुछ कमी है वह सास को नहीं बता सकती क्योंकि वह इसे मानने को तैयार ही नहीं होंगीं क्योंकि सास का कहना है भगवान् ने कोख तो औरतों को दी हैं पुरुषों को नहीं। लेकिन बहू के विचार अलग हैं। बहू अपने सास ससुर की सेवा को ही पूजा मानती है। यह बात समीर की पत्नी कभी अपनी सास को नहीं समझा सकी। आजकल की पीढ़ी इतनी व्यस्त रहती है क्या अपने माँ-बाप को रखना ही उन्हें भारी लगने लगता है। सासु माँ तीन बेटों के पास एक महीने का कह कर जाती थीं लेकिन चार दिनों में ही वो वापस भी आ जाती थीं। आजकल के बेटे तो सिर्फ औपचारिकता ही निभाने में रह जाते हैं। इस कहानी को पढ़ने के बाद समाज में होने वाले दुर्व्यवहार सामने नज़र आने लगते हैं। इस कहानी में यह भी दर्शाया गया है कि जात-पात में भेद-भाव नहीं करना चाहिए। बच्चों का होना या ना होना मंदिर पर नहीं बल्कि क़िस्मत पर निर्भर करता है। लेकिन सास के रूढ़िवादी विचार होने के कारण सारा दोष मंदिर पर ही डालती हैं।

इधर लेखिका ने गोद लेने का अति उत्तम विचार प्रस्तुत किया है। समीर और उसकी पत्नी ने भी एक बालिका को अनाथालय से गोद लेकर रूढ़िवादी परंपरा को सकारात्मक सोच में परिवर्तित कर दिया है। घर में आने वाली ख़ुशियों को वह सास को बताना चाहती है। लेकिन कुछ दिनों के बाद सास की अकस्मात् मृत्यु हो जाती है। बेटे और बहू सास की तस्वीर को ही भगवान् की मूर्ति की जगह लगा देते हैं और उन्हें ही अपना मंदिर मानती हैं।

बहू का सास के प्रति प्रेम भरा समर्पण आजकल की पीढ़ी को बड़ों का आदर सम्मान करना चाहिए यह सीखाता है। इस कहानी को पढ़ने के बाद सभी पात्र आसपास ही नज़र आते हैं। बहुत ही सुंदर भाव पूर्ण कहानी को लेखिका ने हम पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है। इस कहानी की महत्त्वपूर्ण बातें हमें यह बतलाती हैं की माँ-बाप की सेवा करना ही सबसे बड़ी पूजा है और जहाँ सेवा का भाव है वहीं ईश्वर का प्रारूप है। अनेकानेक संदेशों को प्रदान करती हुई इस सुंदर कहानी के लिए किसलय पंचोली को बधाई।

-मनीषा अग्रवाल प्रज्ञा

000

लेखकों से अनुरोध

'विभोम-स्वर' में सभी लेखकों का स्वागत है। अपनी मौलिक, अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। पत्रिका में राजनैतिक तथा विवादास्पद विषयों पर रचनाएँ प्रकाशित नहीं की जाएँगी। रचना को स्वीकार या अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार संपादक मंडल का होगा। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा। बहुत अधिक लम्बे पत्र तथा लम्बे आलेख न भेजें। अपनी सामग्री यूनिकोड अथवा चाणक्य फ़ॉण्ट में वर्डपेड की टैक्स्ट फ़ाइल अथवा वर्ड की फ़ाइल के द्वारा ही भेजें। पीडीएॅफ़ या स्कैन की हुई जेपीजी फ़ाइल में नहीं भेजें, इस प्रकार की रचनाएँ विचार में नहीं ली जाएँगी। रचनाओं की साफ़्ट कॉपी ही ईमेल के द्वारा भेजें, डाक द्वारा हार्ड कॉपी नहीं भेजें, उसे प्रकाशित करना अथवा आपको वापस कर पाना हमारे लिए संभव नहीं होगा। रचना के साथ पूरा नाम व पता, ईमेल आदि लिखा होना ज़रूरी है। आलेख, कहानी के साथ अपना चित्र तथा संक्षिप्त सा परिचय भी भेजें। पुस्तक समीक्षाओं का स्वागत है, समीक्षाएँ अधिक लम्बी नहीं हों, सारगर्भित हों। समीक्षाओं के साथ पुस्तक के कवर का चित्र, लेखक का चित्र तथा प्रकाशन संबंधी आवश्यक जानकारियाँ भी अवश्य भेजें। एक अंक में आपकी किसी भी विधा की रचना (समीक्षा के अलावा) यदि प्रकाशित हो चुकी है तो अगली रचना के लिए तीन अंकों की प्रतीक्षा करें। एक बार में अपनी एक ही विधा की रचना भेजें, एक साथ कई विधाओं में अपनी रचनाएँ न भेजें। रचनाएँ भेजने से पूर्व एक बार पत्रिका में प्रकाशित हो रही रचनाओं को अवश्य देखें। रचना भेजने के बाद स्वीकृति हेतु प्रतीक्षा करें, बार-बार ईमेल नहीं करें, चूँकि पत्रिका त्रैमासिक है अत: कई बार किसी रचना को स्वीकृत करने तथा उसे किसी अंक में प्रकाशित करने के बीच कुछ अंतराल हो सकता है।

धन्यवाद

संपादक

vibhom.swar@gmail.com

साक्षात्कार

स्त्री-विमर्श और देह स्वातंत्र्य की सही परिभाषा समझनी होगी

कहानीकार-उपन्यासकार लक्ष्मी शर्मा से आकाश माथुर की बातचीत

लक्ष्मी शर्मा
65, विश्वकर्मा नगर- 2, महारानी फार्म,
जयपुर 302018, राजस्थान
मोबाइल- 9414322200
ईमेल- drlakshmisharma25@gmail.com

आकाश माथुर
152, राम मंदिर के पास, क़स्बा, सीहोर,
मप्र 466001,
मोबाइल- 9200004206
ईमेल- akash.mathur77@gmail.com

लक्ष्मी शर्मा का जन्म 25 जून 1964, इंदौर में हुआ। शिक्षा- एमए, (देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इंदौर।), एम फिल, पीएँच.डी. (राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर।)। वे राजस्थान उच्च शिक्षा विभाग में हिन्दी की एसोसिएट प्रोफ़ेसर से सेवानिवृत हुई हैं।

उनकी अब तक प्रकाशित पुस्तकें हैं- सिधपुर की भगतणें, स्वर्ग का अंतिम उतार (उपन्यास), एक हँसी की उम्र, रानियाँ रोती नहीं (कहानी संग्रह), स्त्री होकर सवाल करती है (फेसबुक पर स्त्री-सरोकारों की कविताओं) का संकलन-संपादन, मोहन राकेश के साहित्य में पात्र संरचना' (आलोचना ग्रन्थ), आधुनिक काव्य संकलन (संपादन), इसके अतिरिक्त पत्र-पत्रिकाओं में कहानी, एकांकी, बालकथा, आलोचना, पुस्तक-समीक्षा आदि प्रकाशित हैं। 'विभोम-स्वर' के लिए आकाश माथुर ने उनसे बातचीत की।

आकाश माथुर- लक्ष्मी जी सबसे पहले तो 'विभोम-स्वर' से बातचीत करने के लिए बहुत-बहुत आभार। हम शुरू से ही इस बातचीत को प्रारंभ करते हैं। यह बताइए कि आपके लिखने की शुरुआत कैसे हुई, आपके द्वारा लिखी गई पहली कहानी कौन सी थी, उस कहानी के लेखन के बारे में थोड़ा बताइए। आपकी पहली प्रकाशित कहानी कौन सी है। इस बारे में थोड़ा विस्तार से बताएँ।

लक्ष्मी शर्मा- लिखने की शुरुआत कब और कैसे हुई यह तो याद नहीं है, क्योंकि बचपन में कुछ भी लिखने और बाद में डायरी लिखते रहने की आदत थी। पर कभी कुछ कहीं छपने के लिए नहीं भेजा था। प्रकाशित कार्य के तौर पर बात करूँ तो एमए करते हुए 1983 में मैंने महाविद्यालय की वार्षिक पत्रिका के लिए एक लेख लिखा था। उसके बाद शायद 1997 या 98 में राजस्थान पत्रिका अख़बार में एक बाल कहानी भेजी जो प्रकाशित हुई। फिर लम्बे अंतराल के बाद सन् 2001 में, जब मैं राजस्थान विश्वविद्यालय से 'दलित विमर्श' विषय पर नवाचार पाठ्यक्रम कर रही थी, मालूम हुआ उसमें रमेश उपाध्याय जी भी व्याख्यान देने आ रहे हैं। संयोग से मैंने वहीं बैठकर (पुनश्चर्या कार्यक्रम के कुछ उबाऊ व्याख्यानों के बीच) एक कहानी लिखी थी- 'दलित विमर्श : एक शोधपत्र'।

रमेश जी से मिलकर हौसला जागा और कॉपी के पन्नों पर हाथ से लिखी हुई अपनी कहानी उन्हें देनी चाही। रमेश सर ने सहज भाव से कहा- 'लक्ष्मी जी, अभी मुझे कई जगह जाना है, कहानी इधर-उधर हो सकती है। बेहतर होगा आप इसे कथन के पते पर भेज दें।' मैंने कहानी उसी रूप में कथन में भेज दी और मुझे आश्चर्य हुआ कि वह कहानी उन्हें पसंद आई और उन्होंने छाप भी दी। कुछ दिनों बाद रमेश जी का भेजा हुआ एक लिफाफा आया, जिसमें स्वर्गीय राजकिशोर जी द्वारा अमर-उजाला अख़बार में मेरी कहानी पर लिखी लंबी टीप की कटिंग थी। साथ में कन्नड़ भाषा की एक साहित्यिक पत्रिका भी थी जिस में मेरी कहानी का अनुवाद छपा था। उसके बाद मैंने अपने लेखन को ज़रा गंभीरता से लेना शुरू किया। ये 'ज़रा' इसलिए कि पूरी तरह गंभीर अब नहीं हूँ।

आकाश माथुर- आपकी कहानी 'रानियाँ रोती नहीं' स्त्री की व्यथा और बग़ावत दोनों की कहानी है। जो स्त्री विमर्श की बुलंद आवाज़ है। सोशल मीडिया पर भी आपकी टिप्पणियाँ इसी तरह की हैं।

लक्ष्मी शर्मा- ऐसा नहीं है आकाश जी, कि मेरी कहानी न रोने वाली स्त्री की आवाज़ है। मेरी कहानी उन स्त्रियों की आवाज़ है जो परिवेश की बेईमानियों और पक्षपात जन्य अपने जीवन के दुखों से पर्याप्त रोने के बाद आँसू पोंछ कर मज़बूती से खड़ी हुई है। उन्होंने अपने सीने पर खाई चोटों की पीड़ा से सीखा है कि ये दर्द वे आने वाली स्त्री पीढ़ी को नहीं खाने देंगी। हाँ, इस दृष्टि से वे सामान्य सी दीखती स्त्रियाँ न केवल बग़ावती हैं अपितु सही अर्थों में सशक्तिकरण की झंडाबरदार भी हैं। उन्होंने अपने आँसुओं को पोंछकर उनकी नमी को अपने हृदय में करुणा बनकर सँजो लिया है।

जी हाँ मैं सोशल मीडिया पर सक्रिय हूँ, लेखक, स्त्री और मनुष्य होने के नाते मेरा दृढ़ मत है

कि ये आभासी चौपालें केवल दिलजोई के लिए नहीं है, इन्हें सकारात्मकता और प्रतिरोध के स्वर में उपयोग किया जाना चाहिए।

आकाश माथुर- पर कुछ लेखक स्त्री विमर्श के नाम पर देह की स्वतंत्रता की बात करते हैं। इस पर आपकी राय।

लक्ष्मी शर्मा- सब से पहले हमें स्त्री-विमर्श और देह स्वातंत्र्य की सही परिभाषा समझनी होगी। किसी भी देह में केवल यौनिकता ही नहीं, मस्तिष्क, हाथ-पैर, वाणी और विचार भी अनिवार्य रूप से होते हैं। स्त्री के पास कोख अतिरिक्त रूप से है। स्त्री-विमर्श इन सब की चिंताओं से सरोकार का नाम है।

हम स्वातंत्र्य के नाम पर केवल दैहिक सम्बन्धों की मुक्ति की बात करने के पहले स्त्री के मस्तिष्क की मुक्ति पर बात करें कि जो कुछ वह सोचती है, उस की बेझिझक अभिव्यक्ति कर सके। जो कुछ वह चाहती है उसे अपने हाथों से क्रियान्वित कर सके, जहाँ चाहे अपने पैरों से जा सके। जो नहीं सुनना है उसका विरोध कर सके। उसे काम करने का अधिकार हो और अपने पैसे पर अपना हक़ रख सके। उसे अधिकार हो कि वह अपनी कोख के फ़ैसले ख़ुद ले सके।

अब बात आती है दैहिकता की, जो प्रत्येक प्राणी मात्र में अनिवार्य विद्यमान और आवश्यक है।

पहले तो कोई अन्य यह तय क्यों करे कि स्त्री की मुक्ति यौन-स्वातंत्र्य में है। भई ये उसका अधिकार है, अगर वह किसी रिश्ते में प्रतिबद्ध नहीं है और चाहती है तो मुक्त संबंध में जी सकती है न चाहे तो नहीं। विवाहित है तो अनिच्छा से सेक्स न करने का निर्णय भी उसका है और प्रतिरोध का भी।

अच्छी बात है कि अब LBGT पर खुलकर बात हो रही है उसमें स्त्री की अभिव्यक्ति बढ़े, इस विषय में उसके विचारों और निर्णयों और यौनिकता का सम्मान किया जाए। यह भी देह-स्वातंत्र्य है।

आकाश माथुर- प्रवासी लेखक इन दिनों जमकर लिख रहे हैं। उन्होंने दुनियाभर में हिन्दी का प्रचार किया है। दुनिया में हिन्दी साहित्य को प्रवासियों से क्या वाकई में मदद मिली है या वो एक दायरे तक सीमित है।

लक्ष्मी शर्मा- बहुत अच्छा लगता है। यही नहीं, मुझे तो लगता है कि वे साहित्य के लिए हम भारतवासी लेखकों से ज़्यादा कर रहे हैं।

देखिए, यहाँ भारत में प्रचुर लेखक हैं प्रचुर पाठक हैं और प्रचुर प्रकाशक हैं, विदेशों में ये सब सुविधा नहीं है। ऐसे में स्थानीय लेखक जिस तरह समय, श्रम, ऊर्जा और धन लगा कर साहित्य के लिए निष्ठा से परिश्रम कर रहे हैं, सृजन कर रहे हैं महत्वपूर्ण और श्लाघनीय है। और ये आसान काम नहीं है इस बात को मैं स्वयं दुबई में रहते हुए देखती रही हूँ।

भारत से दूर बैठे हुए वैश्विक साहित्यिक परिदृश्य को अलग नज़रिए से देखना, विश्व मानव की पीड़ा को समझना और प्रवासी नागरिकों की दिक़्क़तों-चिंताओं को साहित्य में लाना प्रवासी नागरिकों का बड़ा योगदान है।

ये नहीं कह सकते हैं कि वे एक ही दायरे में सिमटे हुए हैं। इसे हम दूसरी तरह से ऐसे देख सकते हैं कि सीमित संख्या में होते हुए भी लोग एकजुट हो कर साहित्य-सेवा कर रहे हैं, संस्था बना कर पुरस्कार दे रहे हैं वहाँ कुछ ज़्यादा अच्छे और कुछ ज़रा कम अच्छे लेखक हो सकते हैं (भारत में भी यही अनुपात है)। न भूलें कि एक दायरे में हैं लेकिन एकजुट हैं।

आकाश माथुर- आपको प्रवासी लेखकों में कौन पसंद है और क्यों।

लक्ष्मी शर्मा- मुझे हर वह लेखक पसन्द है जो देश से दूर रह कर इस साहित्य-यज्ञ में अपनी हवि दे रहा है, हिन्दी का प्रचार-प्रसार कर रहा है। विशेष रूप से मुझे सुधा ओम ढींगरा, तेजेन्द्र शर्मा, ज़किया ज़ुबैरी, शिखा वार्ष्णेय, पूर्णिमा बर्मन और स्नेहा देव का लेखन पसन्द है।

नॉर्थ कैरोलाइना, अमरीका में रह रहीं सुधा ओम ढींगरा हमारे समय के प्रवासी साहित्यकारों में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं। उनके लेखक में परिवेश का प्रवासी की दृष्टि से नहीं बल्कि स्थानीय बन कर सहज, विश्वसनीय चित्रण होता है। अपनी कृतियों में समसामयिक सरोकार, मानव जीवन की व्यथा और जिजीविषा से भरे चरित्रों के मनोविज्ञान को करुणा, सम्वेदनशील, रोचक सहजता से उकेरती हैं।

लंदन निवासी प्रसिद्ध लेखक तेजेन्द्र शर्मा अपनी रचनाओं में उलझे व्यक्तित्व के पात्रों को इस तरह बुनते हैं कि उनकी गिरहों में पाठक की चेतना स्वयं पात्र बनकर उलझने लगती है। ज़किया ज़ुबैरी जी का लेखन किसी पहचान का मोहताज नहीं है वे भी मुझे पसन्द हैं।

दुबई निवासी लेखिकाओं में स्नेहा देव, जो हिन्दी और अंग्रेज़ी में बराबर अधिकार से लिखती हैं, की कविताओं में मानवीय आभ्यन्तर की छवियाँ और आध्यत्मिकता उन्हें ख़ास बनाती हैं।

लखनऊ की मूल निवासी पूर्णिमा बर्मन, जो शारजाह में 35 वर्षों से रह रही हैं, साहित्य की प्रत्येक विधा पर समान अधिकार से अच्छा साहित्य रच रही हैं, खास कर नवगीत, हाइकु आदि।

दुबई निवासी शब्बीर मुनव्वर जो कि शानदार ग़जल-गो हैं, अनु शर्मा नवगीतकार के रूप में तथा आरती गोयल भी बहुत अच्छा काम कर रही हैं।

अबु धाबी में रह रहे अनघ शर्मा शानदार कहानियों के द्वारा सतत् लेखन रत हैं और अभी-अभी 'नूह की नाव' कविता के लिए पुरस्कृत हुए देवेश पथ सारिया ताईवान में रहते हुए कविता के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं।

आकाश माथुर- आजकल ऑडियो, और नेट पर कहानियों का चलन बढ़ रहा है। ख़ास कर प्रवासी लेखक डिजिटल प्लेटफॉर्म के लिए लिख रहे हैं और डिजिटल ही पढ़ रहे हैं। इससे लेखकों का किस तरह का फ़ायदा या नुक़सान हो रहा है।

लक्ष्मी शर्मा- ज़माना बदल गया है, नई तकनीकें हमारे जीवन में आ गई हैं, साहित्य भी इससे अछूता क्यों रहे। वह भी प्रभावित हुआ है। ऑडियो और ई बुक का प्रचलन साहित्य में छापाखाने को टक्कर दे रहा है। इसके व्यवहारिक कारण भी हैं।

इस व्यस्त युग में नई पीढ़ी के पास इतना

समय नहीं है कि वह एक जगह बैठ कर किताब पढ़ने में अपना समय बर्बाद करे। ऐसे में वह कार चलाते हुए, रसोईघर में काम करते हुए या टहलते हुए कानों में श्रवण यंत्र लगा कर अपना पढ़ने का शौक पूरा कर लेता है। इसी तरह युवा वर्ग सफ़र के दौरान अपने झोले में दस किताबें ले कर चलने की जगह एक किंडल से काम चलाना ज़्यादा पसंद करता है। मुझे नहीं लगता कि इसमें कोई बुराई है।

लेखकों में भी इन माध्यमों के लिए लिखने का रुझान बढ़ा है, इसका कारण भी वही पाठकों की रुचि है। दूसरे, इससे लेखक की प्रकाशक पर निर्भरता भी कम हो जाती है। रही बात नफ़ा-नुकसान की तो मुझे नहीं लगता कि ईमानदारी से हो तो इस में साहित्य का विशेष नुकसान है। प्रकाशन किसी भी माध्यम पर है हो रहा है और दोनों माध्यमों में प्रकाशक काम कर रहे हैं लेकिन हाँ, पायरेसी की समस्या बहुत बड़ी समस्या है, कंटेंट का बिना अनुमति लिए किसी अन्य जगह छाप देना लेखकों प्रकाशकों दोनों के लिए अहित करता है। बाकी हम जैसे पुरानी पीढ़ी के लेखक-पाठक जिन्हें काग़ज़ों पर स्याही की महक में छपे आखर ही मोहते हैं, आज भी किताब ख़रीदना-पढ़ना पसन्द करते हैं, बहुत बड़ी संख्या में हैं। और सदा रहेंगे।

पेंगुइन, ऑक्सफोर्ड, ज्ञानपीठ और शिवना आदि जैसे प्रकाशक संस्थान आज भी पुस्तकें छाप रहे हैं और ख़ूब छाप रहे हैं।

आकाश माथुर- आपको साहित्य में प्रवासी लेखकों से क्या उम्मीद है और उनका लेखन हिन्दी साहित्य को कैसे पोषित कर रहा है?

लक्ष्मी शर्मा- लेखकों से उम्मीद बस एक ही होती है कि वे अपनी मातृभाषा के लिए ख़ूब लिखें ताकि वैश्विक स्तर पर हिन्दी का प्रचार-प्रसार हो। और यह कार्य प्रवासी हिन्दी लेखक बेहतरीन तरीके से कर रहे हैं

आकाश माथुर- आपको किन नए साहित्यकारों में उम्मीद दिखाई देती है और क्यों? साथ ही वे हिन्दी साहित्य को किस तरह पोषित कर रहे हैं।

लक्ष्मी शर्मा- पिछले एक दशक से युवा लेखकों की पूरी पीढ़ी सामने आई है जो बहुत अच्छा काम कर रहे हैं। अनघ शर्मा, उषा दशोरा, उमा शर्मा, तसनीम ख़ान, आकाश माथुर जैसे युवा लेखक हिन्दी साहित्य में ताज़ा हवा के झोंके की तरह है और उम्मीद नहीं, विश्वास जगाते हैं कि हिन्दी साहित्य की आखर जोत को वे नवीन तेज से आगे बढ़ाएँगे। नई पीढ़ी की ईमानदारी, वैज्ञानिक दृष्टकोण, दुनिया और जीवन को नई दृष्टि से देखने और नई भाषा में कहने विशेषता हिन्दी को समृद्ध कर रही है।

आकाश माथुर- आपसे पहले की पीढ़ी, आपकी पीढ़ी और आने वाली पीढ़ी के साहित्यकारों में क्या अंतर है। इनमें से आपको किस पीढ़ी के लेखक ज़्यादा आकर्षित करते हैं और क्यों?

लक्ष्मी शर्मा- बदलते समय और परिवेश में जीवन अनिवार्य रूप से बदलता है। प्रत्येक व्यक्ति उससे ग्रहण करता है, बदलती भाषा, जीवन-दृष्टि आदि से प्रभावित होता है। यह अंतर साहित्य में भी अनिवार्य रूप से आया है क्योंकि लेखक अपने समय से ही लेता है, समय को ही बाँचता-रचता है। मुझे दोनों पीढ़ी के लेखक बराबर रूप से पसन्द हैं क्योंकि हर युग में अच्छा लेखक केवल अच्छा लेखक होता है जो अपने युग की सीमाओं को लाँघकर लिखता है।

आकाश माथुर- नई हिन्दी कहानियों और मूल साहित्य की कहानियों के भविष्य को किस तरह देखती हैं?

लक्ष्मी शर्मा- मैं भविष्य की हर संभावना को आशा से देखती हूँ, उस विश्वास के साथ कि जो भी नवीन आएगा वह नई दृष्टि और विचार लाएगा ही। संस्कृति का आरम्भ ही शब्द नाद के साथ हुआ है और रहती दुनिया तक रहेगा, चाहे वह किसी भी भाषा में कहा-रचा जाए।

कहानियों का ही नही साहित्य की हर विधा का भविष्य उजला है। व्यक्तिगत रूप से नई पीढ़ी के पढ़ने के रुझान देखते हुए मुझे लगता है कि आने वाला समय कथेतर साहित्य का है। ख़ास कर संस्मरण, यात्रा-वृतांत का।

आकाश माथुर- आपकी कहानियों में मालवा की झलक दिखती है तो कभी राजस्थान की। आप दो संस्कृतियों को सँभाले हुए हैं, इसको लेकर कभी कोई दिक़्क़त आई या हर महिला के लिए दो संस्कृतियों को सँभालना आसान है।

लक्ष्मी शर्मा- मेरा जन्म और पालन-पोषण इंदौर में हुआ है, मालवा मेरी आत्मा में बसता है। और मूल रूप से मैं राजस्थान की हूँ, शादी के बाद फिर राजस्थान में आ गई हूँ, तो कह सकते हैं राजस्थान मेरे ख़ून में बसा है तो इन दोनों का असर आना लाज़मी है।

आकाश जी मैं ही नहीं दुनिया की हर स्त्री दो नहीं कई-कई संस्कृतियों को एक साथ सँभालती है। मेरे घर में तो मध्यप्रदेश और राजस्थान के अलावा उत्तरप्रदेश के साथ केरल की संस्कृति भी बहुओं के रूप में सम्मिलित हो गई है जिन्हें माँ होने के नाते मैंने अपनाया है।

रही बात दिक़्क़त की, तो दिक़्क़त वहाँ आती है जहाँ किसी काम या विचार को अपनाने की ज़िद हो। जहाँ लोकतांत्रिक मूल्य हो वहाँ यह काम ख़ुशी बन जाता है। बहू के रूप में छोटे-मोटे तिक्त अनुभवों के अलावा मुझे कभी कोई दिक़्क़त नहीं आई। सास के रूप में तो मैं नई संस्कृतियों को आनंद और रुचि से जीती हूँ। यह हमारे नज़रिए पर है कि हम नई चीज़ों और बदलावों को आसान बनाते हैं या मुश्किल।

आकाश माथुर- चलते-चलते अंतिम प्रश्न आपके पाठकों की तरफ़ से। आप अब किस विषय पर काम कर रही हैं और हमें कब तक प्रतीक्षा करनी होगी।

लक्ष्मी शर्मा- मैं उन लोगों में हूँ जो लिखने में ज़रा सुस्त हैं, लेकिन इस वर्ष आपको मेरी संस्मरणात्मक किताब पढ़ने को मिलेगी जो कथा की सरहद लाँघती है किंतु कथेतर भी नहीं है। इसके अलावा मोहन राकेश के चरित्रों पर एक कथेतर पुस्तक आएगी जो अकादमिशियन लक्ष्मी शर्मा की है। फिलहाल मैं एक उपन्यास पर काम कर रही हूँ जो सम्भवत: अगले साल ही आ पाएगा।

000

सलाखों को झकझोरते हाथ और हवा में लटकते पाँव

अनिल प्रभा कुमार

अनिल प्रभा कुमार
मोबाइल- 973 978 3719
ईमेल- aksk414@hotmail.com

मैं अपनी विस्मृति के उस तल तक पहुँच रही हूँ कि उससे पहले जैसे कोई स्मृति थी ही नहीं। इतनी छोटी थी तब मैं। सच यह है कि यह घटना विस्मृति के गर्भ में ही थी। मुझे लगा कि मैं इसे भूल चुकी हूँ पर जैसे-जैसे मैं बड़ी हो रही थी तो यह मेरे चेतन मन में कौंधने लगी। इसका आकार और रूप स्पष्ट और तीव्र होता गया। आज जब मैं जीवन परिस्थितियों के विषय में अधिक सजग और सचेत हूँ तो यह घटना मुझे बार–बार आकर ललकारती है। गुहार लगाती है – "कुछ कर। अभी तक कुछ भी तो नहीं बदला।"

एक छोटा सा बुलबुला उठा था। सोचा, विलुप्त हो गया। हुआ नहीं। वह मेरे समय के साथ बढ़ता गया और इतना दैत्याकार हो चुका है कि उसकी छाया के नीचे समस्त दुनिया की औरतें आ गईं। एक बहनापा बन गया हम सभी में। तब मालूम नहीं था। मेरी संवेदना को भड़का देने वाली चिंगारी, मेरे लेखन का बीज शायद तभी उस घड़ी ही पड़ गया था। वह बहुत लंबे समय तक सुषुप्त अवस्था में रहा पर मृत कभी नहीं था। उसकी नब्ज़ हमेशा चलती रही।

इतना याद है कि तब हम दिल्ली में उस बुलंद इमारत में रहते थे जहाँ के रहने वाले उसी तरह इसे छोड़कर पाकिस्तान चले गए थे, जिस तरह मेरे ननिहाल के लोग अपना सब कुछ लाहौर में छोड़कर जान बचाते हुए दिल्ली पहुँचे थे। तब हर बातचीत की शुरूआत यूँ होती थी–"जब पाकिस्तान बना...।" हालाँकि तब तक पाकिस्तान बने भी काफी समय हो चुका था पर उसके ज़ख्म, उसके क़िस्से बताने वाली पीढ़ी इस विभाजन को न भूलती थी और न ही भूलने देती थी। हम जैसे बच्चों के लिए ये हॉरर स्टोरीज़ थीं। हमारी कल्पनाओं में भी डर और आतंक ही छाए रहते।

पहली मंज़िल पर हम और दूसरी मंज़िल पर मेरी नानी और रिश्ते के मामा-मामी। तब तक मेरा कोई भाई पैदा ही नहीं हुआ था। किसके साथ खेलती ? चुपके से खिसक कर ऊपर चली जाती। नई ब्याही मामी बहुत प्यार करतीं और मामा खेलते तो नानी कुछ अच्छा-सा खिलाकर लाड़ करतीं। उस घर में रौनक थी और मेरे लिए वही आकर्षण।

वहाँ तक पहुँचने के लिए सीढ़ियाँ चढ़ना ज़रूरी था। पक्की लाल पत्थर की आठ सीढ़ियाँ। फिर एक चौड़ी सीढ़ी, दायीं ओर मोड़ पर एक और चौड़ी सीढ़ी। इस घुमाव के बाद फिर आठ सीढ़ियाँ। मुश्किल यह थी कि दोनों चौड़ी सीढ़ियों के मध्य में, ऊपर की तरफ एक छोटा सा रोशनदान था–लोहे की मज़बूत सलाखों वाला। मेरे लिए वह बहुत चुंबकीय था। दिन में उस रोशनदान से रोशनी और हवा आती। पीछे ज़मीन पर खड़े पीपल के पेड़ की शाखाएँ हिलतीं। धुँधलका होते ही वह शाखाएँ भूत-प्रेतों की बाँहें बन जातीं।

उस तरफ एक और दुनिया थी जिसके पात्र अदृश्य थे पर उनकी आवाज़ें मेरे बाल मन को खींचतीं। मेरा मन वहाँ झाँकने को आतुर। मैं अध-बीच की पहली और दूसरी सीढ़ी के मध्य वाली जगह पर संतुलन बनाकर, किसी तरह से उचककर रोशनदान के बढ़े हुए हिस्से को एक

हाथ से पकड़ लेती। फिर नीचे की दीवार पर पैर घसीटते हुए, दूसरे हाथ से किसी तरह रोशनदान की किनारे वाली छड़ पकड़ती। पाँव हवा में झूलते रहते और मैं दोनों हाथों से सलाखों को कस कर पकड़े रखती। ठुड्डी सिल पर और सचमुच का बायस्कोप शुरू हो जाता।

समझ में आ गया कि हमारा घर मुख्य सड़क पर था और उसके समानांतर पिछली ओर एक गली चलती थी। ऐन हमारे घर के पीछे, उस गली में ही यह एक बड़ा-सा अहाता था जिसके तीनों ओर थे छोटे-छोटे एक कमरे वाले घर और घरों में परिवार। रोशनदान के सामने जो सबसे स्पष्ट रूप से दिखता था वह दृश्य था एक भट्ठी का। एक बड़ी उम्र की महिला बड़ी मुस्तैदी से मक्की और चने के दाने भूनती रहती। उस जगह की चर्चा मैंने भट्ठी वाले घर के नाम से सुनी थी। वहाँ जीवन था। बहुत से लोग और बहुत सी हलचल। मैं तब तक उस रोशनदान से लटकी रहती जब तक मेरे छोटे-छोटे हाथों में उन सलाखों को पकड़े रहने का दम होता। पाँव ज़मीन पर हैं या हवा में झूल रहे हैं, इन सबसे बेख़बर।

एक दिन उसी जगह से अलग ही तरह का शोर सुनाई दिया। एक स्त्री की दिल दहला देने वाली चीखें। चीखों को दबाता हुआ एक सामूहिक कर्कश कोलाहल। मैं झट से उन सलाखों को पकड़कर लटक गई। उस छोटे से झरोखे से जो दृश्य देखा वह मेरी चेतना में तेज़ाब से लिखा गया। बचपन में ही मेरे मन की कोमलता दाग़ी गई हो जैसे।

आठ-दस औरतों का झुंड। बीच में घिरी, पिटती, चीखती एक कम उम्र की युवती। एक आदमी लगातार उसे चप्पल, थप्पड़ों और घूँसों से बेरहमी से मार रहा था। युवती के सिर से खिसका हुआ दुपट्टा, कपड़े अस्त-व्यस्त और उस घेरे से बाहर भागने की कोशिश करती हुई वह। आदमी उसकी लंबी चोटी बड़ी बेदर्दी से खींचकर उसे फिर से वापिस घेरे में घसीट लेता। फिर से अंधाधुंध उसे पीटने लगता। बीच-बीच में उसके पेट पर लात से भी प्रहार करता। उस औरत की पीड़ा और कलेजा चीरती चीखें। मेरी साँस रुकने लगी। मैं बहुत दूर थी, बेहद असमर्थ। लगा जैसे उसकी चीखें मेरे अलावा और किसी को भी सुनाई नहीं दे रही थीं।

लोग जानबूझ कर अंधे और बहरे कैसे हो जाते हैं, बहुत देर से समझ में आया। यह भी कि पितृसत्ता के कई रूप होते हैं। यह एक स्त्री को जानवर की तरह घेराबंदी करके सामूहिक हाँका लगाने वाली भी स्त्रियाँ ही थीं। वे सब औरतें ही छिब्बीयाँ दे देकर, उस आदमी को जो शायद उस युवती का पति था, उसे और, थोड़ा और पीटने के लिए प्रोत्साहित कर रही थीं। उनके हाथ नचा-नचा कर ललकारने से वह आदमी जैसे और ऊर्जा से भर जाता। जितनी उस पिटती औरत की चीखें माहौल में कंपन भरतीं उतना ही वह अपनी मर्दानगी के जोश में और हिंसक होता जा रहा था।

मुझे लगा कि कुछ भयंकर घटित हो रहा है। मैंने पहली और आख़िरी बार किसी अकेली, निस्सहाय औरत को यूँ पिटते हुए देखा था। मेरी साँसें रुकने लगीं। शायद सलाखों पर मेरी पकड़ शिथिल हो गई या पाँव लटकते हुए सुन्न। दिमाग़ सकते में था। उस उम्र के लिए यह समझ में न आने वाला एक भयंकर अनुभव था। चुपचाप ऊपर नानी के घर चली गई। किसी को कुछ नहीं बताया। शायद कभी भी किसी को भी नहीं बताया।

वर्षों बीत गए। मैं भूल गई होऊँगी शायद। सलाखें वहीं बरकरार रहीं। हल्की सी रोशनी और थोड़ी सी हवा आने के लिए। बस इतनी भर ही जगह थी।

000

मैं उसी घर में बड़ी हो रही थी अपने माहौल की सलाखों के साथ। ज्यों-ज्यों मुझे होश आता गया मैंने अपने इर्द-गिर्द भी इन सलाखों की सख्ती महसूस करनी शुरू की। जब बच्ची थी तो हल्की कोमल बाड़ थी फिर मेरी उम्र के साथ-साथ उनकी कठोरता भी बढ़ती गई। यह पितृसत्ता की सलाखें थीं। पहरे थे, ढेरों-ढेर वर्जनाएँ और निषेध।

वैसे मैं एक अच्छे-ख़ासे शिक्षित परिवार से थी। माँ लाहौर के सेकर्ड हार्ट कॉनवेंट की पढ़ी हुईं। इंटर पूरा किया पर बी ए के प्रथम वर्ष में विवाह हो जाने से उसका अंतिम वर्ष पूरा नहीं कर पाईं। जिसका उन्हें हमेशा ताना सुनना पड़ा और उन्हें अफ़सोस भी बहुत रहा। मेरे नाना लाहौर के प्रतिष्ठित सिविल-सर्जन थे। एक रुतबेदार बाप की बेटी और तीन भाइयों की इकलौती बहन होने के बावजूद भी मेरी माँ को लिंग-भेद का शिकार होना पड़ा। वह लड़की हैं, यह बात उन्हें बात-बात पर महसूस करवाई गई। उनकी हर छोटी-बड़ी इच्छा को यह कहकर वहीं दबा दिया जाता कि शादी के बाद जो मर्ज़ी करना। वही सलाखें तब भी थीं और अब भी। वह सब कुछ समझतीं और मौन–प्रतिबद्ध थीं कि अपनी बेटी को वह कभी भी इस जीवन अनुभव से नहीं गुज़रने देंगी। आज सोचती हूँ तो वह शिक्षित, प्रगतिशील विचारों वाली, अपनी सुंदरता से अनभिज्ञ, एक पारंपरिक स्त्री का समर्पित जीवन जीने को आजीवन बाध्य रहीं।

मेरे पिता शिक्षा के स्तर पर उस ज़माने के इंग्लिश में एम ए और पंजाब यूनिवर्सिटी के टॉपर रह चुके थे। अपनी हॉकी टीम के साथ काबुल तक का दौरा कर चुके थे। टाइम्स ऑफ इंडिया के सह-संपादक थे पर विचारों में वह क़स्बाई, सामंती मूल्यों के घोर समर्थक! मेरी दादी के रूढ़िवादी विचारों और संस्कारों के ध्वज वाहक।

अपने बच्चों से प्यार वह बेहद करते थे पर उन्हें अपने ढंग से जीने की स्वतंत्रता देने में विश्वास नहीं करते थे, ख़ासकर स्त्रियों को। मेरे उपन्यास "सितारों में सूराख" का नायक जय जब तर्जनी उठा कर कहता है कि "बस, एक बार कह दिया न।" वह अकाट्य संवाद मेरे पिता का था। जिसके आगे कोई तर्क, कोई समझौता या संवाद की गुंजाइश ही नहीं होती थी। मेरे पिता शिक्षा के पक्षधर थे। पढ़ो ! वह हरदम यही आदेश देते। पढ़ाई करना एक सुरक्षित ज़मीन थी। मैं पढ़ने में अच्छी थी। उन्हें मेरी उपलब्धियों पर गर्व भी होता। उपलब्धियाँ वही जो उनकी खींची हुई लक्ष्मण रेखा के भीतर हों। घर में वह स्वयं मेरे लिए हिन्दी की पत्रिकाएँ लाते। घर में बैठकर पढ़ो। मैं स्कूल में लेख पढ़ती। वाद- विवाद प्रतियोगिताओं में भाग लेती। अपने क्षेत्र के

सभी स्कूलों के सामूहिक सांस्कृतिक कार्यक्रमों का संचालन करती। पापा जी ख़ुश होते, सभी सिर्फ़ लड़कियों के स्कूल थे। उनकी तनी हुई भृकुटी के संकेत स्पष्ट थे। किसी भी लड़के से मिलना, बातें करना मना था। चाहे वे मेरे ममेरे, चचेरे भाई ही क्यों न हों! हँसना तो वर्जित ही था। बिना कहे भी मुझे उनके बहुत से क़ानून मालूम थे पर समझ नहीं आते थे। मन पहले परेशान होता था। फिर एक विवश विद्रोह जिसमें उत्ताप नहीं था। वह बस इच्छाओं की रेत में दबा सुलगता रहा। समय आने पर मेरे लेखन में भी यह बहुत मँझ कर, रिस-रिस कर बह आया। कभी भी लावा बनकर विस्फोटक नहीं हुआ। मैंने इन बंदिशों को साधने का हुनर सीख लिया।

दिल्ली जैसे शहर में रहते-पलते हुए भी मैंने जान-बूझ कर वुमन कॉलेज चुना। जानती थी कि को-एड कॉलेज में रहते हुए पिता के अदृश्य आतंक का भार मैं सहन नहीं कर पाऊँगी। कम से कम लड़कियों के बीच तो मैं सहजता से हँस बोल सकूँगी। इधर मैं युवा हो रही थी और उधर अदृश्य दीवारें मेरे पास और पास घिरती गईं। मुझे अकेले कहीं बाहर जाने की इजाज़त नहीं थी। अक्सर मेरी माँ साथ होतीं। मुझे इस बात से भी कोई परेशानी नहीं थी पर हर जगह तो माँ के साथ नहीं जाया जा सकता था। चाहे कोई गर्ल्स गाइड का कैम्प हो, कोई शादी-ब्याह, किसी भी रिश्तेदार का घर, मतलब जहाँ भी कभी कहीं किसी युवा लड़के के होने की संभावना होती- एक पत्थर पर लकीर खिंच जाती-नहीं। ऐसी लकीर जिसके आगे कोई तर्क, आँसू, उदासी के कोई मायने ही नहीं होते थे। बस, एक बार कह दिया न!

मेरी बेबस फड़फड़ाहट। दुनिया को रोशनदान के भीतर से देखती, किताबों की ख़ुशबू से महसूस करती। छोटी- छोटी ख़्वाहिशें और बड़ी-बड़ी सलाखें। मैं शादी के सपने देखती जिसका पर्याय था बस, पति के साथ घूमना और फ़िल्में देखना। प्रेमी का तो सवाल ही नहीं था। साथ की सहेलियाँ सब जगह जातीं, मस्ती करतीं। मासूम सी आज़ादी फ़िल्म देखने की। याद नहीं उन्होंने कभी ख़ुशी से स्वीकृति दी हो। पिक्चरें देखीं। माँ को बताकर और पापा जी से छिपाकर। डरते-काँपते हुए, धड़कते दिल और अपराध भावना के साथ। दिल्ली जैसे शहर में पली, सीमित आज़ादी तो मिली पर उड़ान पर प्रतिबंध थे। अपनी सहपाठिनों के घर, उनकी सगाई या शादियों में जाने तक के लिए मुझे बहुत रोना-धोना और अनशन करना पड़ता। मेरी वह लोहे की छड़ें कभी अपनी जगह से हिली तक नहीं। मेरी सहेलियाँ कभी अपनी बंदिनी सहेली को मुक्त कराने के लिए समूह बनाकर आतीं। कभी अपने अभिभावकों को साथ लाकर मेरी पैरवी करतीं तो कभी-कभी मुझे पैरोल मिल जाती। तब तक रो-रो कर बेहाल, सूजी आँखों और मुरझाए चेहरे और बुझे हुए मन से मैं फिर से खिल नहीं पाती थी। चली तो जाती पर आनंद कहीं गुम हो चुका होता।

मुझे ये निषेध तब समझ नहीं आते थे। अब जब यौन-शोषण की बातें सुनती–समझती हूँ तो लगता है कि शायद मेरे पिता मेरी सुरक्षा को लेकर चिंतित थे। काश ! वह मुझसे बात करते, समझा देते या माँ के द्वारा ही कहलवा देते। उनकी क्रोध भरी चुप्पी या कभी हिटलरी दहाड़ के सामने माँ की भी कुछ नहीं चलती थी। मेरा रोना-धोना, अनशन सब बे-असर। पापा जी कुछ भी सुनने की मानसिक स्थिति में नहीं होते थे और न ही हमारी हिम्मत होती कि उनके सामने कोई तर्क रख सकें।

ऐसे वातावरण में मैंने उसी झरोखे की तरफ़ मुँह करके साँस लेनी शुरू कर दी जहाँ से मुझे ऑक्सीजन मिल सकती थी। मेरे पास विचार थे, क़लम थी और थी साहित्य के प्रति सहज अभिरुचि। मैं बहुत पढ़ती पर कोर्स के बाहर की पुस्तकें। अच्छी पुस्तकें पढ़कर एक अलग तरह के नशे में रहती। कुछ छोटा-मोटा लिखती भी। कॉलेज की साहित्यिक पत्रिका की संपादक थी। लिखने का रोग लग चुका था। कोई भी काग़ज़ का टुकड़ा हाथ लग जाए, पढ़ना शुरू। मेरे अंग्रेज़ी और उर्दू के विद्वान पिता को इतनी हिन्दी तो आती ही थी कि वह मेरी किताब पर नज़र मार सकें। एक बार यूँ ही नाम सुनकर मंटो की कहानियों की कोई किताब घर ले आई। तब ज़्यादा समझ क्या ही आया होगा। शायद "खोल दो" कहानी थी। विभाजन की कहानी है, यह तो समझ में आ गया। साथ ही पता नहीं क्यों लगा कि शायद नहीं पढ़नी चाहिए थी। जैसे इसे पढ़कर कोई वर्जित गुनाह हो गया। मुझे साँस लेने में दिक्कत होने लगी। शायद कहीं कुछ सतर्कता थी कि मैंने चाह कर भी कभी डायरी नहीं लिखी। बहुत छोटी सी दुनिया थी मेरी। पुस्तकें, पत्रिकाएँ, कॉलेज, सहेलियाँ और माँ। माँ से मिलने आने वाली स्त्रियों की बातें भी मैं ख़ूब डूब कर सुनती। वही मेरा अनुभव क्षेत्र था। मेरी कल्पना के पंखों को उड़ान भरने के लिए अनुकूल हवाएँ।

गर्मियों की छुट्टियाँ और आलसी, निकम्मे दिन। किसी निकट संबंध में एक लड़की थी, मुझसे थोड़ी बड़ी। उसकी माँ हमारे घर आती और मेरी माँ से बातें करती, मैं सुना करती। इस महिला का बात करने का ढंग सबसे अलग था। कुछ-कुछ दुनिया मेरी ठोकर पर जैसे लहजे में बात करती। मैं उसकी बातों के पार, उसकी असली तकलीफ़ को देखने की कोशिश कर रही थी तभी कुछ घुमड़ा मेरे भीतर। मैं उस लड़की की काया में प्रवेश कर उस दुखती रग तक पहुँच गई। मैंने एक ही बैठक में कहानी लिखी- खाली दायरे। लगा मैं किसी समाधि में हूँ। लिखकर अजीब सी अनुभूति हुई जैसी पहले कभी नहीं हुई थी। एक भीतरी सामर्थ्य का भी अहसास हुआ। मैं अपने दिल की बात निस्संकोच काग़ज़ों पर उतार सकती हूँ।

संयोग यह हुआ कि इस कहानी को ज्ञानोदय के नई कलम अंक की प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार मिल गया। कठिनाई यह हुई कि अब मुझे उन्हें अपनी तस्वीर भेजनी थी। मेरा दिमाग़ चीखा–ख़तरा ! कहीं अगर मैंने अपनी तस्वीर भेज दी और वह सुंदर आ गई तो ? किसी पाठक ने पत्र लिख दिया तो मेरा मरण निश्चित था। माँ के साथ चाँदनी चौक के किसी स्टूडियो में फ़ोटो खिंचवाई। जानबूझ कर गाल फुला लिए, आँखें भेंगी कर लीं और चेहरे पर लड़ाकू भाव ले आई। माँ के लिए हँसी रोकना मुश्किल हो रहा था और मुझे अपनी जान बचा कर रखनी थी।

संयोग मेरे लिए नए-नए रास्ते खोल रहे थे। मैंने चोरी-चोरी किसी तरह यूथ फेस्टिवल के लिए एक रेडियो प्ले की तैयारी भी कर ली पर रिकॉर्डिंग के दिन तो बताना ही पड़ा। क़िस्मत से कोई रिश्तेदार हमारे यहाँ रह रही थीं। उन्होंने अपने ऊपर मेरी ज़िम्मेदारी लेकर मुझे स्टूडियो तक पहुँचाया।

उसी तरह डॉक्टर लक्ष्मीनारायण लाल ने मुझे दूरदर्शन की किसी परिचर्चा के लिए चुना। मैं अपने सहज स्वाभाविक रूप में बोल रही थी और कंट्रोल रूम के भीतर बैठे प्रोड्यूसर किसी नई उद्घोषिका की खोज में थे। मैं बिना किसी टेस्ट के चुन ली गई। यह प्रतिष्ठा की बात थी पर पापा जी? उन्होंने रोका तो नहीं लेकिन ज्यों ही तैयार होकर मैं पहले दिन घर से निकलने लगी तो पास आकर उन्होंने एक ही वाक्य बोला -"वहाँ जाकर आदमियों से ज़्यादा बकड़- बकड़ मत करना।" इस वाक्य की सारी हदें मुझे समझ में आ गईं। जब तक मैं दूरदर्शन पर काम करती रही कभी सहज होकर सहकर्मियों से बात नहीं कर पाई। वही हाल यूनिवर्सिटी का था। कभी अपने किसी भी सहपाठी से बात तक नहीं की। जब-जब मुझे रंगमंच पर अभिनय करने के प्रस्ताव आए मैंने स्पष्ट बता दिया कि मेरे पिताजी कभी इसकी स्वीकृति नहीं देंगे। मैंने स्वयं ही अपने को सलाखों की ओट में कर लिया था।

अच्छी बात यह थी कि मेरे पाँवों में बेड़ियाँ थीं। मैं उड़ान नहीं भर सकती थी पर मेरे हाथों में हथकड़ियाँ भी नहीं थीं। मेरा मन, और मेरी क़लम आज़ाद थी। कल्पना के पंखों पर सवार होकर, संवेदना का तार पकड़ कर मैं मनचाहा डूब-उतरा सकती थी। वह मेरा साम्राज्य था। जैसे मेरे ही भीतर एक गर्भगृह था जिसमें एक लड़की नृत्य करती है। सपने देखती है और अपने ही मन में लिखे गए संवादों पर अभिनय करती है और फिर उसके द्वार पर अनुशासन, निषेधों का पत्थर रखकर बाहर निकल आती है। एक भली सी पढ़ाकू लड़की, घरघुसरी।

000

कहते हैं न कि आप जब किसी के साथ हँसते हैं तो वह भले ही आपको याद न रहे लेकिन जब आप रोते हैं तो वह हमेशा याद रहता है। जीवन में दो महत्त्वपूर्ण अवसरों पर इन बंदिशों ने बहुत रुलाया। एम ए की अंतिम परीक्षाएँ चल रही थीं। अचानक एक दिन मेरी मामी जी अपनी आठ महीने की गर्भवती बेटी और तीन साल की नातिन के साथ हमारे घर पहुँच गईं। उनके दामाद का भयंकर कार-एक्सीडेंट हुआ था और वह हमारे घर के समीपवर्ती अस्पताल में भर्ती था। हम दिल्ली में थे तो वे लोग हमारे पास ही आकर रुके। मम्मी ने जल्दी से उन्हें ऊपर वाला कमरा खोल दिया। पापा जी का तनाव बढ़ रहा था। वह मेरी परीक्षाओं के कारण उनके आने से बेहद नाराज़ थे पर बात की गंभीरता को देखकर चुप कर गए। घर में बहुत तनावपूर्ण वातावरण बन गया। वह बच्ची खिसक कर नीचे आ जाती और मैं उससे खेलने लगती। सब घबरा जाते। मम्मी मेरे कमरे का दरवाज़ा बाहर से बन्द कर देतीं ताकि मेरी पढ़ाई में कोई ख़लल न पड़े।

एक दिन मुझे पर्चा देने जाने से पहले थोड़ी घबराहट हो रही थी। लगा कुछ महत्त्वपूर्ण दोबारा पढ़ने की ज़रूरत है। मैं हड़बड़ी में पढ़ रही थी और उधर यूनिवर्सिटी जाने का वक्त भी क़रीब आ रहा था। एक आँख घड़ी पर और दूसरी अपने नोट्स पर। घर से बाहर आई तो समझ गई कि बस का इंतज़ार किया तो समय पर पहुँचना असंभव है। दूरदर्शन पर काम करने से थोड़ी पॉकेट-मनी मेरे पास हुआ करती थी। घर से निकलते ही एक खाली ऑटो दिख गया और मैं लपक कर चढ़ गई।

ख़ैर, परीक्षा देकर जब घर लौटी तो पापा जी का भयानक रौद्र रूप मेरी प्रतीक्षा कर रहा था। मेरे पिताजी लंबे क़द के थे और उनकी नज़रें बहुत तेज़ थीं। वह उस छज्जे पर ज़रा सा सिर आगे करके बहुत दूर तक देख सकते थे। उन्होंने मुझे बॉलकनी से ऑटो पर चढ़ते देख लिया था (यही बॉलकनी मेरी कहानी "बहता पानी" में प्रगट हुई है)। मुझे मालूम ही नहीं कि मैंने कोई ग़लत काम किया है।

मैं परीक्षाओं के कारण बहुत कम सो पा रही थी। ऊपर से घर में भी तनाव का धुआँ। पापा जी के इस रौद्र रूप के आघात से बिखर गई। मुझे समझ ही नहीं आ रहा था कि मैंने अपराध क्या किया है। मेरा दिल दहला हुआ था। घर के शेष सदस्य शायद अस्पताल गए हुए थे। मैं एकदम निर्जीव सी अपने कमरे में दाखिल हुई और उसे अंदर से बन्द कर लिया। बिस्तर पर गिरकर मैं बिलख-बिलख कर रोई। शायद होश में रहते पहली बार इतना। मेरे दुख का कोई पारावार नहीं था।

मेरे विवाह की भी अलग कहानी है, वह फिर कभी। जब-जब मैं भारत अपने पति के बिना जाती तब-तब फिर से दोनों परिवारों की सलाखें यंत्रवत् मेरे आस- पास आकार सावधान की मुद्रा में तैनात हो जातीं। माँ की मृत्यु के कुछ महीनों बाद मैं बदहवास सी अकेली ही भारत आई। अपने परिवार के साथ अपना दुख बाँटने। तब तक मैं दो बच्चों की माँ बन चुकी थी। अमेरिका में वॉयस ऑफ अमेरिका के लिए काम करती थी। उम्र की कई सीढ़ियाँ ऊपर चढ़ चुकने के बावजूद माँ के अकस्मात् चले जाने के दुख से छोटी बच्ची की तरह विह्वल थी। मैं परदेश में थी। मेरे लिए इस दुख की कोई पूर्णाहुति नहीं हुई थी। मैं सामान्य नहीं हो पाई कभी भी।

उन्हीं दिनों एक दिन मैंने साप्ताहिक हिंदुस्तान के दफ़्तर जाकर मृणाल पांडे से मिलने का कार्यक्रम बनाया। पापा जी को बता दिया। इनका आदेश भी आ गया कि भाई को साथ लेकर जाना। भाई-भाभी ने मेरा मुँह ताका और मैंने उनका।

हम तीनों सीढ़ियों से नीचे उतरे और सड़क पार करके दूसरी तरफ आ गए जहाँ कनॉट प्लेस जाने वाली ऑटो मिलती थी। भाई ने ऑटो रोका और कहा अब तू जा। हम अब अपने काम के लिए दूसरे ऑटो से चले जाएँगे।

दुर्भाग्य कि मेरे पिताजी ने बालकनी से थोड़ा सिर बाहर निकालकर, अपनी दूरदृष्टि के वरदान से सारा दृश्य देख लिया। कुछ समय बाद मैं लौटी और उनके ग़ुस्से का कहर मुझ पर ताबड़तोड़ बरसा।

मैं तिलमिला गई। अब मैं विवाहिता थी,

ख़ुद दो बच्चों की माँ। कुछ दिन पहले ही अपनी माँ को खो देने के दुख से जर्जर, मातृविहीना। उस वक्त मेरा अस्तित्व जैसे एक भरा हुआ ज़ख्म। यह आक्रमण इतना अकस्मात् था कि मुझमें न तर्क करने की शक्ति थी और न बचाव में कुछ कहने की। इस बार शब्दों से मेरी ताबड़तोड़ पिटाई हुई थी।

"जब कहा था कि भाई को साथ लेकर जाना है तो फिर अकेली क्यों गईं?"

अरे, मैं एक लेखिका से, स्त्री से मिलने गई थी। किसी पुरुष के साथ मस्ती करने के लिए नहीं। कौन समझाता और कौन समझता? मेरे भाइयों और भाभियों पर उनका कोई अधिकार नहीं था। माँ पर था और फिर मुझ पर। उन्हें कभी कोई तर्क समझ में नहीं आता था। बस उनकी सोच और उनका फरमान। उनकी आवाज़ की दहाड़ से मैं शिथिल हो गई। इतना ग़लत अतार्किक व्यवहार ! मैं वहीं सोफ़े पर बैठ गई। अनियंत्रित होकर बिलखने लगी जैसे मुझे कोई दौरा पड़ा हो। कहाँ- कहाँ से आकर सभी दुख एकाकार हो गए। वेग इतना प्रबल कि मेरे संयम का बाँध टूट गया।

पापा जी हमेशा की तरह अनदेखा करके दूसरे कमरे में चले गए। शायद पहले की तरह सोचा होगा कि आख़िर कब तक रोएगी। अपने आप चुप हो जाएगी। मेरा दुख असीम था। यह एक बेटी की ही कारा तोड़ने की छटपटाहट नहीं थी। यह एक पत्नी, माँ और दिल-दिमाग़ रखने वाली औरत का क्रंदन था। कब से स्थिर सलाखों पर सिर पटकने जैसा उन्माद। मुक्ति की गुहार लगाती आत्मा का रुदन। मेरी साँसें शिथिल हो रही थीं और विचार धराशायी। था तो बस दर्द। अपनी अदृश्य माँ के गले लगकर, बिलख -बिलख कर रोती हुई मैं।

शायद कमरे में अँधेरा घिर गया था, मुझे कुछ होश नहीं। आँखों ने देखा कि पापाजी ने धीरे-धीरे दूसरे कमरे का दरवाज़ा खोला और मेरे सामने आकार खड़े हो गए।

"मुझे माफ़ कर दे।" मैंने सिर उठाया और उन्हें सूनी आँखों से बस देखती रही।

"तेरी माँ भी अब यहाँ नहीं है। मैंने तेरा दिल दुखाया।" वह कहीं और देखकर बुदबुदाए।

मेरे पिता जिनके मुँह से मैंने कभी अपनी ग़लती मानने वाला कोई शब्द सुना ही नहीं था इस समय मेरे सामने खड़े थे।

"मुझसे ग़लती हो गई। मुझे तुझे कुछ नहीं कहना चाहिए था।" उनकी आँखें झुकी हुई थीं और उनमें दयनीयता थी।

मैंने यह कभी नहीं चाहा था। सिर्फ अपने लिए थोड़ा आकाश, थोड़ी उड़ान भरने भर की जगह चाही थी। उनका यूँ अपने अपराध भाव से झुक जाना मुझे और ज़्यादा उदास कर गया। मैं अभी भी सुबक रही थी पर धीमे-धीमे। कुछ नहीं कहा मैंने। मुझमें कुछ कहने लायक बचा ही नहीं था। मैं भीतर से बिलकुल खोखली हो चुकी थी।

यह तो मेरे अनुभव और मेरी लड़ाई थी। बाद में जाना कि उस समय अधिकांश लड़कियाँ कमोबेश इन्हीं परिस्थितियों से गुज़र रही थीं। पितृसत्ता का अंकुश सभी पर हमेशा रहा, किसी न किसी रूप में। कईयों पर तो मातृसत्ता का भी। हो सकता है कुछ अपवाद हों। निरंकुश तो अभी भी कोई नहीं।

मैंने बहुत शिद्दत से इस पराधीनता को अनुभव किया, अस्वीकारा भी। मेरा विद्रोह न आक्रामक था और न ही विस्फोटक। वह भीतरी लावा एक शांत आकार लेता रहा। मेरा आक्रोश परिपक्व हो गया। न सिर्फ़ अपने लिए बल्कि सभी के लिए।

मेरे अनुभवों ने मुझे स्त्री-पुरुष मात्र होने से ऊपर उठकर एक अलग ही विमर्श दिया और वह है इंसानियत का, बराबरी का। मेरी टक्कर हर उन इस्पात की सलाखों से है जो मनुष्य को मनुष्य होने से रोककर, शेष हर वर्ग में उसे बाँट देती हैं।

मेरे हाथ अभी भी रूढ़ियों और परंपराओं से निर्मित समाज की इन सलाखों को झकझोर रहे हैं। इनकी नींवों को हिला रहे हैं। इस बार पाँव हवा में नहीं ज़मीन पर टिके हैं। इस आशा से कि कुछ तो अंतर पड़ेगा। इसे पड़ना ही होगा।

000

फार्म IV

समाचार पत्रों के अधिनियम 1956 की धारा 19-डी के अंतर्गत स्वामित्व व अन्य विवरण (देखें नियम 8)।

पत्रिका का नाम : विभोम स्वर

1. प्रकाशन का स्थान : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

2. प्रकाशन की अवधि : त्रैमासिक

3. मुद्रक का नाम : ज़ुबैर शेख़।

पता : शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एमपी नगर, भोपाल, मप्र 462011

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. प्रकाशक का नाम : पंकज कुमार पुरोहित।

पता : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

5. संपादक का नाम : पंकज सुबीर।

पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. उन व्यक्तियों के नाम / पते जो समाचार पत्र / पत्रिका के स्वामित्व में हैं। स्वामी का नाम : पंकज कुमार पुरोहित। पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

मैं, पंकज कुमार पुरोहित, घोषणा करता हूँ कि यहाँ दिए गए तथ्य मेरी संपूर्ण जानकारी और विश्वास के मुताबिक सत्य हैं।

दिनांक 21 मार्च 2023

हस्ताक्षर पंकज कुमार पुरोहित

(प्रकाशक के हस्ताक्षर)

कथा-कहानी

हर सवाल का जवाब नहीं होता

डॉ. रमाकांत शर्मा

रमाकांत शर्मा
402- श्रीराम निवास, टट्टा निवासी हाउसिंग सोसायटी, पेस्तम सागर रोड नं. 3, चेम्बूर, मुंबई- 400089
मोबाइल- 9833443274
ईमेल- rks.mun@gmail.com

"तू बड़ा होकर बैंक मैनेजर बनना", वंदना ने अचानक कहा तो उदय ने पूछ लिया, "क्यों?"

"बस, मुझे अच्छा लगता है, केबिन में शान से बैठा बैंक मैनेजर। उसके ऑर्डर पर इधर-उधर भागते लोग और लाखों रुपये के ड्राफ्ट पर उसके साइन...।"

"कोशिश करूँगा। अभी तो मैं दसवीं क्लास में ही हूँ।"

"मैं तो तुझसे एक क्लास कम में पढ़ रही हूँ। अभी बन जा मैनेजर ऐसा तो नहीं कहा मैंने...कहा क्या?"

"नहीं, पर भगवान् जो बनाएँ वही तो बनूँगा मैं। हो सकता है, कुछ और बनना हो मुझे।"

"मैंने कहा ना बस बैंक मैनेजर ही बनना। हाँ, एक बात और..।"

"बोल?"

"थोड़ा और बड़ा हो जाए, तो सिगरेट पीना।"

"पागल हुई है क्या, सिगरेट पीना तो बहुत बुरी बात है। हमारे घर में कोई भी नहीं पीता सिगरेट। फिर मैं क्यों शुरू करूँ? मैंने तो देखा है, लड़कियाँ सिगरेट का धुआँ भी पसंद नहीं करतीं। तुझे क्या हुआ है?"

"देख, सिगरेट पीने से अलग सी शान आ जाती है। मैं जब सोचती हूँ कि तू बड़ा होकर मैनेजर बन गया है और सिगरेट के धुएँ के छल्ले उड़ा रहा है तो तू बहुत स्मार्ट लगता है। वैसे तुझे पता नहीं तू सचमुच बहुत हैंडसम है।"

वह शर्मा गया, "तू कम ख़ूबसूरत है क्या?"

"अच्छा जी, मैं ख़ूबसूरत लगती हूँ तुझे? वाह...अच्छा लगा सुनकर। चल अब मैं चलती हूँ, माँ आवाज़ लगा रही है। जाऊँ ?"

"जा, नहीं तो वह ख़ुद आ जाएगी यहाँ।"

उन दोनों के परिवार मोहल्ले की सबसे बड़ी हवेली में रहते हैं। ऊपरी मंज़िल पर वंदना का और नीचे की मंज़िल पर उदय का परिवार रहता है। उन्हें लगता ही नहीं कि वे दो अलग परिवार हैं। वे दोनों बचपन से साथ खेलकर बड़े हुए हैं। साँप-सीढ़ी, लूडो, गुटटे, छुपम-छुपाई और पहल-दूज खेलते हुए बचपन के दिन बिताने वाले दोनों अब ख़ुद को बड़ा महसूस करने लगे हैं। अब वे खेलते कम हैं, बातें ज़्यादा करते हैं। बातें अपने स्कूल की, अपने दोस्तों की, अपनी पढ़ाई की और हाल ही में देखी-सुनी किसी फ़िल्म की। कभी-कभी उनमें अनबन भी हो जाती है और फिर रूठना-मनाना चलता रहता है। पर, दोनों एक-दूसरे से ज़्यादा देर नाराज़ नहीं रह पाते।

पता नहीं कब से दोनों एक-दूसरे पर अपना अधिकार जताने लगे हैं। अगर किसी के घर में मेहमान आ जाते हैं और उनके हमउम्र बच्चों के साथ समय बिताने के कारण वे एक-दूसरे को समय नहीं दे पाते तो उनका मुँह सूजते देर नहीं लगती। ऐसा जब-जब हुआ है, वंदना ने तो भगवान् से प्रार्थना की है कि उदय के मेहमान जल्दी से जल्दी चले जाएँ। यही हाल उदय का भी है। छोटी से छोटी बात जब तक वे एक-दूसरे को बता नहीं देते, उन्हें चैन नहीं आता। वंदना को स्कूल से अगर कोई होमवर्क मिलता और उसे कुछ पूछना होता तो वह सीधे उदय के पास चली आती। उसे पता है उदय पढ़ाई में बहुत तेज़ है और निबंध लिखने में तो उसकी मास्टरी है। उस दिन वंदना को रेलयात्रा पर निबंध लिखना था, वह हमेशा की तरह उदय के पास आई और

बोली, "रेलयात्रा पर सभी लोग लिखेंगे। ज़्यादातर वही बातें होंगी। मैं कुछ अलग लिखकर ले जाना चाहती हूँ। तू मुझे डिक्टेट कर दे।" उदय अपने अंदाज़ में निबंध लिखाने लगा। उसने भूमिका इतनी अच्छी बाँधी थी कि वंदना को मज़ा आ गया।

रेल यात्रा के दौरान कितनी मज़ेदार घटनाएँ घट सकती हैं, बस कल्पना को उड़ान देना होता है। उसने लिखवाया, 'मुझे खिड़की के पास वाली सीट मिली थी। मैं तेज़ी से गुज़र रहे मनोरम दृश्यों का मज़ा ले रही थी कि हवा के झोंके के साथ मेरी आँख में कंकड़ चला गया, मैं बहुत परेशान हो गई। हर तरह से कंकड़ निकालने की कोशिश की, पर कुछ नहीं हुआ। तभी मेरे सामने वाली सीट पर बैठे सरदारजी ने कहा, "मैं कोशिश करूँ?" मेरी हालत इतनी ख़राब हो रही थी कि मैंने तुरंत "हाँ" कर दी। सरदार जी उठकर मेरे पास आए और दोनों हाथों से मेरी पलकें उठाकर उन्होंने अचानक अपनी जीभ मेरी आँख में फिरा दी। मुझे बहुत अजीब लगा, पर मैंने महसूस किया कि मेरी आँख का कंकड़ निकल चुका था'। यह सब लिखते-लिखते वंदना को हँसी आ गई और वह लिखना बंद करके बहुत देर तक हँसती रही। उसे हँसता देखकर उदय भी अपनी हँसी नहीं रोक पाया।

उन दिनों अंग्रेज़ी छठी कक्षा से शुरू होती थी। इसलिए ज़्यादातर लोगों को अंग्रेज़ी बहुत कठिन लगती। उदय के बाबूजी का हिन्दी और अंग्रेज़ी दोनों पर समान अधिकार था। उनकी साहित्यिक अभिरुचि भी थी। वे हिन्दी में ग़ज़लें लिखते और अंग्रेज़ी में कविताएँ। उदय जब आठवीं क्लास में आया तो वह उनसे नियमित रूप से अंग्रेज़ी सीखने लगा। उसकी देखा-देखी वंदना भी अंग्रेज़ी सीखने के लिए आने लगी। बाबूजी बहुत सरल तरीके से उन्हें ग्रामर सिखाते। उदय पढ़ने में होशियार था, इसलिए तेज़ी से सब कुछ सीखता चला गया। वंदना उतनी तेज़ी से नहीं सीख पा रही थी। वह उदय के साथ बैठकर तो पढ़ती ही, उसके जाने के बाद भी बाबूजी उसे पढ़ाते रहते। उदय के बाबूजी दूसरे मास्टरों की तरह डाँट-डपट नहीं करते थे, वे उन्हें बड़े प्यार से पढ़ाते।

कभी-कभी तो वे उनके साथ बच्चा ही बन जाते। उनकी उम्र कोई बहुत ज़्यादा थी भी नहीं। वे उदय से मात्र अठारह साल बड़े थे। उदय उनकी पहली संतान थी और वह जब हुआ तो उनकी उम्र मात्र अठारह साल की थी और माँ सोलह साल की। वे एस्टेट एजेंट थे। ख़ुद का काम था इसलिए दिन भर की नौकरी करने वालों जैसे व्यस्त नहीं रहते थे। जब मन करता घर चले आते। अपने हँसमुख स्वभाव के कारण वे मोहल्ले में और अपने सर्किल में ख़ासे लोकप्रिय थे। उनकी ग़ज़लें हिन्दी के लोकल अख़बार में छपतीं और उन्हें कवि सम्मेलनों और मुशायरों में भी बुलाया जाता।

बारहवीं पास करने के बाद उदय इंजीनियरी की पढ़ाई के लिए दूसरे शहर चला गया। वहाँ उसे अपना घर बहुत याद आता। उसके जाते समय वंदना ने कहा था, "उदय, जल्दी-जल्दी आते रहना, तेरे बिना रहने की आदत नहीं है मुझे।" उदय को भी उसके बिना रहने की आदत नहीं थी। शुरुआती दिन बहुत मुश्किल से गुज़रे, फिर धीरे-धीरे वह अपनी पढ़ाई में व्यस्त होता चला गया। जब भी अकेला होता उसे अपने परिवार की और वंदना की बहुत याद आती। वह उस दिन के इंतज़ार में था जब छुट्टियाँ होंगी और वह अपने शहर जा सकेगा।

करीब तीन माह बाद वह घर लौटा, पहुँचते ही वह वंदना से मिलना चाहता था। मालूम हुआ वह अपनी किसी सहेली के घर गई है और शाम तक आएगी। उदय अचानक चला आया था। उसने सोचा, अगर वंदना को पता होता तो वह उसका इंतज़ार करते हुए घर पर ही मिलती। शाम को जब वह लौटी और उसे पता चला कि उदय आया हुआ है तो वह उससे मिलने पहुँची। उसे देखकर उदय ने कहा, "कब से तेरा इंतज़ार कर रहा हूँ, पर तेरा तो पता ही नहीं है।"

"मुझे क्या पता था, तू आज आ रहा है।"

"ठीक है, पर आने के बाद से ही तुझे ढूँढ़ रहा हूँ, नहीं मिली तो मायूसी तो होगी ही न।"

"ओह जैसे तू सिर्फ़ मुझसे मिलने के लिए ही आया है।"

"सच बता, तेरा मन नहीं कर रहा था मुझसे मिलने के लिए?"

"पता था, जब तू आएगा तब मिल ही लूँगी।"

"चल ठीक है, तुझे मुझसे मिलने की इतनी जल्दी नहीं थी, जितनी मुझे थी। जाने दे..... ।" वह कुछ देर रुक कर उसकी पढ़ाई के बारे में बात करती रही और फिर बोली, "चलती हूँ...सुबह मिलेंगे।"

वह चली गई तो उदय को बहुत अजीब सा लगा। उसके साथ घंटों बैठकर बातें करने वाली और फिर भी अपने घर जाने की ज़रा भी जल्दी न मचाने वाली उस लड़की को क्या हो गया था।

वह एक सप्ताह वहाँ रुका। इस बीच वंदना कई बार उसके पास आई, पर थोड़ी देर रुक कर और इधर-उधर की बातें करके चली गई। वह पहले जैसी वंदना को ढूँढ़नेकी कोशिश करता रहा, पर वह तो न जाने कहाँ खो गई थी। अपनी वापसी के दिन उसने वंदना का ख़ूब इंतज़ार किया, पर वह उसे दिखाई नहीं दी तो वह बौखला उठा। उसने आँगन में खड़े होकर उसे आवाज़ लगाई तो वह ऊपर छज्जे पर निकल आई और बोली, "क्या बात है, इतनी ज़ोर से चिल्ला क्यों रहा है?"

"तुझे पता नहीं कि मैं आज वापस जा रहा हूँ ?"

"पता है, मैं बस थोड़ी देर में नीचे आने ही वाली थी।"

"जाने दे, तुझे आना है तो आ और नहीं आना है तो मत आ। मेरा रिक्शा आ गया है, मैं जा रहा हूँ।"

वह बाहर निकल ही रहा था कि उसे वंदना की तेज़ी से सीढ़ियाँ उतरने की आवाज़ आई और वह हाँफती हुई उसके सामने आकर खड़ी हो गई, "सॉरी उदय, मैं काम में लगी थी। प्रेस कर रही थी अपने और माँ के कपड़ों पर। ध्यान ही नहीं रहा, तू नाराज़ तो नहीं है?"

"मैं क्यों नाराज़ होने लगा? पर, तुझे समझ नहीं पा रहा हूँ। वह पहले वाली वंदना पता नहीं कहाँ खो गई है। याद करेगी मुझे?

वंदना ने उसकी तरफ देखा तो वह उसकी आँखों में रुका पानी देखकर हैरान रह गया।

"क्या हो गया है, तुझे? कोई बात ज़रूर हुई है, मुझे बता दे नहीं तो वहाँ पढ़ाई में मेरा मन नहीं लगेगा।"

"कुछ नहीं हुआ है, बस तू मुझसे नाराज़ मत होना कभी।", यह कहकर वह उसकी तरफ हाथ हिलाकर तेज़ी से अंदर चली गई।

उदय को कुछ समझ नहीं आया, उसने रिक्शे पर सामान रखा और स्टेशन की तरफ चल पड़ा। सारे रास्ते वह इस बारे में सोचता रहा, पर वंदना के इस बदले व्यवहार का कोई कारण नज़र नहीं आया। उसकी आँखों के आँसू तो वह समझ सकता था, वंदना उसकी जुदाई सह नहीं पा रही होगी। जल्दी लौटने के संकल्प के साथ वह ट्रेन में बैठ गया।

उदय जब गर्मियों की छुट्टियों में घर लौटा तो उसे घर का माहौल बहुत बदला-बदला सा लगा। उसने देखा माँ जो पहले हरदम बोलती रहती थी, अब काफी चुप-चुप रहती है। बाबूजी उसके आगे-पीछे घूमते हैं, पर वह उन्हें ज़्यादा भाव नहीं देती। बाबूजी उसके सामने कभी भी माँ से प्यार भरी बातें नहीं करते थे। पर, अब वे माँ को उसके सामने उस नाम से पुकारते जिस नाम से अकेले में पुकारा करते थे। उसके कानों में वह नाम तब पड़ा था जब वह एक दिन उनके बंद कमरे के सामने से गुज़र रहा था। पर, अब तो वे हर समय माँ को उसी नाम से पुकारते। माँ ने इसके लिए उन्हें झिड़का भी था, पर शायद वे उदय के सामने इसलिए लिहाज नहीं रख रहे थे कि अब उदय बड़ा हो गया था। उदय को माँ-बाबूजी के साथ बैठने में संकोच होने लगा। जैसे ही वह उन्हें साथ देखता, इधर-उधर हो जाता।

वंदना की बारहवीं की परीक्षाएँ चल रही थीं। वह पढ़ाई में बहुत व्यस्त थी, इसलिए उससे बहुत कम मिलना हो पाता। उस दिन मौका देखकर उसने वंदना से कहा भी था कि अगर परीक्षा की तैयारी में उसकी मदद की कोई ज़रूरत हो तो वह उसे बता दे, उसकी मदद करके उसे ख़ुशी होगी। पर, वंदना मुस्कराकर टाल गई। वह सोचता पता नहीं कब वंदना की परीक्षा समाप्त होंगी और कब वह उसके साथ पहले जैसा वक्त गुज़ार सकेगा। लेकिन, हर पेपर के बीच दो-दो, तीन-तीन दिन का गैप था और यह परीक्षा पूरे महीने भर में जाकर ख़त्म होने वाली थी। उदय को बहुत अकेलापन लगता। इससे तो अच्छा था कि उसके कॉलेज खुल जाएँ और वह अपनी पढ़ाई में व्यस्त हो जाए।

आख़िर वंदना की परीक्षा ख़त्म हुई। उस दिन माँ किसी काम से बाहर गई हुई थी, तब वंदना नीचे उतर कर आई। उस दिन वे बड़ी देर तक बातें करते रहे। वंदना भी उन पुराने दिनों को याद करती रही, वे बेफ़िक्री से साथ बैठकर बातें करते थे। वे अभी बातें कर ही रहे थे कि बाबूजी वहाँ आ पहुँचे और उन्होंने वंदना से पूछा, "अंग्रेज़ी का पेपर कैसा हुआ, तुमने बताया नहीं?"

"जी, पेपर थोड़ा टफ था, लेकिन पास होने लायक तो नंबर आ ही जाएँगे।"

"चलो, अच्छी बात है। लेकिन ऐसा क्या था पेपर में जो इतना टफ लगा। अंग्रेज़ी की तो सारी तैयारी करा दी थी मैंने। ज़रा पेपर लेकर तो आओ।"

वंदना उठकर गई और थोड़ी देर में पेपर लेकर आ गई। तब तक बाबूजी अपने उस कमरे में चले गए जिसे उन्होंने ऑफ़िस बना रखा था। वंदना पेपर दिखाने के लिए उनके पास चली गई। उदय अपने कमरे में बैठा-बैठा बोर होता रहा। तभी माँ दोनों हाथों में थैले लटकाए आती नज़र आईं। वह तुरंत उठा और उनके हाथ से थैले लेते हुए बोला, "बहुत थक गई लगती हो, पानी लाऊँ आपके लिए?"

माँ ने उसकी बात पर ध्यान दिए बिना पूछा, "तेरे बाबूजी हैं क्या घर में? बाहर उनकी मोटर साइकिल खड़ी है।"

"हाँ, अभी थोड़ी देर पहले आए हैं। बैठक में हैं, वंदना का अंग्रेज़ी का पेपर देख रहे हैं।"

"अच्छा? मैं अभी आती हूँ....।" कहकर माँ सीधे बाबूजी के कमरे में चली गईं। वह हाथ में पकड़े थैले किचन में रख ही रहा था कि उसे माँ के ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने की आवाज़ आई। लगता था, वे किसी बात पर बाबूजी से झगड़ा कर रही थीं। वह थैले रखकर बाबूजी के कमरे की तरफ भागा। माँ चिल्लाकर हलाकान हुए जा रही थीं और उधर बाबूजी सिर झुकाए चुपचाप सुन रहे थे। उदय को देखते ही वंदना अपना पेपर लिये तुरंत ही वहाँ से चली गई।

उदय ने माँ को चुप कराते हुए कहा, "माँ, हुआ क्या है? इतनी ज़ोर से चिल्ला क्यों रही हो?"

उसे जवाब देने के बजाय वह मुँह पर पल्ला रखकर रोने लगीं। उदय की समझ में कुछ नहीं आ रहा था, "बाबूजी, आप ही बता दो क्या हुआ है? माँ रो क्यों रही है?"

बाबूजी ने भी जब कोई जवाब नहीं दिया तो उदय का दिल किसी अनहोनी की आशंका से धड़कने लगा। उसने माँ को पकड़कर झकझोर दिया और कहा, "बताती क्यों नहीं माँ? देख मेरा दिल घबराने लगा है...।"

"क्या बताऊँ? अपने बच्चे को बताते भी शर्म आती है...।"

"देखो, साफ-साफ बता दो मुझे नहीं तो मैं...।"

"ले सुन, तेरे ये बाबूजी हैं ना, इनका मन मुझसे भर गया है और यह अब अपनी बेटी की उम्र की वंदना से इश्क लड़ा रहे हैं?" उदय को लगा उसने कुछ ग़लत सुना है। उसने अटकते शब्दों में कहा, "माँ, आपको ग़लतफ़हमी हुई होगी।"

"कुछ ग़लतफ़हमी नहीं हुई है...मैंने अपनी आँखों से देखा है और इनके प्रेम-पत्र भी पकड़े हैं।"

"क्या कह रही है माँ ? मुझे विश्वास नहीं होता। वंदना तो मुझसे भी एक साल छोटी है।"

"छोटी ही है, पर काम बड़े-बड़े कर रही है। उसने ही फँसाया है इन्हें।" उदय ने देखा बाबूजी सिर झुकाए सुन रहे थे, उनकी नीची नज़रें माँ की बात की ताकीद कर रही थीं। उधर माँ कह रही थीं, "मना किया था ना मैंने उसे यहाँ आने के लिए, फिर क्यों आई वह यहाँ ? और आप उदय के सामने उसका पेपर नहीं देख सकते थे?"

"माँ वह मुझसे मिलने आई थी।"

"तू अब भी नहीं समझ रहा है बेटे, उसे तो यहाँ आने का बहाना चाहिए और इन्हें...। जाने दे...मैं तो ख़ुद से ही हार गई हूँ।", माँ अपने आँसू पोंछते हुए तेज़ी से कमरे से

निकल गई तो उदय भी बाबूजी की तरफ देखे बिना कमरे से बाहर निकल आया।

उसने जो कुछ सुना था, उस पर उसे विश्वास नहीं हो रहा था। कैसे हो सकता है ऐसा? वंदना के साथ उसका जो रिश्ता बन गया था क्या वह कुछ भी नहीं था। वह सोचता था, वंदना उसे वैसे ही चाहती है जैसे वह उसे। पर...उसके पास वंदना का कम आना, आँखें चुराकर बात करना, माँ के साथ बाबूजी का उसके सामने वह ज़बरदस्ती का प्यार जताना, बिना कोई जवाब दिए बाबूजी का सिर झुकाए बैठे रहना और घर का बदला अजीब सा माहौल सब ही तो इस बात की गवाही दे रहे थे कि माँ ने जो कुछ कहा उसमें सच्चाई कूट-कूट कर भरी थी। वह बहुत देर तक कमरे में चक्कर काटता रहा। लेकिन, जब उसकी बेचैनी बढ़ गई तो वह घर से बाहर निकल गया और यूँ ही बड़ी देर तक सड़कों पर भटकता रहा।

रात को उसे ज़रा भी नींद नहीं आई। उसने तय किया कि वह कल वंदना से बात करेगा और पूरी सच्चाई जानने की कोशिश करेगा। वह अपने जाने के दिन तक वंदना से मिलने और बात करने का मौका ढूँढ़ता रहा, पर वंदना उसे कहीं नज़र नहीं आई। वह एक-दो चक्कर उसके घर के भी लगा आया, वह उसकी माँ के पास बैठकर काफी देर तक बातें करता रहा। वंदना जो पहले भागकर उसके पास आ जाती थी, छुपकर अपने कमरे में बैठी रही और बाहर नहीं निकली। उसकी माँ ने उसे आवाज़ भी लगाई, "वंदना देख, उदय आया है।"

"मैं मिल ली हूँ उदय से माँ, इस समय मेरे सिर में बहुत दर्द हो रहा है, आती हूँ थोड़ी देर में।"

उसका जवाब सुनकर माँ ने कहा, "उदय, तुम दोनों के बीच कोई झगड़ा-वगड़ा तो नहीं हुआ है? नहीं तो सारे दिन बस तेरे साथ ही मगजमारी करती रहती थी।"

"नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है। सच में उसके सिर में दर्द हो रहा होगा। मैं चलता हूँ अब, मेरी दो घंटे बाद की ट्रेन है।"

"ठीक है बेटा, भगवान् ही जाने क्या हो गया है इस लड़की को। चुपचुप रहने लगी है और ज़्यादातर अपने कमरे में पड़ी रहती है।"

वह उठकर खड़ा हो गया। बात भी ऐसी थी जो वह किसी के सामने नहीं कर सकता था। लेकिन, वंदना के व्यवहार से यह साफ हो गया कि माँ ने जो कुछ बताया, वह ग़लत नहीं था और वंदना इसमें पूरी तरह शामिल थी।

कई दिन तक कॉलेज में भी उसका मन नहीं लगा। हर समय वही बात उसके मन में घूमती रहती। वंदना और बाबूजी के बीच उम्र का कितना बड़ा फ़ासला था, आख़िर वंदना को यह क्या सूझी थी। वह तो नौकरी लगने के बाद वंदना के साथ घर बसाने के सपने देख रहा था। पर...कभी-कभी उसे घिन आने लगती। बाबूजी माँ के होते हुए... उफ! वह माँ के लिए चिंतित रहने लगा। वंदना के बारे में जब भी सोचता तो उसके अंदर कुछ ऐसा उफनता जिसे वह समझ नहीं पाता। उसका मन करता कहीं बैठकर खुलकर रोए, पर आँसू थे कि बाहर निकलने को तैयार ही नहीं होते। वंदना का चेहरा जब भी उसकी आँखों के सामने घूमता, वह बलपूर्वक उसे वहाँ से हटा देता।

शायद रोज़ाना के झगड़ों और माँ के लगातार बीमार रहने के कारण बाबूजी ने अपना काम समेटकर उस शहर को छोड़ने का मन बनाया होगा। दूसरे शहर में उन्होंने अपने एक घनिष्ठ मित्र के साथ साझेदारी में एस्टेट एजेंसी का काम शुरू कर दिया। इस बार की गर्मियों की छुट्टी में उसके अपने शहर जाने का कोई सवाल नहीं था। वह उस नए शहर में पहुँचा जहाँ माँ-बाबूजी ने नया घर बसा लिया था। वहाँ पहुँचकर उसे बहुत अजनबीपन लगा और उसके मन में कुछ कसकता रहा। बाबूजी से बात करने में उसे हिचक होती और वे भी उसके साथ पहले जैसे खुलेपन से बात नहीं कर पा रहे थे। क्या हो गया था उसके हँसते-खेलते परिवार को।

इस बार जब वह घर आया तो उसे पता चला कि वंदना की शादी हो गई है और वह खुर्जा चली गई है तो एक क्षण के लिए उसका मन धक्क से होकर रह गया। कितनी अजीब बात थी, उस वंदना की शादी हो गई थी जिसके साथ उसका बचपन बीता था और एक समय था जब वे दोनों एक-दूसरे के बिना रह नहीं पाते थे। माँ ने बताया, शादी का कार्ड उनके पास भी आया था, पर उसमें शामिल होने का कोई सवाल ही कहाँ था। वह अचानक उदास हो आया, फिर उसने ख़ुद को समझाया कि वंदना की शादी होना उसके परिवार का एक अजाब से बाहर निकल आने जैसा था।

जिस साल उसका इंजीनियरी का कोर्स पूरा हुआ उसी साल हापुड़ की एक बड़ी कंपनी में उसे नौकरी मिल गई। विवाह के लिए प्रस्ताव आने लगे तो उसने एक अच्छी लड़की देखकर हाँ कर दी। वह बहुत ख़ुश था और उसने सोच लिया था कि अब वह माँ - बाबूजी को अपने पास हापुड़ ले आएगा। पर, भगवान् को कुछ और ही मंज़ूर था, माँ अचानक चल बसी। उसकी सोचने की शक्ति कुंद हो गई और वह बदहवास-सा हो गया। बाबूजी भी पूरी तरह हिल गए लगते थे। हमेशा रोते रहते और बड़बड़ाते "मैंने उसका चैन और ज़िंदगी दोनों छीन ली। बहुत बड़ा गुनहगार हूँ मैं उसका।" बाबूजी की वह मनोस्थिति देखकर उसने उनसे कहा, "मेरी नौकरी लग गई है। माँ हमें असमय छोड़कर चली गई है। आप इस अजनबी शहर में अकेले रहकर क्या करेंगे। मेरे साथ हापुड़ चलकर रहो।" बाबूजी ने बिना कोई हील-हुज्जत किए उसकी बात मान ली और वे उसके साथ हापुड़ आ गए।

धीरे-धीरे ज़िंदगी पटरी पर आ गई। वह अपने काम में व्यस्त होता चला गया। उसकी पत्नी घर और दोनों बच्चों को सँभालने में लग गई। बाबूजी अपना मन लगाने के लिए फिर से ग़ज़लें लिखने लगे। इस बहाने उनके कुछ मित्र भी बन गए और उनका समय अच्छी तरह कटने लगा। समय कितनी तेज़ी से निकल जाता है। कब बच्चे बड़े हुए, कब उनकी शादियाँ हुईं और कब उसके बालों में सफ़ेदी उतर आई पता भी नहीं चला। बेटी शादी होने के बाद अपने ससुराल चली गई और बेटा नौकरी के सिलसिले में विदेश। उस

दिन उदय ने ख़ुद को शीशे में देखा तो वह अपने को पहचान नहीं पाया। उसके रिटायरमेंट में बस एक साल ही तो बचा था।

उसे अचानक बाबूजी का ध्यान आया। अस्सी के करीब पहुँचते बाबूजी कितने बीमार रहने लगे हैं। उनसे ठीक तरह से चला भी नहीं जाता। उसके मन में बाबूजी के लिए दया उमड़ आई। कितने साल उन्होंने माँ के बिना निकाले हैं। आँखों पर मोटा चश्मा लग गया है और लिखने में उन्हें ख़ासी परेशानी होने लगी है। दोस्तों का आना-जाना कब का ख़त्म हो चुका है। नौकरी के कारण और बचा-खुचा समय बीवी और घर के काम में लग जाने के कारण वह भी तो उन्हें उतना समय नहीं दे पाता। बेचारे अकेले पड़े रहते हैं और पता नहीं क्या-क्या सोचते रहते हैं। क्या कभी वे वंदना के बारे में भी सोचते होंगे। इस विचार के साथ ही उसके शरीर में सिहरन सी दौड़ गई। उसने सिर को झटक कर इस विचार को दिमाग़ से झटकने की कोशिश की और शीशे के सामने से हट गया।

ऑफ़िस के एक साथी के बहुत इसरार पर उसे उसके लड़के की शादी में शामिल होने के लिए बारात के साथ खुर्जा आना पड़ा। बाबूजी को अकेले छोड़ने का कोई सवाल ही नहीं था, इसलिए उसकी पत्नी उसके साथ नहीं आई। बारात में शामिल लोगों में से वह सिर्फ अपने ऑफ़िस के उस साथी को ही जानता था। बारात चढ़ने के बाद वह रस्मोरिवाज़ निभाने में व्यस्त हो गया तो उदय भीड़ में ख़ुद को अकेला महसूस करने लगा। वह उस चहल-पहल में कोने में पड़ी एक ख़ाली कुर्सी देखकर बैठ गया।

उसे बैठे थोड़ी ही देर हुई थी कि उसकी नज़र उस महिला पर पड़ी जो उससे कुछ दूरी पर किसी दूसरी महिला से बात कर रही थी। उसे लगा, वह उसे पहचाता है। हाँ, वह उसे बहुत अच्छी तरह पहचानता है, उसके पूरे शरीर में झुरझुरी सी दौड़ गई। वह शतप्रतिशत वंदना ही थी। उसके शरीर में थोड़ा मुटापा झलक रहा था और चेहरे पर उम्र के निशान। वह भी तो उसी के बराबर की उम्र की थी, साठ वर्ष के आसपास। वह वहाँ से उठकर जाने ही लगा था कि वे दोनों महिलाएँ बातें करती हुईं उसके बिलकुल नज़दीक आ गईं। वंदना की नज़र उस पर पड़ी तो वहीं रुक गई। उसने उस महिला से इजाज़त ली और उसके पास आकर खड़ी हो गई। उसे घूरते हुए बोली, "विश्वास नहीं हो रहा, तुम उदय ही हो? समय ने तुम्हारे बालों में सफ़ेदी ला दी है, पर चेहरा तो बिलकुल वैसा ही है। यहाँ कैसे?"

"मैं अपने कुलीग के बेटे की शादी में आया हूँ...।"

"ओह, क्या मैं कुछ देर के लिए तुम्हारे पास बैठ सकती हूँ। मेरे हस्बैंड अपने किसी जानने वाले के साथ हैं। आते ही होंगे।"

"तुम यहाँ बैठो, मैं चलता हूँ।", उदय ने उठने का उपक्रम करते हुए कहा।

"यह तुम, तुम क्या लगा रखी है, मैं हमेशा से तेरे लिए 'तू' रही।"

"तुम भी मुझे 'तुम' ही कह रही हो ना। सुनो, मेरा कुलीग मुझे ढूँढ़ रहा होगा, मुझे जाना चाहिए।"

"उदय मुझे पता है, तू मुझसे बहुत नाराज़ है। मैंने कुछ अच्छा किया भी नहीं तेरे साथ। बस, थोड़ी देर बैठ जा। ख़ुद से लड़ते-लड़ते आजिज़ आ गई हूँ मैं। सोचती थी, काश! कभी तू मिल जाए और मैं तुझसे सब कुछ कहकर अपने मन का बोझ हल्का कर लूँ। आज अनायास यह मौक़ा मिला है, बस मुझे कुछ मिनट दे दे।"

उदय अन्यमनस्क सा बैठ गया तो वंदना ने कहना शुरू किया, "मैं बातों को घुमाऊँ-फिराऊँगी नहीं, इतना समय ही नहीं है मेरे पास। मुझे तेरे अलावा कोई दिखता नहीं था उदय। मन करता था हमेशा तेरे साथ ही रहूँ। पर, सच कहूँ तेरे बाबूजी की उन रोमांटिक ग़ज़लों ने मुझे उनका दीवाना बना दिया। फिर वे मेरे लिए ग़ज़लें लिखने लगे। मैं उन्हें पढ़ती तो एक अनूठे संसार में पहुँच जाती। ऐसा संसार जहाँ मैं मन को पुलकित कर देने वाले शब्दों की पालकी में बैठकर जाती और उन शब्दों के अर्थों में ख़ुद को खो देती।"

"बाबूजी के प्रेम पगे शब्दों ने मुझे इस कदर बाँध लिया कि मैं उनके बिना ख़ुद को अधूरा समझने लगी। उस उम्र में मुझे नहीं पता था कि किसी के आकर्षण में बँध जाना इतना मोहक, इतना दीवानगी भरा हो सकता है। मुझे कोई होश नहीं था, न ही किसी की परवाह। बस मैं अनजाने में उनकी तरफ खिंचती चली गई। हम दोनों मिलने का कोई न कोई बहाना ढूँढ़ ही लेते। अपने लिए लिखी ग़ज़ल उनके मुँह से सुनती तो मेरी आँखों से ख़ुशी और तृप्ति के आँसू बहने लगते। वे प्यार से मेरे आँसू पोंछ देते तो मैं निहाल हो जाती। कोई विश्वास करे या न करे शरीर हमारे बीच कहीं नहीं था। पर हाँ, मैं गुनहगार हूँ तेरी, तेरी माँ की और ख़ुद की भी।" उसकी आँखों से निकलकर आँसू उसके गालों पर बहने लगे। उदय सांत्वना में कुछ कहना चाहता था, पर उसके मुँह से शब्द निकल नहीं पाए। कुछ देर दोनों चुपचाप बैठे रहे। वंदना के शब्दों ने उदय को भीतर तक झकझोर दिया था। कौन कब किसके आकर्षण में बँधकर उस पर अपनी आत्मा उँडेल दे, कहा नहीं जा सकता। उसने कहीं पढ़ा था, "ज़िंदगी भी क्या ख़ूब रंग दिखाती है, क्या इत्तफ़ाक़ होता है, प्यार में उम्र नहीं होती पर किसी भी उम्र में किसी से भी प्यार हो सकता है। उम्र गुज़र जाती है, सवालों को समझने में तब जाकर पता लगता है, हर सवाल का जवाब नहीं होता"। पता नहीं क्यों उसे वंदना की बातों का मर्म समझ में आने लगा और सहानुभूति ने उसकी नाराज़गी की जगह ले ली। उसने कहा, "एक बात सच-सच बताएगी तू?"

"हाँ, पूछ।"

"क्या तुझे अब भी कभी बाबूजी से मिलने का मन करता है?"

वंदना ने विस्फारित आँखों से उसे देखा। वह ख़ामोश थी, पर उसकी आँखों में असहजता उभर आई थी। उदय ने फिर अपना सवाल नहीं दोहराया, उसे जवाब मिल चुका था।

माहौल का भारीपन ख़त्म करने के लिए वे दोनों अपने बचपन की शरारतों को याद करते रहे। उदय को यह जानकर आश्चर्य हुआ कि उसे रेलयात्रा का वह निबंध और सरदार जी द्वारा अपनी जीभ से आँखों का कंकड़ निकालने की घटना अभी तक याद थी। बातें

चलते-चलते एक-दूसरे के परिवार और बच्चों की शादियों और नौकरियों तक आ पहुँची। वंदना का इकलौता बेटा ऑस्ट्रेलिया में नौकरी कर रहा था। उसके पति पिछले साल ही रिटायर हुए थे और अब वे दोनों खुर्जा के अपने मकान में आराम की ज़िंदगी गुज़ार रहे थे।

"अरे, तुम यहाँ बैठी हो? कहाँ-कहाँ नहीं ढूँढ़ा मैंने तुम्हें?"

"यह मेरे बचपन का दोस्त उदय अचानक मिल गया तो बस इसके पास आ बैठी। पुरानी यादों में कब समय निकल गया पता ही नहीं चला। यह उदय है और उदय ये मेरे पति हैं विवेक।"

"बड़ी ख़ुशी हुई आपसे मिलकर।", दोनों के मुँह से एकसाथ निकला और उन्होंने हाथ मिलाए। दोनों जल्दी ही आपस में घुलमिल गए। बातों ही बातों में उदय ने कहा, "आप तो अब हर तरह से फ्री हैं। कभी हापुड़ आइए।"

"बिलकुल, कब से हापुड़ के पापड़ का नाम सुन रखा है, अब शायद खाने का मौक़ा भी मिल जाए।", वंदना के पति ने हँसते हुए कहा।

"बस तो जल्दी से बना लीजिए प्रोग्राम...।

"सोच भी रहे थे कहीं घूम आएँ, क्यों वंदना बना लें हापुड़ का प्रोग्राम?"

"आपकी मर्ज़ी...।"

"चलिए उदय जी, इस महीने के आख़िरी सप्ताह में आपसे हापुड़ में मिलते हैं।"

"मिलते हैं, मतलब? हमारे घर ही ठहरिए...।"

"आपके घर रुकेंगे तो मेरे दूर के रिश्ते के चाचा नाराज़ हो जाएँगे। वे कबसे बुला रहे हैं, पर कभी जा नहीं पाए। हाँ, आपसे मिलने आपके घर ज़रूर आएँगे और आप चाय पिलाएँगे तो नाश्ते के साथ पी लेंगे।", उन्होंने ठहाका लगाते हुए कहा। वंदना और उदय के चेहरे पर भी हँसी खेल गई। तभी उदय का कुलीग उसे ढूँढ़ते हुए वहाँ आया और उसे किसी रस्म में शामिल करने के लिए वंदना और विवेक से क्षमा माँगते हुए उसे अपने साथ ले गया। हापुड़ पहुँचने तक और वहाँ पहुँचने के बाद भी उदय के ज़ेहन में वंदना से अचानक हुई मुलाक़ात और उसकी बातें घूमती रहीं। कई बार उसका मन किया कि वह वंदना से हुई मुलाक़ात और अगले हफ्ते उसके हापुड़ आने की बात बाबूजी को बताए, पर उसकी हिम्मत नहीं हुई। उनके लिए यह सरप्राइज़ ही रहे तो अच्छा।

उस दिन विवेक का फ़ोन आया और उसने बताया कि वे हापुड़ पहुँच गए हैं तो उदय को रोमांच हो आया। वंदना यहाँ आएगी, यह सोच-सोचकर उसका मन कैसा-कैसा तो होने लगा। वे कुल तीन दिन के लिए ही हापुड़ आए थे। अगले दिन शाम को वे उनके घर आने वाले थे। उदय की वह रात अजीब सी बेचैनी में कटी। शाम होते ही दरवाज़े पर हुई दस्तक ने यह बता दिया कि वे आ पहुँचे हैं। उदय ने बहुत गर्मजोशी से उनका स्वागत किया और अपनी पत्नी से उन्हें मिलवाया। ड्राइंगरूम में बैठकर वे बातें करने लगे। विवेक बहुत ख़ुशमिज़ाज था। जल्दी ही उनके ठहाके गूँजने लगे। थोड़ी देर में उदय की पत्नी चाय बनाने के लिए अंदर चली गई तो उसने वंदना से कहा, "आओ, तुम्हें बाबूजी से मिलवाता हूँ।" आँखों में झलकते संकोच और हिचकिचाहट के साथ वह उठकर खड़ी हो गई। विवेक ने मेज़ पर पड़ी एक पत्रिका उठा ली तो उदय वंदना को बाबूजी के कमरे में ले गया।

बाबूजी ओढ़कर लेटे हुए थे। उदय ने उन्हें आवाज़ दी, "देखो बाबूजी कौन आया है।"

"कौन है?", बाबूजी ने उठते हुए पूछा।

"पहचानो आप।" उन्होंने अपना चश्मा टटोला और उसे लगाकर वहीं खड़ी वंदना को ध्यान से देखने लगे। शायद पहचान नहीं पा रहे थे।

तभी वंदना ने कहा, "मैं हूँ बाबूजी।"

उदय ने देखा, वह आवाज़ सुनकर बाबूजी हकबका से गए, "वंदना, तुम यहाँ, अचानक? समय सबकी शक्लें बदल देता है, बहुत शक्ल बदल गई है तुम्हारी। मैं भी तो बूढ़ा अशक्त हो गया हूँ। तुम खड़ी क्यों हो बैठ जाओ।" बाबूजी ने पास पड़ी कुर्सी की तरफ इशारा किया।

"आप लोग बातें करो, मैं वहाँ विवेक के पास बैठता हूँ वह अकेला है।", कहकर उदय कमरे से बाहर निकल आया।

बाहर आकर वह विवेक से बातें करने लगा, पर उसके दिमाग़ में यही चल रहा था कि इतने लंबे अर्से के बाद मिलने पर उन दोनों को कैसा लग रहा होगा। अभी वह यह सोच ही रहा था कि उसने देखा बाबूजी का झुर्रियों भरा हाथ पकड़े वह उन्हें कमरे से बाहर ला रही थी। वे अपने लड़खड़ाते क़दमों से धीरे-धीरे चलते हुए उसके साथ आ रहे थे। उदय उन्हें अपलक देखे जा रहा था। बचपन से लेकर अब तक की घटनाएँ पलक झपकते उसके ज़ेहन में उभर आईं।

वह जानता था, दोष किसी का नहीं था। भावनाओं का ज्वार जब उफनता है तो वह किनारे नहीं देखता, बहता जाता है उस ओर जिधर रास्ते ले जाते हैं। वंदना का बाबूजी का हाथ पकड़े बाहर लाना उदय को न जाने क्यों सुकून से भरे दे रहा था।

वंदना ने बाबूजी को लाकर कुर्सी पर बैठा दिया। विवेक से मिलवाते हुए उसने उन्हें बताया, "बाबूजी, ये मेरे पति हैं। इन्होंने मुझे पलकों पर रखा है। मैं इन्हें पाकर ख़ुद को ख़ुशनसीब समझती हूँ।"

बाबूजी के चेहरे पर मुस्कान उभर आई। उन्होंने विवेक से कहा, "सुनकर बहुत ख़ुशी हुई। वंदना को बचपन से जानते हैं हम, यह बहुत अच्छी और बहुत भावुक लड़की है। आपको पाकर यह ख़ुश है, इससे बड़ी बात और क्या हो सकती है, शुक्रिया आपका।"

उदय वंदना के चेहरे पर संतोष भरी चमक देख रहा था। चाय-नाश्ते के बीच समय तेज़ी से गुज़र गया। वे जाने के लिए उठ खड़े हुए। जाते समय वंदना ने बाबूजी के पैर छुए तो उन्होंने अपना काँपता हाथ उसके सिर पर रख दिया।

उदय देख रहा था, बाबूजी के चेहरे पर मुस्कराहट थी और उनकी आँखों में नमी। दरवाज़े से बाहर निकलते समय वंदना ने पीछे मुड़कर देखा और अपनी आँखों में उमड़ते नमकीन पानी को जतन से सँभालते हुए वह चुपचाप बाहर निकल गई।

000

कथा-कहानी

क्लब क्रॉलिंग

अरुणा सब्बरवाल

शुक्रवार की शाम थी। बर्मिंघम के अंतरराष्ट्रीय नृत्य के समाप्त होने में अभी दस मिनट थे। किंतु वह चिंतित था कि समय पर सिंफ़नी हॉल के बीयर बार में पहुँच पाएगा कि नहीं ? जहाँ उसके मित्र उसका इंतज़ार कर रहे थे। डान्स शो के पश्चात् उसे कम से कम पंद्रह मिनट तो चाहिए कपड़े बदलने तथा मेकअप साफ़ करने के लिए। उसने सोच लिया था चाहे कितना भी समय लगे वह मेकअप साफ करके ही जाएगा, पिछली बार की तरह नहीं। यह सोच के वह ख़ुद ही मुस्करा उठा।

ऐश एक सरल, सुशील और मेहनती नौजवान है। माँ-बाप का दिया नाम तो आशीष है, किंतु अंग्रेज़ों की सहूलियत के लिये अपना नाम ऐश कर लिया है, वह एक सफल नृत्यकार भी है। सदा अपने सरल व्यवहार से सभी को प्रभावित कर लेता है। उसकी उम्र 26-27 की होगी, उसके चेहरे पर भोलापन साफ़ झलकता है। अक्सर सुना भी है कि कलाकार भावुक तथा संवेदनशील होते हैं, वह भी कुछ ऐसा-सा ही है। तभी तो उसने प्रेमबद्ध होकर एक मुस्लिम लड़की से विवाह कर लिया था।

कपड़े बदल कर वह निकलने वाला ही था की उसके मोबाइल की घंटी बजी...

"हाय ऐश भूलना मत, पूरे दस बजे बीयर-बार में पहुँच जाना, तुम्हारे लिए एक सर्प्राइज़ है।"

"सर्प्राइज़ ! कैसा सर्प्राइज़ कर्ण ?"

"बता दिया तो सर्प्राइज़ थोड़े ही रहेगा। वहीं मिलते हैं।" इतना कह कर उसने फ़ोन रख दिया।

सर्प्राइज़ का सुनकर ऐश की टाँगे काँपने लगीं। मन ही मन में भगवान् से प्रार्थना करने लगा कि हे भगवान् इस बार पिछले छह महीने पहले जैसी सर्प्राइज़ न हो। उसकी आँखों के सामने वही पुराना दृश्य घूमने लगा जब इन्हीं दिनों तीनों दोस्तों कर्ण, टॉमस और जस्सी ने उसे क्लबिंग के चक्कर में अविस्मरणीय अचंभे में डाल दिया था, जो अभी तक नहीं भूल पाया। उस दिन जैसे ही वे पब (बीयर-बार) में खाना ऑर्डर करने वाले थे, कर्ण ने प्रस्ताव रखते कहा- "चलो आज क्लबिंग करते हैं।"(क्लबिंग का मतलब यूके में जवान लड़के-लड़कियाँ एक क्लब से दूसरे, दूसरे से तीसरे, यह सिलसिला पूरी रात चलता है, जिसे क्लब क्रॉलिंग भी कहते हैं।)

"यार क्लबिंग में तो बहुत देर हो जाएगी।" ऐश ने चिंतित स्वर में कहा।

"भूल गया क्या आज हमारी पत्नियों की भी, गर्ल्ज़ नाइट आउट है, वे तो खाने के पश्चात् 'फेंटम ऑफ द ओपरा' देखने जा रहीं हैं।" टॉमस ने बताया।

"हमें भी कभी क्लब की जगह थियेटर जाना चाहिए।" ऐश ने सुझाव देते कहा।

"तू भी न सिस्सी (लड़कियों) की तरह बात करता है।" जस्सी ने मज़ाक़ से कहा। कर्ण उन्हें क्लब फ़्रॉग में माथा टिकवाने ले गया। फ़्रॉग एक अपमार्केट क्लब है। तीनों जानते थे कि जब कर्ण उनके साथ है तो चिंता की कोई बात नहीं। कर्ण अमीर माँ-बाप का इकलौता बिगड़ा नवाब है। छह फ़ुट लंबा हट्टा-कट्टा नौजवान, उसके शरीर पर क़ायदे से पहनी वेशभूषा उस पर डिज़ाइनर ऑर्मानी की जैकेट, दर्पण जैसे चमकते जूते, टॉप मॉडल की बी.एम .डब्ल्यू है। उसके रंग-ढंग से, और उसकी बोलचाल से उसके माँ बाप की अमीरी की झलक साफ़ दिखाई देती है, यूँ कहिए कर्ण पूर्व-पश्चिम सभ्यता का इन्फ़्यूज़न है। ऐश एक परम्परावादी हिंदू गुजराती परिवार से है। कई वर्ष पहले उसके माता-पिता अफ़्रीका से आ कर यू.के. में बस गए थे। वह लड़कियों जैसा नाज़ुक और शांत स्वभाव का है।

जसविंदर ने भी अंग्रेज़ों की सहूलियत के लिये अपना नाम जस्सी कर लिया है। वह वर्किंग क्लास परिवार से है। उसके माता-पिता बहुत पढ़े-लिखे तो नहीं, पर बहुत मेहनती हैं। टॉमस एक मध्यवर्गी, रूढ़िवादी अंग्रेज़ी परिवार से है। उन्हें अपनी संस्कृति और मान्यताओं पर गर्व है। पिता चर्च के मान्य हैं। इन चारों की दोस्ती नर्सरी स्कूल से चली आ रही है। नौकरी के अतिरिक्त वे एक दूसरे के बिना कुछ नहीं करते। उनका बस चलता तो एक ही लड़की से सभी शादी कर लेते। पब में टॉमस, जस्सी और ऐश ने तो आधा-आधा पाइंट बीयर ली और कर्ण जो स्वयं को

अरुणा सब्बरवाल
फ़्लैट -2, रस्टिंग्स, वेस्टफील्ड पार्क, हैच एण्ड HA5 4JF, यू के
ईमेल– sab_arun@hotmail.co.uk

सबसे अलग समझता था उसने एक गिलास रेड वाइन ली। ऐश और कर्ण तो गप्पें मारते रहे टॉमस और जस्सी क्लब के धुएँ में डंके में लीन हो गए। डान्स में मस्त जस्सी तो एक अफ्रीकन महिला जो क़रीब उससे बीस वर्ष बड़ी और बीस किलोग्राम भारी थी उसके संग चुस्कियाँ लेने लगा। जस्सी को उस महिला से मस्करियाँ करते एक घंटा हो चुका था बाक़ी तीनों बोर होने लगे तो ऐश बोला- "चलो कहीं ओर चलते हैं।" रंग़ीले जस्सी ने सुना-अनसुना कर दिया डान्स फ़्लोर पर बड़ा शोर हो रहा था। इतने में अफ्रीकन महिला जस्सी की कमर में हाथ डाले उसे बाहर ले गई, और जस्सी के गले में हाथ डाले बोली- "बेब वुड यू लाइक टू कम टू माई प्लेस टुनाइट लव।" इतना सुनते ही जस्सी के होश हवास गुम हो गए। वह हवा की गति से भागा-भागा भीतर" पहुँचते ही बोला- "चलो-चलो जल्दी निकलो यहाँ से।"

"बात क्या है, इतना घबराया क्यूँ है?"

"कुछ नहीं, कुछ नहीं, बाहर चल कर बतलाता हूँ, भगवान् के वास्ते निकलो यहाँ से।" जस्सी ने घबराते हुए कहा।

"कहाँ चलना है ?" टॉमस ने पूछा।

"कहीं भी। बस निकलो यहाँ से।"

जस्सी एक लापरवाह हिप्पी टाइप का लड़का था, घिसी-पिट्टी जींस, कानों में बालियाँ, नाक में नथनी, लंबे-लंबे बाल, उसकी पहचान थी। बिलकुल नारियल की भाँति बाहर से ब्राउन और भीतर से सफ़ेद। वह एक सफल चित्रकार होने के साथ-साथ सफल संगीतकार भी था। पर था डरपोक कबूतर। सब हैरान थे ऐसा क्या हो गया है। चारों दोस्त दूसरे मंदिर यानी पब में माथा टेकने चल पड़े।

"ऑल नाइट लॉन्ग क्लब" वहाँ सब एक-एक बीयर लेकर बैठ गए। टॉमस और कर्ण डान्स में लीन हो गए। जस्सी की अभी तक हवाइयाँ उड़ी थीं। टॉमस मिस्टर कन्फ़्यूज़्ड अपने में ही मस्त, सदा ही औरतों का अभिनय कर-कर के सबको हँसाता रहा। इसलिए वह अपनी टोली में बहुत लोकप्रिय था बोला- "यहाँ बहुत शोर है चलो कहीं और चलते हैं।"

"कहाँ ? कौन-सा ऐसा क्लब है जो हमने नहीं देखा।" जस्सी ने पूछा।

"गे क्लब।" गे क्लब का नाम सुनते ही सबके कान खड़े हो गए।

"क्यूँ नहीं, तजुर्बे के लिए ही सही।" टॉमस ने मुस्कुराते हुए कहा।

"तजुर्बा ही सही, देयर इज़ ऑल्वेज़ अ फ़र्स्ट टाइम। हर्ज़ ही क्या है।" इतना सुनते ही तीनों के हँसी के फ़व्वारे छूट पड़े।

"हँस क्यूँ रहे हो, मज़ाक़ नहीं कर रहा।" थोड़ी हिचकिचाहट के पश्चात् तीनों उत्सुकता से गे क्लब की ओर चल पड़े। ऐश थका सा था, वह नाट्य प्रदर्शन करके आ रहा था।

"गे क्लब पहुँचते ही चारों हक्के -बक्के रह गए। पुरुष पूरे मेक- अप के साथ महिलाओं के भेष में घूम रहे थे। उनके हाव -भाव और व्यवहार से स्त्री-पुरुष के भेद का अनुमान लगाना बहुत कठिन था। वहाँ पर अंग्रेज़ी, अफ्रीकन, चीनी, और भारतीय सभी देशों के गे स्त्रियाँ -पुरुष शामिल थे। कर्ण, ऐश और जस्सी का यह पहला अनुभव था।

"देख कर्ण, टॉमस कैसे सबसे घुल-मिल कर बातें कर रहा है।" ऐश ने कहा।

"मुझे तो ऐसा लगता है टॉमस यहाँ पहले भी आ चुका है।" कर्ण बोला।

"ऐश मेरा तो यहाँ दम घुट रहा है, लगता है हम किसी दूसरे लोक में आ पहुँचे हैं।" कर्ण ने घबराते हुए कहा।

"कर्ण देख-देख, वह मोटी मुझे लगातार निहार रही है। मुझे डर लग रहा है।" ऐश ने डरते हुए कहा।

"निहार रही नहीं, निहार रहा है। उसकी दाढ़ी देख, उसके हाथ देखे हैं ? एक झापड़ मारा तो मुँह दूसरी तरफ़ मुड़ जाएगा। उसकी मोटी-मोटी टाँगें तो देख गुलाबी टाइट्स में कैसी भद्दी लग रहीं हैं लाल और नीली स्कर्ट वाली की तो नज़रें मुझ पर आधे घंटे से टिकी हैं, देख -देख तेरी तरफ़ लगातार प्यार की फ्लाइंग किस्स आ रही हैं।" जस्सी ने मुलायम सी मुस्कराहट फेंकते कहा।

"हे प्रभु, कहाँ फँसा दिया है इस टॉमस ने? कोई आदमी आँख मारता है और कोई चुम्बन फेंकता है, कोई इशारों से बुलाता है। सभी की नज़रें हमीं पर टिकी हैं। मानों जैसे हम अजायबघर से भाग कर आए हों। ऐश ओय तैयार हो जा वह तेरी ओर ही आ रहा है। लगता है तुझ पर उसका दिल ......।"

"हे भगवान् ऐसा मैंने क्या कर दिया है।"

"यह तेरे मेक-अप का कमाल है।" जस्सी ने कहा।

"हाए आइ ऐम रॉबर्ट, वूड यू लाइक अ ड्रिंक?" उसने मटकते-मटकते हाथ आगे बढ़ाते कहा। उत्तर की प्रतीक्षा किये बग़ैर ही रॉबर्ट ने चारों के लिये ड्रिंक ऑर्डर के दी। एक नहीं, दो नहीं बार-बार ड्रिंक ऑर्डर करता गया। बार-बार वह ऐश के क़रीब आने की कोशिश करता रहा। आख़िर में डान्स के लिए रॉबर्ट ने ऐश की ओर अपना हाथ बढ़ा ही डाला। रॉबर्ट उस पर पैसा लुटाए जा रहा था और वह नर्वस होता जा रहा था। यहाँ तक कि रॉबर्ट ने काउंटर पर कह दिया था कि इन्हें जो कुछ चाहिए दे देना और पैसे उसके अकाउंट में डाल देना। रात का एक बज चुका था।

"जस्सी मेरा दम घुट रहा है, चलो घर चलते हैं।" ऐश ने कहा।

"नाइट इज़ स्टील यंग, वाए डोंट यू कम टू माई प्लेस, फ़ोर अ ड्रिंक।" रॉबर्ट ने ख़ुशी से उन्हें आमंत्रित करते हुए कहा।

अब तक तो चारों रॉबर्ट की इतनी शराब पी चुके थे कि मना करने की गुंजाइश ही नहीं रही थी। ऐश मन ही मन में दुखी हो रहा था। टॉमस ने बिना किसी से पूछे झट से हाँ कर दी। क्लब से निकलते-निकलते उन्हें क़रीब दो बज चुके थे। क्लब से बाहर निकलते ही रॉबर्ट की लेटेस्ट रेजिस्ट्रेशन की काली लिमोज़िन शौफ़्फ़र के साथ खड़ी थी। यह देखते ही चारों के मुँह खुले-के-खुले रह गए। जस्सी के मुँह से निकला 'वाओ'। चारों चुपचाप गाड़ी में बैठ गए। लिमोज़िन हवा में ऐसे भाग रही थी मानों सारथी रथ को खिंचे ले जा रहा हो। जैसे ही लिमोज़िन रॉबर्ट के पेंट्हाउस के सामने रुकी, सबकी आँखें चकाचौंध हो गईं। रॉबर्ट ने पेंट्हाउस बड़े साज़ और सलीक़े से सजाया था। हर कमरा अपनी सजावट की व्याख्या कर रहा था। छत पर हरा-भरा बग़ीचा, तारों की छाँव में हल्के-हल्के रंग बिरंगे फूलों की महक वातावरण को महका रही थी। धीमें-

धीमें चाँदनी पत्तों को ओट से झाँक रही थी। सब कुछ होते हुए भी एक अजीब सी शून्यता थी वहाँ पर। एक ख़ाली खोखलापन। इतना भव्य पेंट्हाउस उन्होंने जीवन में पहली बार देखा था। रॉबर्ट की नज़रें निरंतर ऐश पर टिकी थीं। वह बार-बार किसी बहाने अपने प्यार की अभिव्यक्ति की ताक में ऐश के निकट आ ही जाता। ऐश की स्थिति एक हवाई जहाज़ में बैठे उस यात्री की थी, जिसके हवाई जहाज़ में कोई तकनीकी ख़राबी आ गई हो। वह मानों अंदर की अंदर और बाहर की बाहर साँस लिये बैठा हो। आख़िर रॉबर्ट ने ऐश से कह ही दिया "ऐश क्यूँ न हम दोनों मिल कर रहें, मैं तुम्हें बहुत ख़ुश रखूँगा।"

यह सुन कर ऐश का सिर चकराने लगा, कभी वह बाथरूम जाता तो कभी जस्सी से बातें करने लगता इस वक़्त ऐश पिंजरे मैं क़ैद पंछी की तरह उड़ जाना चाहता था। रॉबर्ट गिड़गिड़ाए जा रहा था "प्लीज़ ऐश केवल एक रात।"

ऐश पर रॉबर्ट की याचना का कोई प्रभाव नहीं पड़ा, ऐश तो मन ही मन में भगवान् से प्रार्थना कर रहा था कि है भगवान् इस मुसीबत से मुक्त करवा दो। पीछा छुड़ा दो न इस अटपटे आदमी से। कर्ण और जस्सी ने रॉबर्ट को समझाने का बहुत प्रयास किया, टॉमस ने दिलासा देते कहा " चिंता मत करो सब ठीक हो जाएगा।"

"क्या ठीक हो जाएगा?"

"रॉबर्ट अच्छा आदमी है, शायद अधिक पी ली है।" टॉमस ने रॉबर्ट की पैरवी में कहा।

"अगर तुझे हमदर्दी है तो तू ही बिता ले रात इस नामर्द के साथ।" कर्ण क्रोध में बोला।

"लेकिन उसे तो ऐश चाहिए।" टॉमस बोला।

"सब तेरा ही क़सूर है, तूने ही डाला है इस मुसीबत में, तू ही निकाल इसका हल। बाए द वे तू क्यूँ नहीं रह जाता रॉबर्ट के पास?"

"ठीक है...अगर तुम कहते हो तो, मैं ही ....नो प्रॉब्लम।" इतना सुनते ही सबके होश उड़ गए। उनकी सोच से बाहर था। सोचने लगे क्या वे सच -मुच टॉमस को जानते हैं ?

सब ने ताली बजाते कहा "मान गए टॉमस, बड़ी चतुराई से छिपाया है यह राज़ तुमने हम सबसे।" कर्ण में ने कहा।

"तुमने क्या सोचा था अगर बता देते तो हम तुम्हारे दोस्त न रहते। यार हम ने तो नर्सरी स्कूल से अब तक का सफ़र इकट्ठे तय किया है। अब यह लुका-छिपी शोभा नहीं देती मेरे दोस्त, दिल रोता है तुम्हारे लिए। मैं तो नृत्य शो में कुछ घंटे मुखौटा चढ़ा कर दुखी हो जाता हूँ, और तू इतने वर्ष से...कब तक जिएगा दोहरा जीवन...उगल डाल जो तेरे मन में है।" ऐश ने उसे बड़े प्यार से समझाते हुए कहा। ये सुनते ही सबकी आँखें भर आईं।

हमदर्दी के दो शब्द सुनते ही टॉमस रोते-रोते कपड़े की तह की भाँति खुलता गया, बोला- "बचपन से ही एक अजीब सी भावनाओं से जूझता रहा, गुड़ियों से खेलना, छिप-छिप कर बहन के मेक-अप और कपड़ों को देखना, छूना और सूँघना एक आदत सी बन गई थी। पहले तो विपरीत लिंग के प्रति जिज्ञासा होना स्वाभाविक-सा लगा। जैसे-जैसे उम्र बढ़ती गई, मैं लड़कों की ओर आकर्षित होने लगा। यूनिवर्सिटी से भी गर्लफ्रेंड को कभी घर नहीं लाया। घर वालों को चिंता होने लगी। लड़कियाँ मेरी ओर आकर्षित होतीं और मैं लड़कों की ओर। क्या करता, बेबस था, कभी ग़ुस्सा आता तो जीसस से लड़ने लगता। माँ बाप को लगा शायद परवरिश में कोई कमी रह गई है। आप समझते होंगे अंग्रेज़ हूँ, घर वालों ने सरलता से स्वीकार कर लिया होगा। नहीं ऐसा नहीं है, अंग्रेज़ों की भी अपनी मान्यताएँ हैं, सीमाएँ हैं, संस्कार हैं। इन्हीं संस्कारों के कारण कभी किसी से पूछने का साहस नहीं बटोर सका। घर वाले मेरी इस स्थित को अनदेखी, अनसुनी करते रहे। मैं अपनी व्यथा समेटे ककुन में घुसता गया। नौकरी मिलते ही अपना फ़्लैट लेने की ठान ली।

माँ-बाप अप्रत्यक्ष रूप से गर्लफ्रेंड को घर लाने का संकेत देते रहे। पर्दाफ़ाश तब हुआ जब मैं अपनी बहन के बॉयफ्रेंड की ओर आकर्षित होने लगा। मेरी पीड़ा असहनीय हो चुकी थी, दर्द बढ़ता जा रहा था। सब मैंने सोच लिया था आज के बाद मेरी ओर जो भी लड़की आकर्षित होगी, मैं उसके सामने शादी का प्रस्ताव रख दूँगा। ऐसा ही हुआ, छह महीने पहले एमिली उसका शिकार बनी, यूँ कहो बलि चढ़ी। जिसे मैंने वैवाहिक सुख से वंचित रखा। इंसान हूँ, ग़लती हो गई, अब दोहरा जीवन और नहीं जी सकता। दोष भावना की गुठली अभी तो गले में अटकी है।

"एमिली जानती है क्या ...?" कर्ण में पूछा।

"उसे शक तो है, सामना करने से डरती है।"

"अच्छा किया तुमने मन का बोझ हल्का कर लिया।" तीनों ने एक ही स्वर में कहा।

जस्सी ने मन ही मन में प्रण किया कि आगे से कभी भी लड़कियों जैसी हरकत नहीं करेगा। अब रॉबर्ट के साथ रात बिताने की समस्या तो हल हो गई। अब यह जुगाड़ लगानी थी कि रॉबर्ट के सिर से ऐश का बुखार कैसे उतारा जाए। चारों ने रॉबर्ट को धुत्त करने की ठान ली। जब नशे में धुत्त रॉबर्ट को विश्वास हो गया कि आज ऐश ही उसके साथ रहने वाला है, ऐश ने रॉबर्ट को कपड़े बदलने को कहा। जैसे ही रॉबर्ट बाथरूम में गया तो बिस्तर पर टॉमस ने ऐश का स्थान ले लिया। अब समस्या थी कि तीनों को एमिली का सामना करना था। घर में पहुँचते ही एमिली ने पूछा- "टॉमस कहाँ है?"

"वह रॉबर्ट के साथ है...सुबह आएगा।" तीनों ने दबे स्वर में कहा।

एमिली बड़बड़ाई, "आई न्यू इट।"

सुबह होने को थी, तीनों अपने-अपने घर चले गए। एमिली की रात भारी गुज़री। सुबह टॉमस चिंतित था। एक सप्ताह पश्चात् नाश्ते की मेज़ पर टॉमस के लिए एक पत्र पड़ा था।

"स्नेही टॉमस, मैं तुम्हारा दर्द समझती हूँ। आज तुम्हें मैं इस अनचाहे बंधन में बँधे शादी रूपी पिंजरे से आज़ाद करती हूँ। मैं चाहती हूँ कि आप अपने जीवन की वास्तविकता से आगे बढ़े तथा ख़ुश रहें।" शुभकामनाओं सहित- तुम्हारी दोस्त एमिली।

टॉमस ने भारमुक्त हो राहत की साँस ली और अपना समान बाँधना आरम्भ कर दिया।

000

रूपान्तरण- कीड़े से तितली

चंद्रकला जैन

चंद्रकला जैन
मकान नंबर 698 प्रथम तल, सेक्टर 8 बी, चंडीगढ़ 160009
मोबाइल– 7042327212
ईमेल– anju_jain40@hotmail.com

"मैम, क्या करूँ ? मेरा बच्चा छह महीने का है, कमज़ोर है, अब तक न बोतल से दूध पीना सीखा है न किसी और के पास रहता है!" उस तरफ से फ़ोन पर रूआँसी आवाज़ थी।

"छुट्टी लेकर घर बैठो, परेशान मत हो।" इधर से सलाह मिली।

"हाय मैम! छुट्टी कैसे लूँ ? छुट्टी के नाम से डिपार्टमेंट में सब की भौहें टेढ़ी हो जाती हैं!" उधर से डरी हिचकिचाती आवाज़ आई

"मेरा भी बेबी छोटा है, मैंने ली है न!" आत्मविश्वास से भरपूर आवाज़ में जवाब आया।

"मैम, मेरे यहाँ नेफ्रोलॉजी (किडनी रोग) में अधिकांश सहयोगी डॉक्टर पुरुष हैं! छुट्टी की बात पर सब ऐसे घूरते हैं जैसे कोई भयानक अपराध कर दिया हो। कमेंट करते हैं- "काम नहीं करना होता है इन डॉक्टरों को, छुट्टियाँ लेकर बैठ जाती हैं, ये महिलाएँ भी क्या रिसर्च करेंगी!"

"मैम, कॅरियर, प्रमोशन, सुख-चैन सब कुछ दाँव पर लगा रहता है! आप का पीडियाट्रिक डिपार्टमेंट (बच्चों का विभाग) अलग होगा! जो आप छुट्टी ले कर भी चैन से हैं।"

उधर से आने वाली आवाज़ में मजबूरी झलक रही थी।

"न! न! कहीं कुछ अलग नहीं होता है माई डियर! मेरी सीनियर्स, कलिग्स, हैड ऑफ द डिपार्टमेंट, अधिकांश महिलाएँ हैं। औरत होते हुए भी सब के मुँह चढ़ जाते हैं, उनका काम बढ़ जाता है न इस करके ! बस थोड़ी सी सहानुभूति और कुछ सहयोग का भाव हो तो आपस में तालमेल से काम हो सकता है न! जब हमारे सीनियर्स ज़रूरत पड़ने पर छुट्टी लेते हैं तो हम भी जी-जान से उनकी जगह काम करते हैं। मेरे बच्चे की देखभाल के लिए अकेली मैं ही हूँ! दुनिया में लाई हूँ, मेरी ज़िम्मेदारी है वह! उसे मुझे ही देखना है न!" इधर से मैटर-ऑफ-फैक्ट-वे में उत्तर था।

"सेंट्रल गवर्नमेंट का रूल है, बड़ी लड़ाइयों के बाद माँ को चाइल्ड केयर की सुविधा दी है सरकार ने। मुझे ज़रूरत है, छुट्टी क्यों न लूँ?"

इधर की आवाज़ में अपने अधिकारों के प्रति सजगता थी। फ़ोन के उधर की आवाज़ को कुछ हिम्मत मिली।

"छुट्टी के आधार पर कोई प्रमोशन रोक कर तो देखे! छुट्टी देने से इनकार कैसे कर सकता है कोई। मैं कोर्ट जा सकती हूँ। मेरे साथ कोई ग़लत करे तो मैं चुप बैठने वालों में से नहीं हूँ, सब को पता है। इसलिए मेरा छुट्टी का आवेदन बिना हील-हुज्जत के पास हो गया। दो दिन मुँह सूजा कर रखा मेरी हैड ने। ठीक है, कुछ समय बाद सामान्य हो गई, बच्चे की ज़रूरत वे भी समझती हैं। तुम ख़ुद डॉक्टर हो, जानती हो बच्चे के शारीरिक और मानसिक विकास के लिए यह समय कीमती है!"

आत्मविश्वास से भरपूर, आवाज़ बच्चे के प्रति माँ की ज़िम्मेदारी याद दिला रही थी।

"पर मैम, मेरे डिपार्टमेंट से रोज़ फ़ोन आते हैं, कटाक्ष होते हैं, कब काम पर आ रही हो? अच्छा! तीन महीने की और छुट्टी बढ़ा रही हो! ओह गाड! कितना काम बढ़ जाएगा! सब के मुँह से सुन-सुन कर कान पक जाते हैं मेरे। मुझ में हिम्मत नहीं है जवाब देने की। बड़ा एम्बेरेसिंग लगता है। संकोच से हालत ख़राब हो जाती है।"

साफ था, अभी भी उधर की आवाज़ अपने हक़ में खड़े होने की हिम्मत नहीं जुटा पा रही थी। लग रहा था, अब वह दूसरों से नहीं स्वयं से अपने सही होने की लड़ाई लड़ रही है, मानों ख़ुद को समझा रही थी, छुट्टी की आवश्यकता है, काम के प्रति ग़ैर ज़िम्मेदाराना व्यवहार नहीं है।

"जो छुट्टी देने के नाम पर मुँह चढ़ाते हैं सीधे-सीधे उन सभी से कहो, देखो! चाईल्ड केयर के लिए पूरे सर्विस काल में 730 दिन की छुट्टी का प्रावधान महिलाओं और सिंगल मेल पेरेंट के

लिए केन्द्र सरकार ने कर रखा है। शुक्र मनाओ, मैं तो नौ महीने बाद ही काम पर आ रही हूँ। मुझे भी सभी पर बढ़े हुए काम की, मरीज़ों की चिंता है।" इधर की आवाज़ ने उसे अपने क़ानूनी हक़ से परिचित कराते हुए, छुट्टी बढ़ाने के कारण मन में उपजती उथल-पुथल से उबारने की कोशिश की।

ऐसी स्थिति में औरों से पहले स्वयं को दोषी मान लेने के सिंड्रोम से इधर की आवाज़ अच्छी तरह परिचित थी। भुक्तभोगी थी आख़िर!

"अपने लिए ख़ुद खड़ी नहीं होगी तो कोई और न तुम्हारे लिए न तुम्हारे बच्चे के लिए खड़ा होने वाला है!" इधर की आवाज़ ने उसे स्थिति की वास्तविकता से रू-ब-रू कराते हुए आगाह किया, एक तरह से चेतावनी दे डाली!

फ़ोन के इधर आवाज़ डॉक्टर अणिमा की थी और फ़ोन के उधर डॉक्टर श्रुति की।

"धन्यवाद मैम! आपने सच मुझे बहुत हिम्मत दिलाई है।"

डॉ. श्रुति अब तक डॉ. अणिमा को दस बार थैंक यू बोल चुकी थी। आख़िर श्रुति ने छुट्टी के लिए आवेदन करने का मन बना लिया है, जानकर अणिमा को संतोष हुआ।

"एक रिक्वेस्ट है मैम! ज़रूरत पड़ने पर आपको फिर फ़ोन कर सकती हूँ न?" श्रुति ने पूछा। उसे पता है, समय-समय पर अपने पक्ष में निर्णय लेने के लिए उसे हिम्मत की यह डोज़ बराबर चाहिए, वरना सही होते हुए भी वह अपराध-बोध से ही मर जाएगी। श्रुति ने कभी अपने लिए लड़ना सीखा ही न था। घर में जैसे माँ अपनी ज़रूरतों को परिवार में सबसे पीछे रखती थी, दो भाइयों के बीच लड़की होने के कारण बचपन से माँ को देख स्वत: यह आदत श्रुति का स्वभाव बन गई थी।

"हाँ, हाँ! बिल्कुल, जब चाहो, जितनी बार चाहो!"अणिमा ने कह फ़ोन रखा।

अणिमा सोच रही थी, स्त्री के हक़ में इतने क़ानून बन जाने बाद भी हमारे समाज में जायज़ हक़ की लड़ाई लड़ने के लिए स्त्री को कितनी हिम्मत जुटानी पड़ती है! बचपन से उन्हें सही कारण के लिए भी आवाज़ उठाना कहाँ सिखाते हैं? ग़लत-सही, हर बात के लिए हल के रूप में समझौता ही उनके हिस्से आता है।

अणिमा भी हक के लिए लड़ना कहाँ जानती थी!

कहानी, नाटक का जिया हुआ कोई पात्र किसी की ज़िंदगी इस कदर भी बदल सकता है, अणिमा इस बात पर इस जीवन में तो विश्वास न करती यदि उसके साथ ही यह सब न घटा होता!

उसे पुराने दिन याद आए। मेडिकल की पढ़ाई के दौरान उसकी रूममेट अंशिका थी, जितनी पढ़ने में तेज़ थी उतनी ही अन्य गतिविधियों में उसकी रुचि थी। आत्मविश्वास का चलता-फिरता लाइट हाउस! मेडिकल की पढ़ाई में ख़ाली समय नहीं मिलता, फिर भी वार्षिक सांस्कृतिक उत्सव में वह हिस्सा अवश्य लेती। अणिमा को भी साथ घसीटने की कोशिश करती, पीछे पड़ी रहती, मनाती, धौंस दिखाती लेकिन अणिमा अब तक किसी तरह जान बचा रही थी। इस बार जान न बची। अंशिका ने चेखोव की विश्व प्रसिद्ध कहानी 'अ निनकूमपूप' को नाटक के रूप में प्रस्तुत करने के लिए चुना। नाट्य-रूपान्तर ख़ुद किया। रात को अंशिका ने समय मिलते ही कहा, "देख अणिमा, इस बार तेरा कोई बहाना नहीं सुनूँगी। चेखोव की कहानी पर मेरे नाटक 'अ निनकूमपूप' में सिर्फ दो पात्र हैं, मालिक और उसके बच्चों की गवर्नेस, जूलियट। रोबदाब वाला मालिक मैं बनूँगी, मुझे सूट करता है, और गवर्नेस तू! तुझ से अच्छा गवर्नेस का रोल कोई कोशिश कर के भी नहीं निभा सकता!"

"मैं? तेरा दिमाग़ ख़राब है अंशिका! तेरे साथ दिन-रात रहती हूँ। मेरा स्वभाव जानती है। अपने सहपाठियों से ही किसी भी प्रकार की सहायता माँगने में मुझे कितनी उलझन, कितनी झिझक होती है! उत्तर जानते हुए भी कक्षा में प्रोफ़ेसरों के प्रश्नों को सुनते ही मेरे पसीने छूटते है, तुझसे बेहतर भला कौन जानता है मुझे! माइक देखते ही टाँगे्र काँपती है! एक संवाद न बोल पाऊँगी! तेरा नाटक फेल हो जाएगा। स्टेज-फ्राईट है मुझे।"

अंशिका ने अणिमा की पीठ पर धौल जमाते हुए कहा था, " तेरे सारे किंतु-परंतु सोचने के बाद ही मैंने तुझे चुना है। अब यह रोल तू ही करेगी। इसके लिए तू एकदम फिट है। तेरा डरना-घबराना पात्र के हिसाब से एकदम सहज-स्वाभाविक लगेगा!"

आख़िर अंशिका की ज़िद्द के आगे अणिमा ने हथियार डाल दिये थे। डरते-मरते दो-चार संवाद किसी तरह याद कर लिये थे।

सांस्कृतिक कार्यक्रम की प्रस्तुति के दिन घबराहट से उसका बुरा हाल था। जब 'अ निनकूमपूप' नाटक की बारी आई और उसमें भाग लेने वाले कलाकारों के नाम की घोषणा हुई तो अणिमा का नाम सुनकर सारे सहपाठी चकित थे। हमेशा चुप रहने वाली, किसी से भी बात करने की पहल न करने वाली, हिचकिचाने, सकुचाने वाली अणिमा को ही वे जानते थे। अणिमा और उसके साथ ही इस नाटक का हश्र देखने को सभी उत्सुक थे।

नाटक हुआ और गवर्नेस जूलियट के डरे-सहमे पात्र का चरित्र अणिमा ने बख़ूबी निभाया। उसे निभाने की ज़रूरत ही न थी वह तो स्वयं को जी रही थी! जूलियट के रूप में जीया गया हर पल उसे आईना दिखा रहा था।

नाटक में कितनी आसानी से मालिक बनी अंशिका ने करार के हर महीने के चालीस रूबल को अपनी धमक भरी आवाज़ से तीस रूबल में बदल दिया था, दो महीने पाँच दिन के काम को दो महीने में समेट दिया, नौ इतवार और चार त्यौहारों को गवर्नेस द्वारा ली गई छुट्टी कहकर पैसे काट लिए। इस के बावजूद जूलियट हल्का सा प्रतिरोध भी न कर सकी! माथे पर शिकन तक न आई थी! जिन कारणों के लिए जूलियट कतई ज़िम्मेदार न थी उन सारे कारणों के आधार पर उसकी तनख़्वाह काटकर अंत में अस्सी की जगह ग्यारह रूबल पकड़ा दिये थे मालिक ने! और जूलियट मालिक को इन ग्यारह रूबलों के लिए भी झुक-झुक कर धन्यवाद दे रही थी!

जूलियट बनी अणिमा का दिल जल रहा था। आख़िर कोई इतना अन्याय कैसे बर्दाश्त कर सकता है! लेकिन यह कहानी का ही नहीं उसका भी सच था! यही तो करती आई थी

वह।

हे भगवान् ! क्यों? कैसे? उसके पास इसका जवाब न था! सामने वाले के एहसान तले बिछ-बिछ जाती थी वह, चाहे देने वाले ने उसे जायज़ हक़ का आधा भी न दिया हो।

नाटक का अंत आते-आते मालिक चकित, क्रोधित, हैरान रह जाता है, इस बिन रीढ़ की हड्डी वाली गवर्नेस पर! उसकी कीड़े जैसी अवरोधी मानसिकता पर!

मालिक अन्याय के प्रति संवेदनशील है। वह जूलियट को अन्याय के विरुद्ध, स्वयं के लिए लड़ना सिखाना चाहता है। नाटक के अंत में मालिक जूलियट को उसके जायज़ हक़ के रूप में पूरी तनख़्वाह देता है, इस सीख के साथ कि अन्याय से बचने का एकमात्र तरीक़ा प्रतिरोध है।

नाटक ख़त्म हुआ तो तालियों की गड़गड़ाहट से सभा भवन गूँज उठा था। सभी अणिमा के स्वाभाविक अभिनय की तारीफ़ कर रहे थे। अंशिका ने ख़ुशी में उसे गले लगा लिया।

नाटक के बाद बहुत दिनों तक अणिमा गहरी सोच में डूबी रही थी। जूलियट के किरदार से वह बाहर ही नहीं निकल पा रही थी!

बहुत दिनों तक वह झुँझलाई, क्रोधित रही थी। मालिक के पात्र की दादागिरी नहीं, जूलियट के पात्र की कायरता उसे चैन न लेने देती!

रोज़मर्रा में अक्सर अपने हक़-सुविधाएँ रेहन रख वह शांति ख़रीदती रही थी। वह अपनी पसंद से टाप ख़रीद कर लाई, छोटी बहन को पसंद आया, उसका हो गया! माँ ने भी कहा, "चल तू बड़ी है, कोई बात नहीं।" उसके मन में कोई बात आती भी नहीं थी। लेकिन हर समय उस से ही हक़ छोड़ने की अपेक्षा की जाती। घर में कोई मेहमान आता, बड़े भाई को उनका कमरा चाहिए ही, छोटी बहन के शोर मचाने से सब डरते, ले-देकर एक अणिमा बचती, जो हमेशा समझदारी के आवरण में असुविधा गले लगाती। किसी को उसकी घुटन की भनक भी नहीं लगती। अप्रिय स्थिति से बचने के लिए घर और बाहर ज़्यादतियाँ सहन करना उसकी आदत बन गई थी। बचपन में सहेलियाँ खिलौनों से जी भर खेलतीं, अपने खिलौने छूने भी न देतीं, उसका दाँव अधूरा छोड़ घर चली जातीं। बाद की कक्षाओं में कोई उसके नोट्स, किताबें माँगता वह मना न कर पाती, चाहे उसे भी ज़रूरत होती। अब वह जूलियट बने रहना नहीं चाहती थी। लेकिन नया जन्म लेने की हिम्मत करना अणिमा के लिए आसान न था।

इंसान होने की गरिमा की पहचान ने ही अणिमा को ख़ुद के डर से लड़ने की ताक़त दी थी। अब असुविधा उठाकर उसने दूसरों की अपेक्षाओं पर खरा उतरने की कोशिश करना छोड़ दिया था। दो महीने पहले उसकी साथी नीरा ने अणिमा से अपनी जगह वार्ड में ड्यूटी देने को कहा था। अणिमा को परीक्षा के लिये पढ़ना था, पहली बार अतिरिक्त ड्यूटी करने से उसने मना किया था। कोशिश कर इनकार निकलने लगा था उसके मुँह से। उसके साथ रिसर्च पेपर लिखने वाले सीनियर को-ऑथर को भी जब बराबरी से काम करना पड़ा तो साथ के लोगों ने अणिमा के बदलते व्यक्तित्व को नोटिस करना शुरू किया।

सीनियर्स की तनी भृकुटियाँ, टॉन्ट-ताने, मानसिक प्रताड़ना सब कुछ सहा था, इस बदलने की प्रक्रिया में। हिम्मत कर 'ना' कह रही थी, ख़ुद की ज़रूरतों को तवज्जो दे रही थी। रेंगने वाले कीड़े से पंखों के बल उड़ान भरने वाली तितली के मुश्किलों भरे इस 'रूपान्तरण', में अंशिका का साथ उसका संबल बना था। प्रक्रिया के पूरी होने में वह तितली की तरह कोकून से बाहर निकलने के लिए पंख फड़फड़ाती, थक कर चुप बैठ जाती। दम घुटता, स्वतन्त्र उड़ान भरने को जी मचलता तो फिर से हिम्मत बटोर अपने खोल को तोड़ने की कोशिश करती।

टूटी थी कई-कई बार, लेकिन अंदर जो आग जल चुकी थी वह बुझती न थी, उसके अंदर की कायरता को राख कर के ही मानी थी।

अणिमा ने जाना था, हर जगह पावर का खेल चलता है। ग़लत व्यवहार का प्रतिरोध न करें तो लोग भरसक दबाते हैं, उनकी हिम्मत बढ़ती है। ज़िंदा रहने के लिए अन्याय का विरोध ज़रूरी है।

शक्तिशाली लोग स्थिति जस की तस रखना चाहते हैं। न्याय-अन्याय, नीति-नियम-क़ानून उनके लिए सिर्फ शब्द हैं। वे जानते हैं, जब तक सही मुद्दों पर भी डरने की परम्परा कायम है, सर झुका कर जायज़ हक़ के लिए न लड़ने की कायरता है, यथास्थिति बनी रहेगी। हर मुकाम पर जीवन की लड़ाई कमज़ोर हारते रहेंगे। प्रतिरोध करना, सक्षम बनने की पहली कड़ी है।

लंबी जद्दोजहद के बाद एक नई अणिमा ने जन्म लिया था! तितली की तरह पंख फैला उड़ रही थी वह। अनुभव नया था!

अंशिका के कारण उसने जीने का नया सलीक़ा सीखा था। प्रेम में व्यक्ति बोल्ड हो जाता है! बोल्ड होकर वह स्वयं से प्रेम करना सीख गई थी!

अब वह आईने में ख़ुद से नज़रें मिला पा रही थी। अब अणिमा के संपर्क में आने वाला व्यक्ति ख़ुद ही साहस की इबारत लिखना सीख जाता है।

000

लेखकों से अनुरोध

सभी सम्माननीय लेखकों से संपादक मंडल का विनम्र अनुरोध है कि पत्रिका में प्रकाशन हेतु केवल अपनी मौलिक एवं अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। वह रचनाएँ जो सोशल मीडिया के किसी मंच जैसे फ़ेसबुक, व्हाट्सएप आदि पर प्रकाशित हो चुकी हैं, उन्हें पत्रिका में प्रकाशन हेतु नहीं भेजें। इस प्रकार की रचनाओं को हम प्रकाशित नहीं करेंगे। साथ ही यह भी देखा गया है कि कुछ रचनाकार अपनी पूर्व में अन्य किसी पत्रिका में प्रकाशित रचनाएँ भी विभोम-स्वर में प्रकाशन के लिए भेज रहे हैं, इस प्रकार की रचनाएँ न भेजें। अपनी मौलिक तथा अप्रकाशित रचनाएँ ही पत्रिका में प्रकाशन के लिए भेजें। आपका सहयोग हमें पत्रिका को और बेहतर बनाने में मदद करेगा, धन्यवाद।

-सादर संपादक मंडल

कथा-कहानी

पीपल की शीतल छाया

डॉ. रमेश यादव

बड़ी प्यारी–सी वह अलमस्त सुबह, सूरज की सुनहरी किरणें, काँच की पारदर्शी खिड़की, उस पर लटक रहे अधखुले परदे...बिस्तर पर निढाल लेटीं अक्षया और संगीता। हसीन सपनों की दुनिया से निकलकर खिड़की पर नज़रें टिकातीं वास्तविक दुनिया में झाँकने की कोशिश करती हैं। अल्हड़ उम्र में सपनों की दुनिया...मानों थिरकते पंखों–सी, रंग-बिरंगी, उड़ान भरती, गुनगुनाती, गुंजन करती, भीगे मौसम सी...दुनिया को बाँहों में समेटने की ललक। होस्टल की बेफ़िक्री भरी दुनिया...और देखते ही देखते अक्षया इन सपनों से निकलकर किसी और दुनिया में खो जाती है...! उसकी नज़रें शून्य में खो जाती हैं।

"अरे वह मेरी स्वीट हार्ट, कहाँ खो गई...! रात को मैंने अपने विदेशी राजकुमार की मखमली दास्तान सुनाई, कहीं तुम भी वैसा ही कुछ सोच रही हो क्या....! जीवन में यह भी ज़रूरी है रानी, मगर तुम हो कि अपनी परंपरागत दुनिया से बाहर निकलना ही नहीं चाहती...देश छोड़कर यहाँ परदेश में हम पढ़ने आ गए, देखो कितनी हसीन दुनिया है यहाँ....!"

"मज़ाक मत करो संगीता, तुम्हारी दुनिया तुम्हें मुबारक, मगर हाँ दोस्ती और फ्लर्टिंग तक ही सीमित रहना, उससे आगे मत बढ़ना। अपने दिल की घंटी अभी नहीं बजी है....! मुझे तो अपने तिरंगे देश की माटी और उसकी संस्कृति ही प्यारी है, जिसमें मैं बेहद ख़ुश हूँ। ग़रीबी ही सही पर अपनापन है, भरा-पूरा परिवार है। उसमें सुख, संतुष्टि, त्याग, समर्पण, आस्था और विश्वास की पक्की नींव और संस्कारों की ठोस दीवारें हैं। बहुत कुछ की चाह नहीं, इसलिए आह नहीं। यहाँ की दुनिया मुझे बनावटी लगती है। अच्छा सुन मैं तुझे बताती हूँ कि मैं किस दुनिया में खो गई थी, जो मेरी आँखों के सामने इस समय तैर रही है। उसके बारे में सोचकर मुझे आज भी हँसी छूट जाती है और मैं शरमा जाती हूँ....!"

"तब मैं कक्षा आठ में पढ़ रही थी। शाम के पाँच बज रहे थे। मैंने चाय बनाई और दादा जी के टेबल पर रखकर पुन: अपने कमरे में चली गई। दादाजी ने चाय पी और पार्क में टहलने चले गए। घर की साफ-सफाई करके मैं किचन की ओर मुड़ी। मम्मी दो दिनों से अस्पताल में भरती थीं। पापा काम के सिलसिले में कुछ दिनों के लिए गाँव गए थे। छोटा भाई खेल-कूद और क्लासेस में व्यस्त था। रसोई की सारी ज़िम्मेदारी मुझ पर थी। वैसे भी खाना पकाना मुझे अच्छा लगता है, मेरे लिए यह कोई नई बात नहीं थी। स्कूल के दिनों से ही मैं मम्मी के साथ किचन में काम करने लगी थी। माँ तो नहीं चाहती थी कि मैं अभी से ही किचन का काम करूँ, पर मुझे रसोई का बड़ा शौक था। यह शौक मुझे अपनी मामी से मिला था। मामी के हाथों का बना खाना खाकर लोग तृप्त होकर उँगलियाँ चाटते थे। खानेवाले बड़े दिल से मामी की तारीफ करते और कहते, "अन्नदाता सुखी भव:" इससे परिवार के अन्य महिलाओं को ईर्ष्या होती थी। घर के बड़े बुज़ुर्ग जब मामी को आशीर्वाद देते, तो मेरे मन में हमेशा यह बात कौंध जाती कि एक दिन मैं भी मामी की तरह अच्छा कूक बनूँगी और लोगों से वाह–वाही लूटूँगी।

दादी के स्वर्गवास के बाद दादा जी अपना अकेलापन दूर करने के लिए ख़ूब घूमने टहलने लगे थे। एक पैर मुंबई में तो दूसरा गाँव में, गाँव में फार्म हाउस बनवाकर वहाँ बड़े पैमाने पर उन्होंने बागवानी भी कर रखी है। जहाँ भी जाते हैं लोगों से मेल-जोल बढ़ाते हुए ख़ूब गप्पें हाँकते हैं। अपना सारा जीवन उन्होंने सामाजिक कार्यों में बिताया है, अत: इसी काम में अब भी रमते हैं। लोगों की मदद करने में उन्हें बड़ा आनंद आता है। कई लोग तो अपनत्व की भावना से अपने व्यक्तिगत जीवन के बारे में सलाह–मशवरा करने उनके पास आ जाते हैं। घर पर भी वे ख़ूब महफ़िल जमाते हैं, कभी पिकनिक पर जाते हैं, तो कभी बच्चों के साथ बच्चा बनकर खेलने लग जाते हैं। उम्र के अस्सी साल पूरे कर लेने के उपलक्ष्य में दो साल पहले ही "सहस्त्र चन्द्र दर्शन" जैसे एक बड़े कार्यक्रम का आयोजन भी उन्होंने किया था। उस शाम को दादा जी टहलकर जब घर लौटे तो देखा कि घड़ी में सात बज रहे हैं और देवघर में अभी दीप नहीं जला है।

"अक्षु बेटा ! कहाँ हो ! ज़रा यहाँ तो आना।"

"येस दादू, अक्षु इज हाज़िर.... हुकूम दादा जी !"

डॉ. रमेश यादव
481/161- विनायक वासुदेव, एन.एम. जोशी मार्ग, चिंचपोकली (पश्चिम) मुंबई-400011
मोबाइल- 9820759088 / 7977992381
ईमेल- rameshyadav0910@yahoo.com

दरअसल मैं दादाजी की प्यारी गुड़िया थी, बल्कि आज भी हूँ। वे मुझसे बहुत प्यार करते हैं, और ख़ूब पढ़ाना चाहते थे। इसलिए मैं यहाँ अपनी प्रोफ़ेशनल पढ़ाई करने आज तेरे साथ हूँ। मैं भी दादू से उतना ही प्यार करती हूँ, मानों हम दोनों एक दूसरे के प्यारे दोस्त हों ! कभी–कभी हमारा नि:शब्द हो जाना भी सहानुभूति की ममता से छलक उठता था। संगीता "आसमान की ऊँचाई को वही पा सकता है, जिसके पैरों के नीचे माटी की मज़बूत पकड़ हो !" मेरे दादाजी की यह सीख मुझे ज़िंदगी में हौसला प्रदान करती है। मैं इसी ज़मीन पर चलने की कोशिश कर रही हूँ। फिसलन पर सँभलना जानती हूँ।"

"अरे मेरी गुड़िया, ज़रा सुन तो, दादू को एक बार और चाय पिला दे ना और सुन मेरे एक मित्र भी आ रहे हैं, उनके लिए भी चाय बना देना, और हाँ अपने लिए और पप्पू के लिए भी बना लेना।"

"दादू सरकार, सबको तो चाय मिल जाएगी पर आपको नहीं मिलेगी। अपनी शुगर का तो ख़याल करो।"

"ठीक है मगर एक बार दे दे ना प्लीज़, थोड़ा मीठा कम कर देना बस।"

"ठीक है दादू सरकार, अभी कुछ देर में हम आपकी ख़िदमत में हाज़िर होते हैं, तब तक एक–दो फ़ोन और कर लें।"

"बच्चा, सुनो सात बज रहे हैं, देवघर में दीप नहीं जला है, दीप जलाकर पूजा भी कर लेना। बहू घर में नहीं है तो हम लोग भगवान् को भी भूल गए हैं, कल भी मैंने देखा तो दीप नहीं जला था।"

"अच्छा दादाजी।"

कुछ देर बाद दादाजी के मित्र आ गए, चाय नाश्ता करते हुए वे लोग गपशप में व्यस्त हो गए। मगर दादा जी कुछ लेने देवघर वाले कमरे में गए तो देखते हैं कि दीप आज भी नहीं जला है। ख़ैर कुछ सोचते हुए वे पुन: मित्र के साथ बातों में व्यस्त हो गए। मित्र जब चले गए तो वे कुछ सोचने लगे, शायद यह कि-आख़िर क्या बात है ! अक्षु ने दीप क्यों नहीं जलाया ? वैसे तो वह होनहार लड़की है, कभी कोई भूल नहीं करती, ना ही अपने काम में कोई कोताही बरतती है, फिर कल से ऐसा क्यों हो रहा है कि वह सारे काम करती है पर दीप नहीं जलाती। लड़कियों को तो संस्कारी होना चाहिए। पूजा-पाठ और भक्ति भाव का संस्कार तो उनमें ज़रूर होना चाहिए। माना कि अक्षु अभी छोटी है, पर इतनी भी तो छोटी नहीं! शायद बहू ने उसे ठीक से समझाया नहीं होगा। कल बहू से इस बारे में ज़रूर बात करूँगा, यह सोचकर वे अपने काम में व्यस्त हो गए।

दूसरे दिन दादा जी निश्चित समय पर टिफ़िन लेकर अस्पताल गए। मम्मी से तबियत के बारे में पूछा, इसके बाद कुछ इधर–उधर की बातें कीं। बातें करते हुए मम्मी ने टिफ़िन ख़त्म किया और नर्स ने जो दवाइयाँ दी थीं उनको खाकर बोलीं, "दादाजी, डॉक्टर ने दो दिन और रुकने को कहा है, तब तक घर का और बच्चों का ख़याल रखना, और हाँ, अक्षा ने दो दिन से देवघर में दीप नहीं जलाया क्योंकि उसका मासिक धर्म चल रहा है। आप से वह यह बात कह नहीं पायी इसलिए मुझे फ़ोन पर उसने बताया। कहीं आप बुरा ना मान जाएँ, आपकी आज्ञा का पालन ना करने का उसे बड़ा अफ़सोस हो रहा था। पप्पू की तो क्लासेस रहती हैं, तो दो दिन आप ही दीप जला लेना, परसों से मैं सारी ज़िम्मेदारी सँभाल लूँगी।"

"ठीक है बहू इसमें अफ़सोस की क्या बात है ! वैसे तो ये काम मुझे ही करना ही चाहिए पर बच्चों में भी यह आदत होनी चाहिए इसलिए नहीं करता। पूजा-पाठ से ज़्यादा मुझे कर्म पर विश्वास अधिक है मगर तुम चिंता ना करो मैं सब सँभाल लूँगा।"

वे आगे कुछ ना बोले और अपनी नम आँखों को पोंछते हुए बाहर निकल आए। घर लौटते हुए सोचे जा रहे थे कि आख़िर मैं तो अक्षु का अच्छा मित्र हूँ ना ! तो उसने ये बात मुझसे क्यों नहीं बताई...लड़की है ना ! शायद शरमा रही होगी...मगर उसे तो इंजीनियर बनकर आगे की पढ़ाई के लिए विदेश जाना है, उसे तो मॉडर्न होना चाहिए...मगर मैं भी कितना ना समझ हूँ कि इस छोटी-सी बात को नहीं समझ पाया और उसके बारे में ना जाने क्या–क्या सोचता रहा। अक्षु सायानी हो गई और मुझे पता भी नहीं चला ! घर में क्या-क्या होता है इसकी सारी जानकारी मुझे रहती है, फिर यह बात...! खैर, अक्षु कितनी समझदार है न ! दोस्त होकर भी इस बात पर लजा गई...हे प्रभु, बच्ची की रक्षा करना, उसकी हर मनोकामना पूरी करना। बस इसी तरह मन ही मन धुन रमाए वे घर की ओर चले जा रहे थे।

शाम होते ही रोज़ की तरह मैंने दादा जी जी को चाय दी। दादा जी ने चाय की चुस्कियाँ लेते हुए कहा, "अक्षु सरकार, आज देवघर का दीप हम जलाएँगे, उसके बाद टहलने जाएँगे, वहाँ से आपकी मम्मी से मिलने अस्पताल जाएँगे और लौटते हुए रेस्तराँ से दो-तीन चायनीज डिश पार्सल लाएँ। मेरा मन चायनीज़ खाने के लिए ललचा रहा है, हम सभी आज मिलकर खाएँगे इसलिए आज घर में रसोई नहीं बनेगी, ठीक है ना !"

"जी दादाजी !" कहते हुए मैं शरमा गई और अपने कमरे में चली गई, सोचने लगी–क्या दादू को मेरी मजबूरी के बारे में पता चल गया ! आज अचानक दीप जलाने की बात क्यों कर रहे हैं ? मैंने मम्मी को फ़ोन लगाया तब उसने ये सारी बातें मुझे बताईं।

मुझे चायनीज़ खाना बहुत पसंद है, यह दादाजी जानते थे। दादाजी ने देवघर में दीप जलाया, और जेब में बटुआ रख, छड़ी हवा में लहराते घर से बाहर निकल गए।

ज़िंदगी कितनी लंबी है, उससे ज़्यादा उसकी गहराई पर उन्हें अधिक भरोसा था। वे ज़िंदगी को मंज़िल नहीं बल्कि सफ़र मानकर इतने सालों से मुस्कराते हुए जिए जा रहे हैं। संगीता जब मैंने अपनी इंजीनियरिंग की पढ़ाई पूरी कर ली, तब एक दिन एकांत में मुझसे इस घटना के बारे में विस्तार से बताया था।"

बातें करते–करते अक्षया और संगीता की आँखें कब नम हो गईं, उन्हें पता ही नहीं चला। परदेश में उन दोनों ने पीपल की शीतल छाया और स्नेह से भरे हवा के झोंके को महसूस किया। संगीता गुनगाने लगी-

मेरा रंग दे बसंती चोला, हाँ रंग दे बसंती चोला...., अक्षया ने भी सुर मिलाया, माई रंग दे बसंती चोला...!

000

ख़ुद के बनाए रास्ते

अदिति सिंह भदौरिया

अदिति सिंह भदौरिया
साहिल, सिद्धि विनायक टॉवर, फ़्लैट नंबर 404, ब्लाक -ए, बंगाली चौराहा, मयंक वाटर पार्क के पास, विछोली मरदाना, इंदौर, मप्र -452016
मोबाइल- 8959361111
ईमेल- aditisingh9977@gmail.com

आज की सुबह भी हर सुबह की तरह ही है। सुषमा जी किचन से बड़बड़ाते हुए "दस हाथ हो जाने चाहिए मेरे तो। अरे अब सब आ भी जाओ नाश्ता करने के लिए या एक-एक के कमरे में परोसूँ।" इतना कह कर सुषमा जी रसोई में पराँठे सेंकने लगीं।

डोर बेल बज उठी। अभी किसी का ध्यान सुषमा जी की आवाज़ पर पूरी तरह गया भी नहीं था कि तभी सुषमा जी फिर आवाज़ देती हैं-

"दरवाज़ा तो खोल दो या यह भी मैं ही करूँ?"

सुषमा जी की आवाज़ सुनकर उनका बेटा पहले फ़्लोर से कहता है, "क्यों इतना तेज़ चिल्ला रही हैं, आ तो गया हूँ मैं।"

"बड़ी मेहरबानी तेरी जो आप आ गए सरकार।" सुषमा जी ने अपने बेटे को देखकर कटाक्ष कर दिया।

तभी डोर बेल फिर से बजी।

सुषमा जी के बेटे ने दरवाज़ा खोला तो सामने अपनी बहन को देखकर ख़ुश होकर बोला- "अरे दीदी आप ?"

"क्यों, मुझे देखकर ख़ुश नहीं हुए हो तुम?" आयुष की बहन ने अनमने मन से कहा। आयुष को अपने बहन की कही हुई यह बात बिल्कुल अच्छी नहीं लगी। उसने उसके कंधे पर हाथ रखते हुए कहा, "ऐसे क्यों बोल रही हो दीदी, मैं तो आपको देखकर ख़ुश हो गया हूँ।"

तब तक सुषमा जी भी रसोई से बाहर आ गई और अपनी बेटी को देखकर हैरान होकर बोलीं, "अरे मीता इतनी सुबह-सुबह।"

मीता तो जैसे किसी बात के लिए तैयार ही नहीं थी। "तो क्या अब आपको भी बुरा लग रहा है कि मैं सुबह-सुबह यहाँ आ गई।" सुषमा जी को मीता का व्यवहार थोड़ा अटपटा सा लगा, बात को सँभालते हुए बोलीं "नहीं बेटा मैंने यह कब कहा! अच्छे समय पर आई हो पराँठे बना रही हूँ। खा लो, नाश्ता कर लो।"

"मुझे कुछ नहीं खाना।" बड़े झटके से उसने कहा और चुपचाप अपने कमरे में चली गई। सुषमा जी ने अपने बेटे को बोला, "जाओ पापा को बुला लो, लगता है, आज मीता का मूड ठीक नहीं है।" आयुष अपने पापा को बुलाने उनके कमरे में चला गया। सुषमा जी, मीता के कमरे में जाकर देखना चाहती थीं, आख़िर इतनी सुबह उनकी बेटी क्यों आई हैं ?

माँ का डर भी था, सब कुछ ठीक हो; लेकिन वह डर को अपने चेहरे पर नहीं आने देना चाहती थीं। उन्होंने चुपचाप एक थाली में दो पराँठे और दही रखा। वह जानती थी कि पराँठों के साथ मीता को दही बहुत पसंद है। वे मीता के कमरे में गईं- "दरवाज़ा खोलो देखो कुछ नाश्ता कर लो।"

मीता ने दरवाज़ा खोल दिया। सुषमा जी ने देखा, मीता की आँखें लाल थीं। शायद कल रात से ही रो ही रही थी। उन्होंने कुछ नहीं कहा। वे समझ गईं, कि मीता का फिर उसके ससुराल में झगड़ा हुआ है। यह तो हर बार का है। चार वर्ष हो गए शादी को लेकिन चैन से एक पल भी नहीं बिताया। उन्होंने मीता से कहा- "बेटा कुछ खा लो।"

सुषमा जी के पति भी तब तक मीता के कमरे में आ गए। उन्होंने मीता को गले लगाते हुए

कहा, "मीता जो भी बात है बाद में करेंगे, पहले तुम खाना खा लो।" पिता की बात सुनकर तो जैसे मीता के अंदर का लावा ही उबल पड़ा। वह ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी। आयुष ने उसे पानी का गिलास देकर पूछा, "क्या हुआ, प्लीज़ मुझे तो बताइए क्या हुआ?"

मीता ने अपने माता-पिता को देखते हुए कहा- "आख़िर कब तक मैं यह सब बर्दाश्त करती रहूँगी ? संजय ने मुझ पर फिर हाथ उठाया। आप लोग क्यों नहीं कुछ करते हो ?" इतना सुनकर आयुष को ग़ुस्सा आ गया उसने तेज़ आवाज़ में कहा, "इतनी हिम्मत हो गई है उनकी, बार-बार दीदी पर हाथ उठाने लगे हैं, पर क्यों ? मैं अभी जाकर पूछता हूँ।"

आयुष को जोश में देख कर सुरेन्द्र जी आयुष पर चिल्लाए- "चुपचाप बैठ जाओ, जब हम हैं बात को सुलझाने के लिए तो तुम्हें ज़्यादा तेज़ चलने की ज़रूरत नहीं है।"

आयुष अपने पिता के ग़ुस्से के आगे चुप हो गया। सुरेन्द्र जी मीता का हाथ पकड़कर बोले- "बताओ तो सही हुआ क्या है ?"

मीता ने छटक कर कहा, "जैसे आपको तो कुछ पता ही नहीं है, क्या हुआ है? हर बार का वही। आप क्यों नहीं संजय से बात करते हैं। शादी की है तो कम से कम थोड़ी इज़्ज़त भी तो देनी चाहिए। पूरे घर का काम करती हूँ, लेकिन वही ताने, वही बदतमीज़ियाँ, बच्चा नहीं हो रहा, बच्चा नहीं हो रहा है। तो क्या मेरी वजह से नहीं हो रहा है। मैंने तो कहा है, डॉक्टर के पास चलते हैं। दिखा लेते हैं; लेकिन इस पर भी कोई राज़ी नहीं है। कल तो संजय ने फिर मुझ पर हाथ उठाया और जब मैंने इसकी शिकायत मम्मी जी से की तो बोलीं- अरे पति है, हाथ उठा ही सकता है। क्यों उठा सकता है ? मैं अब यह सब बर्दाश्त नहीं कर सकती और मैं वापस नहीं जाऊँगी।" मीता ने एक ही साँस में अपने अंदर के ग़ुस्से को निकाल दिया।

सुषमा जी पर तो जैसे पहाड़ ही गिर गया। चिल्ला कर बोलीं- "इसका क्या मतलब है कि वापस नहीं जाओगी। शादी क्या गुड्डे-गुड़ियों का खेल है। तुम्हें क्या लगता है, तुम्हारे पापा और मुझमें कभी झगड़ा नहीं हुआ। उन्होंने कभी मुझ पर हाथ नहीं उठाया। लेकिन रिश्ते ऐसे चलते हैं क्या? आजकल के बच्चे तो समझते ही नहीं है। वापस तो तुम्हें जाना ही पड़ेगा। रह गई बात संजय जी से क्या कहना है तो उनसे हम बात करेंगे। देखते हैं कि क्या हो पाता है! अब ज़्यादा बोलो मत चुपचाप नाश्ता करो।" और "सुनिए जी", सुषमा जी ने अपने पति की तरफ देखते हुए कहा, "आप, संजय जी के परिवार को फ़ोन कीजिए। इन बच्चों के अगर भरोसे रहे तो निभ गए रिश्ते। इन लोगों को तो कुछ समझ ही नहीं है। आप फ़ोन करके बुलाइए।"

सुरेंद्र जी भी उठे और फ़ोन करने लगे। उधर से भी जैसे संजय के परिवार वाले इंतज़ार कर ही रहे थे। बात तय हो गई की दोपहर को वे लोग खाने पर आएँगे। अब तो सुषमा जी का उत्साह देखने वाला था। अरे वे लोग आएँगे जल्दी-जल्दी आयुष पनीर ले आ। पनीर बना दूँगी और सुनिए संजय जी को तो कढ़ी बहुत पसंद है, आप दही भी ले आना। कढ़ी भी बना दूँगी और तुम्हारी सास को तो कम मीठा पसंद है। तो ऐसा करूँगी आज हलवा नहीं बनाऊँगी और आप सुनो शुगर फ्री मिठाई भी तो मिलती है। जाके बगल वाले हलवाई से ले आइएगा।

सुरेन्द्र जी भी सुषमा की हाँ में हाँ मिलाने लगे। "हाँ सही कह रही हो। अब आएँगे तो कुछ अच्छा ही बनाना चाहिए। ऐसे थोड़ी न कुछ भी दाल चावल खिला सकते हैं। तुम देख लो कुछ कमी हो तो मुझे बता देना।" मीता यह सब देखकर बहुत हैरान हुई और एकदम चिल्लाकर बोली- "आप लोग कर क्या रहे हो। संजय ने मुझ पर हाथ उठाया है, मैं नाराज़ होकर आ गई हूँ। मैं वापस जाना नहीं चाहती और आप उनको बुलाकर उनकी ख़ातिरदारी कर रहे हो। क्या चल रहा है यह सब।"

सुषमा जी ने मीता को चिल्लाकर कर कहा, "तुम चुप रहो हमको पता है कि हम क्या कर रहे हैं और जैसे यह समाज चलता है, वैसे ही चलना पड़ता है। अब तुम लोगों के कहने हम कोई नए रिवाज नहीं शुरू कर देंगे। चुपचाप बैठी रहो और जैसे ही वे लोग आएँ तब तेज़ आवाज़ में बात करने की ज़रूरत नहीं है। संजय जी घर के दामाद हैं। तुम्हारे पति हैं तो ठीक है। कमरे में तुम लोग कुछ भी बात करो लेकिन हमारे सामने मर्यादा में ही रहना।"

मीता की आँखों से तो जैसे आँसुओं की झड़ी लग गई। मीता को कमरे में छोड़कर वे तीनों चले गए। आयुष कुछ चाहकर भी बोल नहीं पा रहा था। आख़िर माँ-बाप के सामने बोलता भी तो क्या? जैसे ही वे सब कमरे से गए मीता ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी। पिछले चार साल उसकी आँखों के सामने फ़िल्म की तरह चलने लगे। संजय को मीता के माता-पिता ने पसंद किया था। एक उच्च मध्यवर्गीय परिवार जिनका ख़ुद का एक छोटा सा व्यवसाय था। संजय के पिता जी से मीता के पिता जी ने ही विवाह की बात की थी। एक पंडित जी के माध्यम से विवाह की बात तय हुई। दोनों के परिवार वाले मंदिर में नियत समय पर मिले। जैसा कि आम होता है कुंडली मिलाई गई। लड़के-लड़की ने बात की। दिखने में सब अच्छा लगा। चट मँगनी और पट ब्याह हो गया। दहेज ऐसा कि सबकी आँखें फटी रह गईं। सुरेन्द्र जी की इकलौती बेटी की शादी थी। संजय का परिवार भी इस रिश्ते से ख़ुश था। संजय की दोनों बहनें अमेरिका में थीं। संजय उनका इकलौता भाई था। मीता को बहू के रूप में पाकर वह परिवार भी ख़ुश था। लेकिन धीरे-धीरे छोटी-छोटी बातों ने बड़ा रूप लेना शुरू कर दिया। मीता के ससुराल वाले चाहते थे कि वह जल्दी से उन्हें ख़ुशख़बरी दे। मीता भी माँ बनना चाहती थी। लेकिन पता नहीं क्यों ख़ुशख़बरी उनके घर में दस्तक दे ही नहीं रही थी। मीता चाहती थी कि डॉक्टर को दिखाया जाए लेकिन संजय की माँ इस सब के ख़िलाफ़ थी। वह चाहती थी थोड़ा और इंतज़ार किया जाए। मीता ने तब उनसे कहा कि हम दोनों को ही डॉक्टर को दिखाना चाहिए तो संजय का अहम् बीच में आ गया। बिना सोचे समझे उसने कहा कि- "तुम क्या कहना चाहती हो कि मुझमें कमी है।"

मीता ने कहा- "अरे मैंने यह कब कहा? मैं तो यह कह रही हूँ की हम दोनों को डॉक्टर के पास जाना चाहिए। आप कहीं की बात

कहीं क्यों ले जा रहे हैं।" संजय ने आव देखा न ताव उसके थप्पड़ जड़ दिया। मीता हैरान रह गई। उसने उसी शाम अपनी माँ को फ़ोन किया। शादी को भी छह माह ही हुए थे। मीता की माँ ने उसे समझाते हुए कहा, " बेटा जो हो गया सो हो गया पुरुष हैं, कभी ग़ुस्सा कर ही लेता है। तुम्हें भी ऐसी बातें नहीं करनी चाहिए थी। पहले तुम डॉक्टर को दिखा लेती फिर बात करती दामाद जी से, तुम भी न छोटी-छोटी बात को बड़ा कर लेती हो।"

मीता ने कहा, "आप मेरी बात तो सुनिए। संजय ने मुझ पर हाथ उठाया है।"

माँ ने कहा, "तो ठीक है ऐसा क्या हो गया। अब छोटी-छोटी बात को मत बढ़ाओ और हर बात के लिए फ़ोन करोगी तो घर कैसे चलाऊँगी। अपने परिवार पर ध्यान दो। अब तुमने ऐसी बात कर दी है, यह बताओ दामाद जी कितना ग़ुस्सा हो रहे होंगे। उनको मनाओ, उनसे माफी माँगो।"

मीता ने कहा- "मैं क्यों माफी माँगू ? मैंने क्या किया है!"

सुषमा जी को ग़ुस्सा आ गया, " हर बात पर बहस मत किया करो। हमने कहा माफी माँगो तो उनसे माफी माँगो। तुम्हारी भी हद होती है। मीता तुम्हारी ज़िद यहाँ चलती थी। अब तुम ऐसी ज़िद वहाँ मत चलाओ। बहू हो तुम उस घर की और उम्मीद करते हैं कि तुम थोड़ी समझदारी से काम चलाओगी। समाज में तुम्हारे पापा की इज़्ज़त है। तुम्हारी बेवक़ूफ़ी की वजह से हम समाज में मज़ाक का विषय नहीं बनना चाहते। अब जो भी है तो वह अपने तरीके से निपटाओ।"

मीता ने फ़ोन रख दिया वह समझ गई कि कुछ नहीं होने वाला। आए दिन छोटी-छोटी बात पर इस तरह का झगड़ा होने लगा था। जब भी अपने परिवार से कुछ कहती तो उसका परिवार उसे ही समझाइश देता कि तुम एडजस्ट करो। संजय का हाथ उठाना तो आम बात हो गई। अब कभी भी वह हाथ उठाने लगा। अगर वह तेज़ आवाज़ में सवाल करे, तब हाथ उठ जाता। खाना लेट होता, तब हाथ उठ जाता। बात नहीं सुन रही हो, तब हाथ उठ जाता। मोबाइल देर से उठाने पर घर वापस आने पर हाथ उठ जाता। मीता समझ ही नहीं पा रही थी की आख़िर हाथ उठाना इतना ही आसान कैसे हो गया है और सबको दिखाई क्यों नहीं दे रहा!

वह बार-बार अपने मायके आती और हर बार उसे समझा कर वापस भेज दिया जाता। समाज की कई दलीलें दी जातीं। ऊँच-नीच बताई जाती। आयुष को बताया जाता है कि अगर ऐसा ही हुआ तो उसके लिए लड़की नहीं मिलेगी। मीता चुपचाप अपने घर वापस चली जाती लेकिन आज तो हद ही हो गई। आज जब मीता ने देखा कि उसी के माँ-बाप ऐसी ख़ातिरदारी करने के लिए तैयार हैं तो वह अंदर से टूट गई। सोचने लगी कि मेरी ग़लती क्या है? जहाँ मेरे माता-पिता ने कहा मैंने वहाँ विवाह किया। जितना कहा वैसे एडजस्ट करने की कोशिश कर रही हूँ, लेकिन फिर भी ये सब मुझे ही क्यों सहना पड़ रहा है। वह अपनी सोचों में गुम थी कि बेल बजी। मीता नीचे आई देखती है कि संजय अपने माता-पिता के साथ आया है। संजय को देखकर उसकी एक आह निकल गई! क्यों हमारा रिश्ता मज़बूत बनने से पहले ही बिखर रहा है।

उसने अपने सास-ससुर के पैर छुए और बैठ गई जैसे ही सब बैठे मीता की माँ ने कहना शुरू कर दिया- "बहन जी माफ़ कर दीजिए बच्ची है। अब क्या बताएँ छोटी सी बात को बड़ी करने की उसकी बचपन की आदत है। आप तो जी बिलकुल बेफ़िक्र हो जाइए। आज के बाद हम इसको ऐसा नहीं करने देंगे। अभी यह आपके घर की बहू है। जैसा आप चाहेंगे इसे वैसे ही करना चाहिए।"

मीता के पिता ने भी मीता की माँ की हाँ में हाँ मिलाई- "सुषमा बिल्कुल ठीक कह रही है अरे ऐसे कोई बच्चों की तरह मुँह उठा के आ जाता है क्या सुबह-सुबह! क्या आपको बताकर आई थी?"

संजय ने कहा, "जी नहीं, वह तो बस मुझे अंदाज़ा था कि यहाँ ही आई होगी।" तभी मीता के पिता ने मीता की तरफ देखकर कर कहा, "तुम्हें शर्म नहीं आती। इस तरह की हरकत करते हुए। बताकर नहीं आ सकती थी क्या? आख़िर क्यों नहीं बता कर आई। सभ्य परिवार में बहुएँ ऐसे करती हैं ? चलो, संजय जी से माफी माँगों और इनके साथ वापिस जाओ।"

मीता सबको देखती रही और संजय के साथ जैसे ही वह गाड़ी में बैठी संजय ने कहा, "औक़ात याद आ गई। अब अगर दोबारा यहाँ लड़कर आई तो लेने भी नहीं आऊँगा। मायके के एक कोने में पड़ी रहना। न तो मायके में तुम्हारे लिए जगह है और अपने घर के दरवाज़े तुम्हारे लिए बंद कर ही दूँगा।" मीता की आँखों में बिल्कुल अँधेरा सा छाने लगा। वह नहीं समझ पा रही थी कि क्या करना है क्या नहीं!

घर पहुँचते ही फिर वही रूटीन शुरू हो गई। जैसे ही अपने कमरे में पहुँची, संजय की कुटिल मुस्कान उसे अन्दर तक भेद गई। अगली सुबह अपने काम निपटाने के बाद उसने अपनी सास से कहा कि वह बाज़ार से सामान लेने जा रही है। अपनी अलमारी से डिग्रियाँ निकालीं और घर से निकल गई। कोई नहीं जानता था कि वह क्या कर रही है! इसी बीच वह वर्किंग वुमेन हॉस्टल में बात करने गई, क्योंकि वह लोकल थी; इसलिए उसे रहने की परमिशन नहीं दी गई। फिर उसने अपने बचपन की सहेली संध्या को फ़ोन किया। संध्या से उसने अपनी पूरी बात की। वह मीता की स्थिति को जानती थी। वह बहुत पहले से ही मीता को स्वावलंबी बनने के लिए कह रही थी। पर इससे पहले मीता की हिम्मत ही नहीं हुई।

दूसरी तरफ मीता के ससुराल में सब को लगा जैसे सब ठीक हो गया है। पर शाम तक जब मीता वापिस नहीं आई तो सब हैरान हो गए। मीता की सास ने मीता के पति को फ़ोन करके पूछा, " क्या मीता तुम्हारे साथ है?"

संजय बोला- "नहीं, फिर चली गई होगी अपने मायके। वही फ़ोन कर करता हूँ। रुकिए पूछकर बताता हूँ।"

संजय ने मीता की माँ को फ़ोन किया तो वह भी हैरान हो गई, यह हुआ क्या है। वह यहाँ तो आई ही नहीं। न ही उसने कोई फ़ोन किया है। फिर संजय से बोली- "दामाद जी आप नाराज़ मत होइए। हम मिलकर पता करते हैं कि कहाँ है! इस बार मैं अच्छे से

उसकी ख़बर लूँगी।"

सब लोग हैरान हो गए मीता फ़ोन नहीं उठा रही थी। मीता को ढूँढ़ने के लिए सब लोग निकल पड़े। पुलिस स्टेशन गए। संजय को तभी संध्या का ध्यान आया। अक्सर मीता, संध्या से बात करती थी। संध्या का नंबर संजय के पास भी था। जैसे ही संजय ने संध्या को फ़ोन किया संध्या ने बताया कि मीता मेरे पास ही है। लेकिन संध्या ने अपने घर का पता नहीं दिया बोली कि अभी मीता वापिस नहीं आना चाहती। आप चाहें तो उससे बात कर लीजिए।

संध्या ने मीता को फ़ोन दिया। मीता ने बहुत ही आत्म विश्वास से कहा, " मैं वापिस नहीं आना चाहती, बल्कि तुम्हारे लिए कुछ है जो जल्दी ही तुम्हें मिल जाएगा।"

संजय ने कहा कि, "जो भी हो। मेरे घर में कभी नहीं आओगी। अब मैं तुम्हें कभी नहीं वापस बुलाऊँगा।" इतना कहते ही संजय ने फ़ोन काट दिया।

संजय ने मीता के परिवार को फ़ोन करके उनको भी ख़ूब बुरा-भला कहा। अब तो आयुष, मीता की माँ और पिताजी सब परेशान हो रहे थे। उन्होंने भी संध्या के फ़ोन पर मीता से बात की। पहले तो मीता की माँ ने मीता को बहुत डाँटा, फिर समझाने की बहुत कोशिश की लेकिन मीता उनकी बात समझने को तैयार ही नहीं हुई।

मीता ने बस एक ही सवाल किया, "क्या आप सब मेरे साथ हैं ?" तब मीता की माँ ने कहा, "तुम्हारी बेवक़ूफ़ी में हम तुम्हारा साथ नहीं देंगे। हम तो यह सोच रहे हैं कि संजय जी और उनके परिवार से माफी कैसे माँगें?" मीता ने जब यह सब सुना तो फ़ोन काट दिया।

मीता के ससुराल और मायके में ख़ामोशी छा गई। मीता के मायके में एक दिन दोपहर को डोर बेल बजी। इस बार एक चिट्ठी आई। आयुष ने फिर दरवाज़ा खोला और चिट्ठी को पढ़ा। मीता ने अपने माता-पिता के ख़िलाफ़ शोषण का केस कर दिया है, सरकारी चिट्ठी है।

"मीता दीदी ऐसा कैसे कर सकती हैं?" आयुष ग़ुस्से के बोला।

आयुष की बात सुनकर सुषमा जी पर तो जैसे पहाड़ टूट पड़ा। लड़की ने क्या कर डाला! हमारी परवरिश में क्या कमी रह गई थी! यह लड़की ऐसी निकली है। निश्चित तिथि पर आयुष के माता-पिता आयुष और अपने वकील के साथ कोर्ट पहुँचे। मीता सामने ही थी। मीता की माँ ने क्रोधित होते हुए कहा- "शर्म नहीं आई यह करते हुए। तूने हम पर केस कर दिया। आख़िर क्यों ?"

मीता ने बहुत धीरे से कहा, "सिर्फ आप पर नहीं संजय पर भी किया है।"

"कभी किसी बेटी को अपने ही माँ-बाप पर केस करते देखा है?" मीता के पिता जी ने ग़ुस्से से कहा।

मीता ने इसका कोई जवाब नहीं दिया। उसने चुप रहना बेहतर समझा। इतने में कोर्टरूम के अंदर से आवाज़ आ गई। सब लोग अंदर गए काफी हड़बड़ाहट थी। लोग हैरान थे। जाने कैसे लोकल समाचार-पत्र वालों को भी इस केस के बारे में पता चल गया था। जज साहब भी हैरान थे। जज साहब ने मीता को देखा और पूछा- "क्या आप सच में अपने माता-पिता पर केस कर रही हैं ?"

मीता ने "हाँ" में जवाब दिया।

जज साहब ने अपनी बात को आगे बढ़ाते हुए पूछा, "इससे पहले वकील अपनी दलीलें शुरू करें मैं मिसेज़ मीता से यह केस करने का कारण जानना चाहता हूँ। मीता जी निस्संकोच आप अपनी पूरी बात कहें।"

मीता ने कहा शुरू किया, "मैं पूरे होशोहवास में अपने माता-पिता पर केस कर रही हूँ, क्योंकि आज मेरी जो भी हालत है, उसकी पूरी तरह ज़िम्मेदारी मेरे माता-पिता की है। उन्होंने मुझे पढ़ाया-लिखाया है पर अपने पैरों पर खड़े नहीं होने दिया। हमेशा एक बैसाखी मेरे हाथों में पकड़ाई रखी, समाज की बैसाखी, दकियानूसी रीति- रिवाजों की बैसाखी। मैं जब भी कभी इनके पास जाती तो मुझे समाज में एक बहू को कैसे रहना है, इस पर एक लंबा सा भाषण दे दिया जाता। लेकिन यह कभी नहीं जानना चाहा कि बेटी कैसी है? वह ससुराल में क्या महसूस करती है ? मैं जैसे रह रही हूँ मैं इसमें ख़ुश हूँ या नहीं। इनकी नज़र में मेरा पति संजय, जो इनका दामाद है, मुझे मारे-पीटे, मेरा अपमान करे, मुझे ज़लील करे उसे पूरी छूट है; क्योंकि वह मेरा पति है। मैं पूछती हूँ, मेरे पति को यह अधिकार किसने दिया ? मैंने तो नहीं दिया। उसे अधिकार दिया मैंने माता-पिता ने। मैं क्यों संजय के माता-पिता पर केस करूँ? वे मेरे माँ-बाप तो नहीं। क्यों वह मेरे दुख को दुख और सुख को सुख समझें। मैं अपने माता-पिता से उम्मीद करती थी। बार-बार इनको समझाती थी। इनके पास जाती थी। हर बार शारीरिक और मानसिक प्रताड़ना झेलने के लिए वापिस भेज दिया जाता था। दिन भर सबके सामने ज़लील होती और रात में अपनी ही नज़रों में गिरने के लिए तैयार हो जाती। फिर अगले दिन वही, फिर अगली रात वही सब। आपको क्या लगता है कि मैं ज़िंदा हूँ? मैं मर चुकी हूँ। उस दिन ही मर गई थी। जिस दिन मैं अपने माता- पिता के पास आई थी पहली बार अपनी फरियाद लेकर। लेकिन क्या हुआ, कुछ नहीं और आगे कुछ होगा भी नहीं। इस बात का इस बात से अंदाज़ा हो गया। मेरी माँ ने सिर्फ दावत नहीं की थी मेरी सुसराल वालों की, उसने उन्हें वह हक़ दे दिया था कि अब जाइए जो मन में आए वह करें मेरे साथ, हम कुछ नहीं कहेंगे। मैं किसी की बहन या बेटी नहीं हूँ। इनकी इज़्ज़त का एक तमगा हूँ, जिसे माथे पर चिपकाए घूमते रहना चाहते हैं। बंद कमरे में मेरे साथ क्या हो रहा है, इससे इनको फ़र्क़ नहीं पड़ रहा। उस घर में मेरे साथ क्या हो रहा है! इससे भी इनको कोई फ़र्क़ नहीं पड़ रहा। फ़र्क़ पड़ रहा है तो बस इस बात से कि दुनिया क्या सोचेगी। तो ठीक है अब दुनिया को सोचने दीजिए।" मीता ने अपनी बात को आगे बढ़ाते हुए कहा, "मैं संजय से तलाक़ चाहती हूँ। इसमें कोई दो राय नहीं है कि स्त्री जब शादी करती है तो उसे समझाया जाता है कि चुप रहो! बर्दाश्त करना सीखो, लेकिन यह नहीं बताया जाता कि कितना सहन करना है और क्या-क्या सहन करना है ?"

अब जज ने मीता के केस में दोनों पक्षों को सुना एवं कहा कि ग़लती जितनी संजय और उसके परिवार की है, उतनी ही ग़लती मीता के

परिवार की भी है। तीनों ने मीता के दुख को दुख नहीं समझा। उसको सहारा देने के बजाय उसको समाज के नाम पर बार-बार प्रताड़ित होने के लिए भेजते रहे। इसलिए अदालत मीता के माता-पिता को आदेश देती है, वे लिखित में मीता से माफी माँगें और उस माफी को समाचार पत्रों में छपवाया जाए; जिसे पढ़कर हर बेटी के माता-पिता को यह सबक मिले कि मात्र समाज को दिखाने के लिए लड़के या उसके परिवार को नहीं बदलना होगा, बल्कि लड़की और उसके माता-पिता को भी अपनी सोच को बदलना पड़ेगा। बेटी का साथ देने के लिए एक क़दम आगे बढ़ाना पड़ेगा। वे समाज में अपने सम्मान का हवाला देकर बेटियों की बलि नहीं चढ़ा सकते।"

तभी जज ने मीता से पूछा कि क्या वह इस शादी को दोबारा मौक़ा देना चाहती है? तो मीता ने कहा- "नहीं इस रिश्ते में अब ऐसा कुछ बचा ही नहीं, जिसे दोबारा मौक़ा दिया जाए। वह संजय से अलग होना चाहती है।"

मीता ने यह भी फ़ैसला लिया कि वह संजय से किसी प्रकार की धनराशि नहीं लेगी। बल्कि अपने ही दम पर दोबारा अपना जीवन शुरू करेगी। उसे न संजय के पैसों की ज़रूरत है और न ही अपने माता-पिता के घर की ज़रूरत है। उसे अब जिसकी सबसे ज़्यादा ज़रूरत है, वह अब उसके साथ है। उसका स्वाभिमान और अपने ऊपर भरोसा। मीता के इतना कहते ही जज ने मीता के हक़ में संजय और मीता के तलाक़ का फ़ैसला कोर्ट में सुना दिया।

मीता ने कोर्ट रूम से बाहर जाते ही अपने माता-पिता की तरफ़ देखा और कहा, "अब मैं तभी आपसे मिलूँगी, जब आप सच में मुझे अपनाएँगे, न कि समाज या अपनी इज़्ज़त की ख़ातिर।"

उसने आयुष को गले लगाकर कहा- "कल जब तुम भी किसी लड़की को विवाह कर घर में लाना तो उसके सम्मान की पूरी ज़िम्मेदारी भी लेना।"

मीता चल पड़ी... अपने सुखद भविष्य की ओर... ख़ुद पर भरोसा करके ख़ुद के लिए बनाए रास्तों पर!

लघुकथा

कंजक

डॉ. नितीन उपाध्ये

वह एक प्रसिद्ध लेखिका हैं, उनकी कहानियाँ पढ़कर समाज सुधार और नारी उत्थान की भावनाएँ मन में हिलोरें लेने लगती हैं। हम सबको भी ऐसा ही कुछ करना चाहिए ऐसी प्रेरणा मिलती है। उनसे मिलकर अपने पाठकों के लिए ऐसे ही प्रेरणास्पद बातें निकालकर ला पाऊँ, यही सोचकर वह आज उनके घर पर उनका साक्षात्कार लेने आया है। अभी नवरात्रि में आस-पड़ोस की झुग्गी-झोपड़ी की बच्चियों को, कंजक के रूप में बुलाकर अपने घर में पूजा करने की उनकी कथा प्रकाशित हुई थी, जिसकी बहुत सराहना हुई थी। उसके बारे में प्रश्न पूछने के लिए उसकी कई महिला सहकर्मियों ने उसे ख़ास तौर पर कहा था।

उनकी सुन्दर सी, भव्य हवेली में उनकी सहायिका उसे टेरेस गार्डन में बैठा कर, सामने चाय नाश्ता रखकर गई। उसने उठकर, चारों तरफ नज़र दौड़ाई, ताकि उन झुग्गी-झोपड़ियों की फ़ोटो ले पाये, पर आस-पास भी वैसी ही आलीशान कोठियाँ थीं।

जैसे ही वह एक गुलाबी चंदेरी साड़ी में उसके सामने आईं, बेसाख्ता उसके मुँह से निकल गया-

"आपके घर के आस-पास की झुग्गी- झोपड़ियाँ नहीं दिख रही हैं।"

उन्होंने हँसकर कहा- "वह तो पाँच साल पहले ही नगर निगम के पार्षद से कहकर हटवा दी थीं, जब हमारी हवेली का निर्माण प्रारम्भ हुआ था।"

न चाहते हुए भी वह पूछ बैठा- "फिर आपकी वह कंजकों वाली कहानी ?"

वह खिलखिलाकर हँस पड़ीं और बोलीं- "कहानी को भावुक बनाने के लिए थोड़ा मिर्च मसाला तो डालना पड़ता है ना!"

000

डॉ. नितीन उपाध्ये,
दुबई (संयुक्त अरब अमीरात)
मोबाइल- +971 56 360 8330
ईमेल- n_upadhye@yahoo.com

देवदूत
राजा सिंह

दद्दू ने मुझे बुलवाया था। किन्तु कुछ अप्रत्याशित कारणों से मैं जा न सका। वस्तुत: मैंने उन्हें उपेक्षित श्रेणी में रख दिया था; क्योंकि वे ईश्वर के देवदूत बन गए थे जो मुझे कतई नापसंद था। वे मुझे और शेखर को अपना शिष्य मानते थे परंतु मैंने कभी उन्हें गुरु का दर्जा नहीं दिया था। हालाँकि शेखर उनसे बहुत प्रभावित था। वह उसके बड़े फुफेरे भाई थे, हम दोनों की उम्र से करीब पंद्रह वर्ष बड़े। इस कारण से वह उन्हें बेहद सम्मान, प्यार, प्रणाम करता था और गुरु मानता था और कभी भी आज्ञा उल्लंघन नहीं करता था। मैं भी शेखर की तरह उन्हें बड़ा भाई मानता और दद्दू कहने लगा था।

कई बार उनसे मिलने का मन किया था। अकसर घूमते हुए उनके स्थान की तरफ क़दम बढ़ जाते किन्तु एक हल्की सी हिचक सी उभर आती और मैं पूरी तरह उससे ढक जाता, क़दम वापस खींच लेता। दद्दू ने बाह्य संबंधों को पूरी तरह तिलांजलि देते हुए अंदर के संबंधों में प्रवेश करते हुए ऊपर से संबंध स्थापित कर लिए थे जो हमारी पहुँच से बाहर थे। उनके कहे को ही स्मरण करता हूँ..."किसी समय हम तीन तरह के संबंध बनाते हैं, हमारे बाहर, हमारे भीतर और हमारे ऊपर। बाहर के संबंध हैं सांसारिक और अंदर के संबंध आध्यात्मिक, तथा ऊपर के संबंध ईश्वर से। यह बात वागीश शास्त्री गुरु जी ने जीवन की सार्थकता के विषय में कही। उन्होंने बाह्य और आंतरिक संबंध पूर्णरूप से आत्मसात् कर लिए थे अब सिर्फ़ ऊपर से संबंध विकसित करना रह गया है, जिसके लिए वे सतत् प्रयत्नशील हैं।" ऐसा उन्होंने कहा था। शेखर और मैंने स्वीकृति में सिर हिलाया था और यह जीवन की आधारभूत संरचना है समझ कर कंठस्थ की थी। किन्तु उनकी थ्योरी के अनुरूप ढालने में असफल रहे थे। मैंने अपने आप को ढीला छोड़ दिया था और जानबूझकर जाने से गुरेज़ करने लगा।

आज रविवार है। पार्क के एक कोने में अपने आप से झिझकता, सिकुड़ता बैठा हूँ। मुझे लगा कि मैं उनसे भाग रहा हूँ, जो ठीक नहीं है। मुझे उनका यह भ्रम भी दूर करना था कि आंतरिक और ऊपर के संबंधों के लिए मैं बहुत मुश्किल में हूँ और रहस्यमय ढंग से उन पर आश्रित हूँ। मुझे अपने भीतर एक अजीब सी बेचैनी महसूस होने लगी।

मैंने मित्र शेखर को फ़ोन किया है। "तुम्हें कोई जल्दी तो नहीं है ?" उसने पूछा।

"नहीं.. !" पुराने दिनों की आदत अब भी भीतर बची रह गई थी, मुझे दद्दू से मिलने के लिए उसके साथ की ज़रूरत थी। मैं कभी भी अकेले उनके पास नहीं गया था। यादों का एक झोंका आया और उड़कर ले चला। हम दोनों उनसे कठिन संस्कृत पढ़ने जाया करते थे। वे संस्कृत विद्यालय के आचार्य थे। संस्कृत शब्दों, वाक्यों का सही उच्चारण सिखाते थे। एक बड़े शब्दों-वाक्यों को ठहरकर टुकड़े कर के उचित उच्चारण किया जाता है वह बड़ी सहजता से सिखाते और बुलवाते थे। उन्होंने ईश्वर संबंधित कई श्लोक, मंत्र, कंठस्थ करवा दिए। वे संस्कृत पढ़ाते कम थे किन्तु धर्म-कर्म-अध्यात्म के विषय में ज़्यादा कहते थे। वे भगवान् शिव के उपासक थे और एक दिन उन्होंने हम दोनों को, 'ऊँ त्रयंबक यजामहे सुगंधि पुष्टिवर्धनम। उर्वरूकमिव बंधनान मृत्योमुक्षीय मातृतात।' सिखाया। कहा 'इस मंत्र का जाप करने से पितृदोष, कालसर्प दोष, राहू-केतु तथा शनि की पीड़ा से मुक्ति मिलती है। इसे सुबह साँझ अवश्य जाप किया करें।' उनके सानिध्य में हम अपने में कुछ विशिष्ट, असाधारण सा अहसास होने लगा था।

दशहरे की रामलीला में वह रावण का पाठ याद किया करते थे। हम दोनों के लिए वह विशिष्ट पास का प्रबंध करते, हम दोनों अत्यंत प्रसन्न रहते थे। रावण के रूप में जब उन्होंने शिव

राजा सिंह
1285, सेक्टर-आई,
एल.डी.ए. कालोनी, आशियाना,
कानपुर रोड, लखनऊ-226012, उप्र
मोबाइल- 9415200724

तांडव स्तोत्र का सस्वर पाठ .. "जटाट्वी गलज्जलप्रवाह.. से प्रारंभ करके जब अंतिम स्तोत्र .. इमं हिनित्यमेव मुक्त....." किया। तो हम दोनों मंत्रमुग्ध होकर निहारते रह गए। हम दोनों उनके वाचन से इतने प्रभावित थे कि आगत हर बैठक में उनसे शिव तांडव स्तोत्र अवश्य सुनते। वे मुश्किल से पाँच मिनट लेते, अपनी ओजस्वी वाणी से और हम दोनों को अनुगृहित कर देते।

एक बार वे तपेश्वरी मंदिर में मिले। मैं माँ के साथ देवी दर्शन करने हेतु आया था। वहाँ उन्हें पुजारी के रूप में देखकर बेहद आश्चर्य हुआ। मंदिर में दर्शनों हेतु काफी भीड़ थी उन्होंने तुरंत दर्शन की व्यवस्था करवा दी। माँ भी उनसे प्रभावित हुए न रह सकी। मैंने पूछा तो हँसकर बोले, "यूँ ही ख़ाली समय का सदुपयोग कर लेता हूँ।" न जाने क्यों मेरे भीतर एक अजीब सी झुरझुरी फैल गई कि शीघ्र ही हम उन्हें एक सामान्य व्यक्ति के रूप में खो देंगे..! कुछ ही दिन बीते थे कि शेखर ने बताया कि दद्दू ने आचार्य-प्राचार्य की नौकरी छोड़ दी है। अब वे पूरे समय भगवान् की सेवा में आ गए हैं। सुबह मंदिर में पंडिताई और शाम को मंदिर प्रांगण में भक्ति प्रवचन। फूफा की पंडिताई यजमानी चलती नहीं है। घर का ख़र्च चलना मुश्किल है। भाभी-बच्चे, बुआ-फूफा सब दुखी हैं, उनके कृत्य से। बुआ के घर मातम सा पसरा सा रहता है। "क्या करें? दोस्त एक दिन चलते हैं, उनका प्रवचन सुनें, देखें ऐसा क्या कहते हैं, जो अन्यों से अलग है ?"

हम दोनों ने उनका भक्ति प्रवचन देखा-सुना। ज़्यादा भीड़ नहीं थी। इसलिए सहज ही उनकी नज़र में आ गए। वे कह रहे थे- 'सातों सुख सबको मिलें, यह कठिन है। इसलिए सात में तीन-चार जितने भी सुख मिलें उससे संतुष्ट रहना चाहिए। यदि अनंत सुख का उपभोग करना है तो प्रभु की शरण में आना ही श्रेयस्कर है। प्रभु का रास्ता बड़ा सीधा है और बड़ा उलझा भी। बुद्धि से चलो तो बहुत ही उलझा और भक्ति से चलो तो बहुत सीधा। विचार से चलो तो बहुत दूर और भाव से चलो तो बहुत ही पास। नज़रों से देखो तो कण-कण में और अंतर्मन से देखो तो जन-जन में। स्वयं विचार कीजिए कौन फलदायी है।' मैं और रुक न सका। मुझे फूफा-बुआ और भाभी बच्चों के मुरझाए चेहरे, एक साथ दृश्यमान हो रहे थे। अचानक मेरे मस्तिष्क में कुछ बेतुका विचार क्रोध गया। कुछ अन्यतम, बिल्कुल अलग सा, या प्रतिक्रियावश मैंने कक्षा नौ में क्रिश्चियन कॉलेज में अंग्रेज़ी माध्यम से प्रवेश ले लिया। कानपुर का वह ईसाई कॉलेज अंग्रेज़ी के मामले में बहुत सख्त नहीं था। आपस में हम हिन्दी में भी बात कर सकते थे, कोई प्रतिबंध नहीं था। सुबह की प्रार्थना यद्यपि बाइबल के नीति वचन से होती थी और उन्हें हिन्दी में हिन्दी के अध्यापक श्री भगवान् दास कहते थे जिसे हम सब बच्चे दोहराते थे। और सब कुछ तो याद न रहा किन्तु इसु के क्रॉस में कहे वचन अभी तक अंकित थे।.. "हे ! परम पिता, इन्हें क्षमा कर, क्योंकि ये नहीं जानते की यह क्या कर रहे हैं?"

"जो सोच-विचार के बुराई करता है उसे दुष्ट कहते हैं।" शुरू से ही कक्षा में मेरे साथ में सरताज आलम, अल्बर्ट सुनील, और राजेन्द्र सिंह मोना सिख जुड़ गए थे। हम चार थे और जमकर धमाल मचाते और गंभीरता से पढ़ते। हम लोगों के बीच एक नारा प्रचलित था- 'ख़ुदा की बातें ख़ुदा से करना, हमारा कोई ख़ुदा नहीं है।.. ये जो हमको सज़ा मिली है, हमारी कोई ख़ता नहीं है।' .. हम ये जान गए थे कि, ईश्वर एक है और विभिन्न संस्कृतियों में भिन्न भिन्न तरह से पहचाना जाता है। इसलिए मेरे ईश्वर या तुम्हारे ईश्वर से जुड़ने की बात नहीं है, यह हमारे ईश्वर से जुड़ने की बात है..।

वे मिले थे। घर में ही थे। मुझे लगा कि जैसे वे प्रतीक्षा कर रहे थे कि क्रिश्चियन स्कूल में जाने की कोई सफाई दूँगा। हालाँकि ख़ुद मेरे लिए यह क्रिया बहुत ही अस्वाभाविक थी। किन्तु अब मैं प्रमाण सहित अपने को सही सिद्ध करने की ज़िद में था। वे चुपचाप खड़े थे। मैंने उनके कृत्य (नौकरी छोड़ने) को अत्यंत अनिश्चित और कमज़ोर लहजे में प्रतिवाद किया। यह स्वाभाविक नहीं था। कोई अदृश्य ताक़त मुझे रोक रही थी।

दद्दू हँसे, "तुम्हें ग़लतफ़हमी हुई है । मैं वह नहीं हूँ जिसे तुम जान रहे हो?" उन्होंने बड़े ही सहज और संयत स्वर में कहा। उनकी आँखों में अजीब सी तसल्ली थी, जैसे यह बात कह कर, उन्होंने स्वयं अपने को तसल्ली दी हो ! मेरे दिल में संदेह अब भी था.. दुविधा थी.. ईर्ष्या थी.. । मैंने उनकी नियति सूँघ ली थी। जिन लोगों को अपने माँ-बाप से ज़्यादा देवी-देवताओं पर विश्वास हो उनका हश्र पागलखाने में ही होता है। दद्दू अब विधर्मी लोगों को सनातन धर्म में लाने हेतु प्रयत्नशील हो गए थे। वे रविवार को केंट स्थिति चर्च जाते और हर शुक्रवार को रेल बाज़ार मस्जिद। प्रार्थना के बाद निकलती भीड़ में वह अपने सनातन धर्म को श्रेष्ठ बताते हुए वापस मूल धर्म में आ जाने को आग्रह करते। थोड़े दिनों तो विधर्मी भीड़ ने बर्दाश्त किया फिर उन पर पिल पड़े और उन्हें भुरता बना दिया। जब मैं उनसे अस्पताल में मिला था, उन्हें समझने और समझाने की कोशिश की थी, वे एक क्षीण मुस्कराहट से लिप्त हो गए थे। दूर किसी अनजान बिन्दु पार टिकी उनकी सपनीली आँखें रह रह कर एक वहशी सोच-क्रोध से चमक उठतीं। बार-बार मुझे ख़याल आता है और अचरज होता कि उनकी उपस्थिति से आसपास के लोग घर-परिवार के लोग प्रभावित क्यों नहीं होते? शायद वे सब उनकी परिधि के भीतर होते है, परिधि के बाहर के लोग नहीं।

दद्दू पागलखाने ले जाए गए थे। भयानक बात यह थी कि दद्दू मृत नहीं हुए थे, वे पागल हो गए थे। मृत व्यक्ति के आंतरिक रहस्य उसी के साथ दफ़न हो जाते हैं, किन्तु पागल व्यक्ति के रहस्य ज्ञात हो सकते है। किन्तु मृत और पागल का हम कुछ बिगाड़ नहीं सकते। अब वे धर्मी विधर्मी दोनों के लिए पागल थे। मैं कल्पना भी नहीं कर सकता था कि प्रतिदिन का जीवन जीते हुए भी वह एक अलग दुनिया में रह रहे थे। हम सब से बाहर की दुनिया, जिसमें हम सब का प्रवेश असंभव था। एक अरसा बीत गया था। शेखर से कभी बात हो जाती थी। दद्दू के विषय वह कुछ ठोस नहीं बता पाया था कि वह कहाँ हैं, कैसे हैं ? शेखर वहीं संस्कृत विद्यालय में हिन्दी का अध्यापक

हो गया और मैं सिविल इंजीनियर आगरा में पोस्ट हो गया। दद्दू समय की गर्त में खो गए थे। मैं सोचता कि उनके भीतर काफी बीहड़ जंगल रहा होगा, जिसके अंदर हम दोनों प्रवेश नहीं कर पाए। क्या यह उनके सुख या दुख का अंत था ? बाह्य आंतरिक एवं ईश्वरीय संपर्कों की एक सीमा होनी चाहिए? जिसके पार जाना अतिरेक श्रेणी में आता है? कई प्रश्न ऐसे थे जिनका उत्तर दद्दू के पास होता, या शायद नहीं भी ? एक बार उन्होंने कहा था- 'हम मानवीय नहीं आध्यात्मिक जीव हैं, आध्यात्मिक अभ्यास को जिसे साधना कहते हैं, समर्पित हुए बिना जीवन अधूरा है। जैसे हमारे गंतव्य तक पहुँचने के अनेक रास्ते हैं, ईश्वर से जुड़ने के भी अनेक रास्ते हैं, जो धर्म और संप्रदाय की सीमाओं से आगे जाते हैं। कुछ लोग प्रार्थना का अभ्यास करते हैं, जो स्वानुभूति का सरल किन्तु बेहद प्रभावशाली तरीक़ा है। आध्यात्मिक शक्ति विकसित करने के लिए मेरा पसंदीदा तरीक़ा है ध्यान करना। इसका मतलब है, प्रतिदिन कुछ समय अपने मस्तिष्क को पवित्र विचारों पार केंद्रित करते हुए ईश्वर के नाम का मंत्र जपते हुए बिताता हूँ। इसके द्वारा हमें तनाव से मुक्ति मिलती है। हमारा उद्देश्य साफ हो जाता है, जिससे हम अधिक रचनात्मक हो जाते हैं। ध्यान का गंभीर प्रभाव यह है कि हमारे भीतर श्रेष्ठ गुण विकसित करता है और हम श्रेष्ठ से श्रेष्ठतम बन जाते है।'

मेरे ज़ेहन से दद्दू का ज्ञान पूर्णरूपेण खत्म हो चुका था। लेकिन अचानक वे दिख गए..पागलखाने में कुछ अतिरिक्त बैरकों का निर्माण होना था जिसके प्रारम्भिक सर्वेक्षण के लिए मैं गया था। उन पुरानी बैरकों से गुज़रते हुए एक व्यक्ति पर निगाह टिक गई, रुक गई। कृषकाय शरीर और बुझी चेतना के ऊपर दमकती हुई आँखें कुछ अलग-सा आभास दे रही थीं। दुख, तकलीफ़ और यातना से भरे पड़े उनके चेहरे पर फीका और धुँधला-सा आलोक अब भी विद्यमान था। पता नहीं ऐसा क्यों लग रहा था कि यह व्यक्ति बाह्य रूप से अदृश्य है किन्तु आंतरिक रूप से इसका अस्तित्व मेरे भीतर मौजूद है? कुछ पल उसे देखता रहा फिर आगे बढ़ गया।

"ज़रा ठहरिए...!" एक पुकार। लगा कि.... एक निरीह अनुरोध...आवाज़, मेरा पीछा कर रही है...आदी...आदित्य..? मैं हैरान, सचमुच में हैरान रह जाता हूँ। क्या दद्दू? मैं बहुत पीछे के वर्षों में लौट जाता हूँ।

एक आवाज़ उभरती है- 'तुम बेशक मुझे भूला दो मैं नहीं' वह आवाज़ हस्तक्षेप करती है जो अचानक दिल के अँधेरे कोने से निकल कर, मुझे प्रताड़ित करने लगती है। दहकने लगता हूँ.. पुरानी छुअन की याद डँसने लगती है। वापस उनकी तरफ लौटते हुए एक अजीब सा सुख हुआ कि वह वही है, दद्दू! मैं उसके निकट आता चला गया इतना निकट कि, हम दोनों के चेहरे इतने पास थे कि अन्यों के शोर बावजूद, मैं उन्हें सुन सकता था।

"मैं पागल नहीं हूँ !" उन्होंने चेताया। मैं कुछ देर चुपचाप उन्हें घूरता रहा, जैसे यकीन करना चाहता हूँ।

"तुम मुझे यहाँ छोड़कर जा नहीं सकते।" उन्होंने मरी आवाज़ में कहा। एक बारगी लगा कि मैं कमज़ोर, असहाय, त्रस्त चेहरे को तोड़ दूँ। संदेह अनिश्चय से मेरे स्वर में एक तनाव ख़िच आया था..दद्दू..!..?

"हाँ..। मैं यहीं रहूँगा..?" इस बार उनके होंठ एक अप्रत्याशित हँसी में फैल गए। उस हँसी में एक विवश निरीहता छिपी थी। मुझे ओशो रजनीश का कथन याद आया, "दुनिया में सबसे सफल इंसान वही है, जिसे टूटे को बनाना और रूठे को मनाना आता है।"

मैं दहल गया था और उन्हें वहाँ से आज़ाद कराकर अपने घर ले आया। मुश्किल से एक दो दिन ही बीते थे कि वह कानपुर जाने के ज़िद करने लगे। रोकना मैं भी नहीं चाहता था किन्तु अपने साथ और कुछ ठीक हो जाने के बाद। यहाँ उनके अकेलेपन में तीव्र आकांक्षा होती है कि उनके अकेलेपन में झाँककर देख सकूँ। क्योंकि तब मुझे अजीब सा भ्रम हुआ था कि वह उन अकेले लोगों में है, जो अकेला होने पर भी सारी दुनिया साथ लेकर चलते हैं।

एक अर्धरात्रि को वह फिर लापता हो गए। यह वही रात थी जब मैंने उनसे पूछा था, दद्दू ऐसा क्या था कि आप को विश्वास आया था कि आप देवदूत हैं, आपको देवत्य या ईश्वरत्व प्राप्त है? वह मुस्कराने लगे, पर उनकी आँखें मुझ पर थीं। वे मुझे ध्यान से पढ़ने लगे, उनमें एक आश्वासन था।... 'वह नींद नहीं थी स्वप्न या दिवास्वप्न भी नहीं...। उनकी आवाज़ कहीं दूर आती सी लगी.... मौत, पहले मैंने सोचा हत्या.. ? बलात्कार ..ये नहीं.. नहीं? पूरे कमरे को आलोकित करती सामने जो खड़ी है, अवश्य वह स्वर्ग की देवदूत होगी ? उसे भरपूर देखने के लिए मैंने कोशिश की, भारी आँखों ने एक बार फिर देखा वह नहीं थी। जब वह देवदूत नहीं है तो वह मरा भी नहीं है। फिर क्या वह सदेह स्वर्ग में है ? विश्वास नहीं आता.. वह स्वर्ग था और उसे देवदूत नियुक्त किया गया है? निश्चय ही उसे अपनी सूरत देवदूत सी लगी। देवदूत का ख़याल आते ही उसके आधे सोये दिमाग़ को झिंझोड़ दिया। आश्वस्त होते ही उसने आँखें खोल दी और अपने को देवदूत होने की घोषणा कर दी। किन्तु स्वर इतना धीमा था कि किसी के लिए सुनना मुश्किल था। माँ ने धीमी आवाज़ सुनने के लिए उसके चेहरे के पास खिसक आई, अपना मुख उसके चेहरे के ऊपर झुका लिया। एक लंबी साँस खींचकर अपनी जलती अनकहे खोल दी। आश्चर्य अपनी हालत से ज़्यादा उनके अविश्वास पर दिलचस्पी हो रही थी... कौन सा तरीक़ा बच रह गया है अपने भ्रमजाल में डोलते-विचरते रहने का ? बच्चा बाहर आओ, इसी दुनिया में रहो।.. मेरे मन में बेचैनी दौड़ गई। मैंने कहा फ़िक्र मत करो। सब ठीक होगा ! ...

कुछ ही पल गुज़रे थे कि परत दर परत वह आच्छादित पारदर्शिता रूप में सामने खड़ी थी। उनकी बर्फीली नज़र धुँधलके पर प्रहार को प्रस्तुत, सितारों में भटकती, उसे जकड़ती हुई, फिर दर्द से तनी नसों को सहलाती-दुलारती राहत भरी, अँधेरे की परत दर परत गिरते हुए जाल की मरीचिका, भ्रान्ति, निंद्रा, दुखद-सुखद छवि जिस पर आहिस्ता-आहिस्ता बढ़ता सुकून।.. उत्तेजित हो उठा।... सोने और जागने के फ़र्क़ को भूल गया और समय के झुरमुटों पर ठहरी उसकी आवाज़ को कहते सुना... "हूँ...."... पर ऐसे ही दूर होती

आवाज़ ने कहा, "देवदूत हो तुम" कहीं दूर से आती उसकी आवाज़ की स्वीकारोक्ति ने बाँधकर देवत्व दिया। आँख खुलते ही उसने अग्नि देखी... नरक की आग... धूँ...धूँ... धकधकती ज्वाला... परिपक्व अग्नि शिखाए... कहीं कहीं नीली लौ... लगा कि वह उसमें गिरता जा रहा है। कोई धकेल नहीं रहा है... वह सहज स्वाभाविक रूप से उसमें प्रवेश कर रहा है, वह जल रहा है किन्तु कोई कष्ट नहीं है, आग की सुर्ख लपटों और चका-चौध के बीच वह दूसरे छोर पार निकल आया है। वह जला नहीं था बल्कि और स्वच्छ होकर बाहर निकला है, नहीं, वह मरा कदापि नहीं, वह देवदूत बन गया है। भीतर से चीख उभरी पर कोई शब्द नहीं हुआ।

विशाल समुद्र, पानी का दायरा बढ़ रहा है पर उसके भीतर निर्द्वंद्व पानी समाता जा रहा है, सागर की विशालकाय ऊँची- ऊँची लहरें उसे समेटे भीतर और भीतर खींच कर तलहटी में खड़ी कर देती है...नीले परिधान में सजी देवदूत उसी का स्वागत करने को खड़ी है, उससे एक ही ध्वनि उच्चारित होती है तुम देवदूत हो, चंद क्षणों में वह किनारों में था, बिना भीगा बगैर गीला। क्योंकि वह देवदूत है। फिर वह दिखाई देता है हिमालय के उत्तुंग शिखर पर धवल हिमराशि के विशाल ढूह पर और उसमें वह नंगे बदन, शिव आराधना करता हुआ। हिम सुंदरी उसे प्रमुदित निहार रही है। इसके अंदर कोई जी रहा है। वह धीमे से हँसा। इतनी ठंड में वह मर नहीं रहा है बल्कि भावावेश में उसका गौर वर्ण एक तीखी चमक के साथ उभर रहा है...

वह कोई देवदूत तो नहीं? निश्चय ही, हिमसुंदरी आश्वस्त करती है। भयभीत, पुलकित, सम्मोहित उसको देखता रह जाता हूँ। उसकी चाल में एक अजीब-सा चेतन पैनापन था। उनका लिया हर कदम एक कँपकँपाते रहस्य-रोमांच से भरा था। जिसकी विद्युत तरंगें उनके शरीर से फूटकर मेरे शरीर को झनझनाए दे रही थी। इतने अभिभूत चेतन भाव से आज तक मैंने किसी की मौजूदगी महसूस नहीं की थी। उसकी उपस्थिति मुझ पर सदैव की तरह हावी हो चुकी थी। मैंने उसका विश्लेषण करना ही नहीं, सोचना भी बंद कर दिया था। मंत्र-मुग्ध मैं वही करता जा रहा था जो वह करती या वह जो करवाना चाह रही थी।... फिर बोझिल पलकों ने साथ छोड़ दिया था।

सुबह पत्नी ने बताया, 'वे नहीं है।' मैंने उन्हें वहाँ ढूँढ़ने की कोशिश नहीं की। मैंने शेखर से पूछा उसने बताया कानपुर में नहीं हैं.. जब कोई आदमी ज़िंदगी से बहुत प्यार करता है तो उसके लिए मरना बेहद दुरूह होता है। कुछ लम्हों के लिए देवदूत मिल भी जाए तो और बात है, पर देवदूत ज़्यादा लमहों के लिए नहीं होते, यह सोचकर मैं हँसा।

मैं लखनऊ में था। पत्नी की ज़िद की ख़ातिर शनि मंदिर आया था। शनि देवता पर तेल चढ़ाने। किसी ज्योतिषी ने बताया था कि मेरी प्रगति रुकी हुई है। उसे गति देने के लिए यह आवश्यक है। मंदिर प्रांगण के एक कोने में स्थित चबूतरे पर वे बैठे हुए दिखे। कोई ज्योतिष पत्रा देख रहे थे। यकायक मुझे सामने देखकर उनकी आँखों में गहरा विस्मय छलक आया।

"दद्दू...! आप बिना बताए चले आए ? मैंने बहुत ही कोमल स्वर में शिकायत की।

"आपने हमें सेवा का मौक़ा ही नहीं दिया।" पत्नी ने कहा।

"आपने मुझे पगलखाने की क़ैद से मुक्ति दिलवाई यह सबसे बड़ा अहसान किया।" दद्दू ने कृतज्ञ स्वर में कहा। यह कहते हुए उनकी आँखों की कोर गीली हो गई थी।

"फिर अपना घर भी तो देखना था।"

"कहाँ हैं भाभी और बच्चे ?" मैंने उत्सुकता से पूछा।

"यही हैं... मिलवाता हूँ।" दयनीयता और हँसी के मिले-जुले भाव से उन्होंने हमारी तरफ़ देखा।

मंदिर परिसर में स्थित उनके निवास के मुख्य दरवाज़े पर उनकी नेम प्लेट जड़ी थी- पंडित वागीश शास्त्री, ज्योतिषाचार्य..

"शेखर को पता है ?" मैंने पूछा।

"आप बता देना।" एक खिसियानी सी मुस्कराहट उनके होंठों पर सिमट आई थी।

000

ग़ज़ल

ग़ज़ल

के. पी. अनमोल

हमीं ये सोचते हैं 'वाह! क्या जादू बनाते हैं'
हक़ीक़त में हमें कुछ लोग बस उल्लू बनाते हैं
ज़रा-सी देर में ही हम झुलसकर ढूँढ़ते हैं छाँव
न जाने फूल कैसे धूप में ख़ुशबू बनाते हैं
बढ़ाकर दिन ब दिन अपनी उम्मीदें, चाहतें, सपने
हम अपनी ज़िंदगी को ख़ुद ही इक कोल्हू बनाते हैं
कभी ख़ुशियाँ चमक बनकर उभर आती हैं आँखों में
बहुत-से ग़म जमा होकर कभी आँसू बनाते हैं
हज़ारों बार की नाकामियों के बाद जाके लोग
कभी पहिया बनाते हैं, कभी याहू बनाते हैं
हमीं हालात गढ़ते हैं हमेशा अपने हाथों से
हवा को हम ही पुरवाई, हमीं तो लू बनाते हैं
ख़ुद उनके हाथ ही उनके कहे में है नहीं 'अनमोल'
कमीज़ों के लिए जो रात-दिन बाज़ू बनाते हैं

000

हों जिसपे फूल, कोई ऐसी डाल कर दे मुझे
निगाह फ़ेर कभी और कमाल कर दे मुझे
मैं एक धार हूँ दरिया की जिसपे पहरा है
तुझी से आस लगी है, बहाल कर दे मुझे
नज़र तलाश रही है जो इक हसीं मंज़र
उसे तू सामने रख दे, निहाल कर दे मुझे
महक उठेगी मेरे तन की ख़ाक या मौला!
वतन के हक़ में कभी इस्तेमाल कर दे मुझे
मैं इस जहान में 'अनमोल' होके रह जाऊँ
हुनर के मोतियों का एक थाल कर दे मुझे

000

के. पी. अनमोल
अनमोल प्रतीक्षा, 321/4, सोलानीपुरम,
रुड़की (उत्तराखण्ड)- 247667
मोबाइल- 8006623499
ईमेल- kpanmol.rke15@gmail.com

हाशिए से...

पंजाबी कहानी

मूल लेखक : जतिंदर सिंह हांस

अनुवाद : जसविंदर कौर बिन्द्रा

जतिंदर सिंह हांस
गाँव अलूणा तोला,
जिला लुधियाना-141414
पंजाब
मोबाइल- 9463352107
8360882627

डॉ. जसविंदर कौर बिन्द्रा
आर-142, प्रथम तल,
ग्रेटर कैलाश-1,
नई दिल्ली-110048
मोबाइल- 9868182835
ईमेल- jasvinderkaurbindra@gmail.com

इस जिंदू का क्या किया जाए, मैं उलझन में हूँ। मैडम मोनिका ने साफ मना कर दिया था। कहा, ''सर, मैं इस शैतान को 'समानता दिवस' पर लेकर बिल्कुल नहीं जाऊँगी। इसे जूते की भाषा ही समझ में आती है...। कल की बात सुनें ज़रा, क्लास में सबसे पीछे बैठा, अपना चप्पल उतार कर, ज़मीन पर पटक रहा था। मुझे कुर्सी पर बैठे हुए लगा, शायद चींटियाँ मार रहा है। मैंने घूरते हुए कहा, ''जिंदू बेटा, चींटियों को नहीं मारते....पाप लगता है।'' यह तो मनमौजी, अपनी मनमर्ज़ी करने वाला। अपने हाथ में पकड़ी चप्पल को और भी ज़ोर से ज़मीन पर पटकते हुए बोला, ''मैडम जी, यह तो कीड़ा है।'' सर, इसे पब्लिक स्कूल में मत ले जाओ, अपने स्कूल का नाम बदनाम करेगा।''

मैं मैडम को बताना चाहता था, ''कल हम बच्चे को नहा-धो कर, साफ-सुथरे कपड़े पहन कर आने के लिए कहा था। इसी कारण बच्चे बहुत कम आए हैं। वहाँ बच्चों की हाज़िरी भी देखी जाएगी।'' परन्तु मैडम से कुछ भी कहना, सिर धुनने समान है। वह बोलते समय आगा-पीछा नहीं देखती। उसे हमेशा से लगता है, जो उसने कह दिया, बस वही दिव्य आदेश है।

वैसे मैडम भी अपनी जगह पर ठीक थी। जिंदू शरारत करने में माहिर था। गुरु नानक पब्लिक स्कूल में 'बड़े घरों' के बच्चे पढ़ते हैं। हमें उस स्कूल में अपने छात्रों को लेकर जाना है। वहाँ पर हमारे पूरे सेंटर के मतलब दस प्राइमरी स्कूलों के अध्यापक और छात्र होंगे। यदि जिंदू ने कोई 'अनहोनी' कर दी तो सारा ठीकरा मेरे सिर पर फूटेगा। अब तो 'सोशल-मीडिया' द्वारा एक पल में ख़बर सारी दुनिया में फैल जाती है। सभी अध्यापक मुझे छोड़ेंगे नहीं, कहेंगे, ''वाह भई जसवीर सिंह, बच्चों को 'यही' सब सिखाते हो?'' स्कूल वापस आने पर मैडम के ताने-उलाहने मुझे वैसे ही छलनी कर देंगे।

मैंने और मैडम ने हर प्रकार से कोशिश की परन्तु चार सालों में जिंदू के भेजे में कुछ नहीं घुसा। शरारतें सारी जहान की आती है। मैडम कहेगी, ''सर, जितना मर्ज़ी ज़ोर लगा लो, हाशिया खाली ही रहता है।'' सरकार द्वारा बच्चों को फेल ना करने की योजना ने हमें फेल करके रख दिया है। इसी कारण अब जिंदू चौथी कक्षा में पहुँच गया है।

मैं जिंदू को 'आफत' कहता हूँ। मोनिका मैडम उसे 'सियासी' कहती है। उनका कहना है, ऐसे निकम्मे-शरारती बच्चे बड़े होकर नेता बनते हैं। देश पर शासन करते हैं। जिंदू की माँ, हर माँ की तरह उसकी वकालत करते हुए कहती है, ''नहीं जी, यह तो बहुत भोला है।'' परन्तु जब दुखी होती है तब तड़पते हुए, मैले से, टाकियाँ लगे दुपट्टे से आँखें पोंछते हुए कहती है, ''पढ़ाई के नाम पर इसे मौत आती है। मैं तो नर्क भोग रही हूँ ...तू तो कम से कम दुनिया देखने लायक हो जा।'' वह जिंदू को पीटते हुए स्कूल छोड़ जाती है। कभी-कभी मुझसे कहती है, ''मास्टर जी,

इसके कान खींच कर रखा करो।"

जब यह पहली कक्षा में आया, तब मैं पहली कक्षा को पढ़ाता था। एक दिन मैं बच्चों को 'घर के लिए काम' दे रहा था। बच्चे लाइन में अपनी-अपनी कापियाँ लिए खड़े थे। मैं उनकी कापियों पर पंजाबी वर्णमाला और 1-10 तक की गिनती लिख कर दे रहा था। जिस बच्चे की कापी अभी मेरे हाथों में थी, जिंदू उसके पीछा खड़ा सिर खुजला रहा था। दूसरे हाथ में पकड़ी कापी को मेरे आगे करते हुए बोलने लगा, "यह पकड़... अरे जल्दी पकड़... जल्दी।" मैंने उससे कापी ले ली, तब वह दोनों हाथों से सिर खुजलाने लगा। इस बात को याद कर, अभी भी मेरी हँसी छूट जाती है। बहुत भोला-भाला था। मैं इससे पूछता, "बड़े होकर क्या बनेगा?"

"जहाज़।" यह दोनों बाँहें फैला कर कहता।

आज सुबह से ही जिंदू अपनी धुन में मस्त है। इसकी मस्ती का कारण है, इसे मिला यह बैग। मैडम मोनिका ने पब्लिक स्कूल में पढ़ने वाले अपने बेटे लवप्रीत का पुराना बैग इसे लाकर दिया है। उसकी ज़िप ख़राब थी। वह उसे ठीक करवा कर लायी। क्योंकि जिंदू के झोले की हालत बहुत खस्ता थी। फिर कल सारा दिन मैडम बातों ही बातों में मुझसे कहती रही, "दान-पुण्य करना महान् काम है। लवप्रीत अपनी चीज़ों को एकदम सँभाल कर रखता है।"

जिंदू को स्कूल बैग क्या मिला, उसे नया खेल मिल गया। कभी उसकी जिप बंद करता, कभी खोलने लगता। आख़िर ज़िप ख़राब करके ही उसने साँस ली। मैडम को यह बात मालूम नहीं हुई। उसका पारा बढ़ जाता। अभी तो वह अपने किए गए 'पुण्य' के भाव से ही भरी हुई है। वरना अब तक वह डंडा उठा चुकी होती और शायद "बंदर क्या जाने अदरक का स्वाद।" जैसे मुहावरे बोलने लगती।

जिंदू ने आज ज़िप को बंद करने की सौंगंध खायी है। ज़िप आगे से लग जाती है, पीछे से खुल जाती। पीछे से लग जाती तो आगे से खुल जाती। जिप लग नहीं रही थी, वह लगाने से बाज़ नहीं आ रहा था।

जिंदू काम करने के मामले में सभी बच्चों से तेज़ है। कोई चीज़ मँगवा लो, कुर्सी, चॉक, पानी का गिलास, ऑफ़िस से रजिस्टर। बात अभी मेरे मुँह में ही होती थी। यह क्लास से तुरंत भाग कर ले आता। कई बार तो मँगवाते कुछ, यह ले कुछ आता था। इसे बहुत कहा जाता, अरे बात तो पूरी सुन कर जाया कर। कई बार मैं यूँ ही क्लास से परे जा खड़ा होता, यह वहीं पर कुर्सी उठा कर भागते हुए आ जाता। कहीं हमारे 'सर' खड़े हुए थक न जाए।

बच्चे इसकी शिकायतें लगाते हुए थक जाते, हम इसे सज़ा देते-देते उकता जाते, परन्तु यह अपनी शरारतों पर डटा रहता। कई बार दरवाज़े की ओट में खड़ा हो जाता, जब कोई बच्चा बाहर से आता, यह 'धाय' कह कर, उसे डरा देता। कोई बच्चा कहता, "सर जी, जिंदू हमारे उलटे नाम लेता है।" बच्चों को चिढ़ाने के लिए यह उनके बाप के नाम लेकर छेड़ने लगता। हमें बच्चों के माँ-बाप के नाम लिखने के लिए रजिस्टर उठाना पड़ता था, इसे सभी बच्चों के बापों के छोटे व उलटे नाम मुँह-ज़ुबानी याद हैं।

उलटे नाम रखने में जिंदू को महारत हासिल है। सचमुच किसी के लिए भी इतना योग्य नाम रखता, कई बार मैं इसकी अक्ल पर हैरान रह जाता हूँ। मेरा नाम पता नहीं क्या रखा होगा। मोनिका मैडम का नाम इसने 'बतख' रखा है। एक दिन सुबह से बारिश हो रही थी। मैडम प्रतिदिन नियत समय पर स्कूल आती है। वह चैकिंग से बहुत डरती है। उस दिन बारिश के कारण पाँच-सात मिनट लेट हो गई। मैडम ने अपनी एक्टिवा बरामदे में लाकर खड़ी की। उसने रेनकोट पहन रखा था। मैडम का नाक सचमुच बतख की चोंच समान तीखा है। पीठ भारी है। एक्टिवा खड़ा कर वह तेज़ी से ऑफ़िस की ओर हाज़िरी लगाने के बढ़ी, जैसे सचमुच बतख कुत्तों से डरते हुये तेज़-तेज़ पोखर की ओर भाग रही हो।

मैं मुश्किल से अपनी हँसी रोक पाया।

'समानता दिवस' एस. डी. एम. अहमद के दिमाग़ की खोज है। जब से वह तहसील में आया है, सरकारी स्कूलों की बेहतरी के लिए बहुत कुछ कर रहा है। यह 'समानता दिवस' उस बहुत-कुछ का ही हिस्सा है। वह मुसलमान है। अवश्य उसने जात-पात, धर्म-नस्ल, अमीर-ग़रीब के अंतर को स्वयं भोगा होगा, वह जानता है, इस देश में इनके आधार पर आदमी को आदमी नहीं समझा जाता। शायद इसलिए इन मासूम बच्चों के मन में समानता का बीज बोने के लिए उसने तहसील के सारे एलीमैंटरी स्कूलों को 'समानता दिवस' मनाने का आदेश दिया। उसने तहसील के सभी सरकारी और प्राइवेट स्कूलों की संयुक्त मीटिंग बुलाई। मीटिंग में डिप्टी डी. ए. ओ. मदान को भी बुलाया गया। एस. डी. एम. ने अपने मन की भावना को साझा किया कि, "सरकारी और प्राइवेट स्कूलों के बच्चों के बीच दूरी बहुत बढ़ रही है। यह बहुत ख़तरनाक रुझान है। इस दूरी को कम करने के लिए 23 मई को 'समानता दिवस' के रूप में मनाया जाएगा।"

'समानता दिवस' में क्या-क्या गतिविधियाँ करवायी जाएँगी, उनकी जानकारी दे दी गई।

मैडम मोनिका ने 'मिड-डे मील' बनाने वालों को सुबह-सवेरे ही बुला लिया था क्योंकि बच्चों को 'टिफन' साथ लेकर जाने थे।

हम ने कल ही बच्चों को स्कूल से समझा कर भेजा था कि कल नहा-धो कर, नाखून काट कर, साफ ड्रेस पहनकर, पैरों में सुंदर बूट पहन कर आना है। क्योंकि हम सभी 'पब्लिक स्कूल' जा रहे हैं। इसीलिए आज सारे बच्चे 'तैयार' होकर आए हैं। जिंदू अपने पैर छिपा रहा था। क्योंकि उसके पैरों में बहुत टूटी हुई चप्पल थी। वह नहीं जानता था कि मैडम ने उसे साथ न ले जाने के लिए कह दिया है।

अभी इस स्कूल में हम दो ही अध्यापक है। कुछ समय पहले तीन हुआ करते थे। रजत शर्मा यहाँ से दुम दबा कर भाग निकला। जब मैं नया-नया यहाँ आया, वह हर समय मेरे सामने मैडम की कुंडली खोल कर बैठ जाता। कहता, "...फिर कहते हैं सरकारी विभाग फेल है। इन मैडम को ही देख लो, इसका दादा पटवारी था। उसने जट्टों को ख़ूब लूटा। इसका बाप एफ. सी. आई. में इंस्पेक्टर था।

वह भी फसल की ख़रीद के समय जट्टों की अच्छी-भली फ़सल को नकार देता। कहता, "इस जातिवालों ने हमारे पुरखों का बहुत खून चूसा है।" फिर आढ़तिए के साथ मिलकर, मोटी रकम ऐंठता। ज़मीन, कारें कोठियाँ बहुत बेनामी जायदाद है जी इसके पास। फिर मैडम के ससुराल को देख लो। ससुर एम. एल. ए. है। करोड़ों के घपले किए है उसने। पति इसका सरकारी डॉक्टर है। यह अभी भी 'दलित' है। मैं तो सरकारी अस्पताल में दवा लेने भी नहीं जाता। उस 'रिज़र्व' से 66 प्रतिशत की कमी कैसे पूरी होगी? जैसा काम मैडम स्कूल में करती है, वैसा ही वह अस्पताल में करता होगा। हम दोनों ने एक ही दिन ज्वाइन किया था। इसे प्रमोशन मिल गई, भई यह बेचारी एस. सी. है। मेरे 92 प्रतिशत नंबर हैं और यह 40 प्रतिशत वाली मेरे सिर पर सवार है। फिर कहते हैं, सरकारी विभाग असफल है।"

शर्मा अकेले मेरे सामने ही नहीं, अन्य स्कूल अध्यापकों के सामने भी मैडम की कुंडली बाँचता रहता था। लोगों द्वारा बातें मैडम तक पहुँच गई। बनती इन दोनों में पहले भी नहीं थी, फिर तो मानों साँप-नेवला वाला हाल हो गया। नित्यप्रति स्कूल में क्लेश रहता। इन दोनों के बीच में मैं पिसता रहता। शर्मा मुझे मैडम का आदमी समझता। मैडम मुझे उसका नज़दीकी मानती।

मैडम, शर्मा को बहुत परेशान करती। कई बार स्कूल के गेट पर होने पर भी वह उसकी छुट्टी लगा देती। वह मैडम के सामने मुँह न खोलता। पीठ पीछे उसकी जड़ें खोदता। मैडम चाहती, वह उससे झगड़ा करे, ताकि वह उसे केस में उलझा सके। वैसे मैडम के जानने वाले मानते थे कि मैडम अच्छी अध्यापिका है। यह दो काम करने में माहिर है। पढ़ाना और 'डाक' बनाना। बच्चे इसके सामने पानी की तरह चलते क्योंकि यह कान सेंकने में देर नहीं लगाती। 'डाक' तैयार करते समय इसे देखना चाहिए। लगता है भगवान् ने इसे बनाया ही, केवल डाक तैयार करने के लिए है। पुरानी बूढ़ी औरतें जैसे बहुओं पर रौब बनाए रखने के लिए संदूक या पेटी खोलकर, उसमें मुँह देकर पता नहीं क्या ढूँढ़ती रहतीं। फिर ताला लगा कर कुंजी अपने नाड़े के साथ बाँध लेती थीं। उसी प्रकार डाक तैयार करते समय मैडम बार-बार रजिस्टर वाली अलमारी का ताला खोल कर, उसमें मुँह देकर, पता नहीं क्या तलाश करती रहती। उसमें पता नहीं बार-बार क्या रखती, क्या निकालती रहती। फिर ताला लगा कर चाबी अपने पर्स में डाल लेती। जैसे इसमें हीरे-जवाहरात रखे हों। स्कूल की मोहर भी हर समय अपने पर्स में रखती। मुझ पर उसे यक़ीन नहीं था, जैसे मोहर लगा कर मैं स्कूल अपने नाम करवा लूँगा।

मैं बच्चों के 'टिफन' 'मिड डे' बनाने वालों के साथ मिलकर तैयार करवा रहा हूँ। टिफन क्या है, उनके लिए बनाया मटर पुलाव अख़बार में डाल कर, उसे प्लास्टिक की थैली में पैक किया जा रहा है। मैं उनके पास खड़ा हूँ। मेरी यह ड्यूटी मैडम ने लगायी है।

मिड डे बनाने वाली इस बात पर नाराज़ है कि उन्हें इतनी सुबह बुला लिया गया है। परन्तु मैडम के सामने कुछ नहीं बोलती। उसके सामने एकदम ख़ामोश रहती है। मैडम मोनिका नहीं चाहती थी कि बच्चे अपने घरों से दोपहर का खाना लेकर आएँ क्योंकि हमें भाईचारा बढ़ाने के लिए पब्लिक स्कूल के छात्रों के साथ मिलकर ही खाना खाना है। उस पब्लिक स्कूल में मैडम का बेटा पढ़ता है। जिसके खाने का मैडम बहुत ध्यान रखती है।

गुरु नानक पब्लिक स्कूल की वैन बच्चों के ले जाने के लिए आने वाली थी। प्राइवेट स्कूल वाले ऐसी ख़िदमत कहाँ करते हैं। वे ख़ुद को उच्च कुल के ब्राह्मण समझते हैं और सरकारी स्कूलों को पिछड़ी जाति वाले। वे अमीर परिवार वालों को ऊँचे सपने दिखा कर ही, उनसे पैसा ऐंठते हैं। इन ग़रीब बच्चों से उन्हें क्या लेना-देना। परन्तु डंडे के आगे बंदरिया नाचती ही है। एस. डी. एम. अहमदपरे ने कहा था, "आप अपनी स्कूल वैन भेज कर बच्चों को यहाँ ले कर आएँ।" इसका अर्थ है, वैन तो आएगी ही।

किसी छात्र को भेज कर, मैडम ने मुझे ऑफ़िस में बुलाया। मेरे वहाँ जाने पर, मैडम ने कुर्सी पर बैठने का इशारा किया। उसके मुस्कराते हुए चेहरे पर कुछ भंगिमाएँ दिखायी दीं। जब भी वह ऐसा कुछ करती है, मेरी जान अटकने लगती है। अब कोई अन्य काम बताएगी या अपने पुत्र लवप्रीत की प्रशंसा करके बोर करेगी। बात मामूली होने पर भी, इसे लवप्रीत की हर बात अनूठी लगती है। "...सर, आज लवप्रीत ने मक्खन के साथ दो परौंठी खाकर दूध पिया। जब बच्चा घर से खाना खाकर जाता है न तो माँ के कलेजे में ठंडक पड़ती है।"

"सर लवप्रीत इंग्लिश की पोयम बहुत प्यारी बोलता है। एक्शन के साथ। सच तब कितना प्यार आता है उस पर।" और पता नहीं, क्या-क्या गुणगान करती रहती है। इतने चाव से सब कुछ बताती है, जैसे परौंठी ना खाकर, उसने लाल क़िले पर झंडा गाड़ दिया हो।

मेरा जी चाहता है, कहूँ, "मैडम जी! स्कूल के इन बच्चों के बारे में भी इतने चाव से बातें किया करो। इन्हें भी सिखाओ। समाज इन बच्चों और उन बच्चों के साथ मिलकर ही बनेगा।" परन्तु चुप ही भली। नहीं तो रजत शर्मा की तरह दुम दबा कर भागना पड़ेगा।

मैडम ने चश्मा उतार कर मेज़ पर रख दिया, फिर कहने लगी, "सर, यह समानता-दिवस के ढोंग को आप कैसे देखते हैं?" उसने अचानक ही गोला दाग दिया। मुझे उससे इतने गंभीर सवाल की उम्मीद नहीं थी। मैं सोच रहा था, लवप्रीत के बारे में ही कोई बात करेगी।

मैं सवाल सुन कर सोचने लगा, ऐसा क्या कहूँ, जो इसे अच्छा लगे। मन में कहा, "आप स्थायी अध्यापक हैं, हम ठेके पर रखे हुए हैं। आप हमें कीड़े-मकौड़े समझना छोड़ दो, समानता अपने आप हो जाएगी।"

"जी, प्राइवेट स्कूल के बच्चों के साथ घुल-मिलकर अपने स्कूल के बच्चों में भी पॉजेटिव फीलिंग्स आएगी।" मैंने कहा "मगर मैडम जी, वास्तविक समानता तब आएगी, जब आर्थिक तौर पर सभी समान हो जाएँगे। 65-70 घराने ही दुनिया की आधी से अधिक दौलत हड़प कर बैठे हैं।"

"सर, यदि सभी के पास पैसा आ गया फिर सरकारी स्कूलों में कौन पढ़ेगा।" फिर मुँह पर भाव लाते हुए कहने लगी, "इस समानता-दिवस के बारे में कुछ और डर है। आपने वह बात सुनी है....किसी आपके जैसे आदमी ने सुन लिया, पैसा-पैसे को खींचता है।"

जब मैडम ने 'आपके जैसा आदमी' कहा, मैं तुरंत समझ गया, अब यह उस आदमी को नीचा दिखाएगी। यदि किसी की प्रशंसा करनी हो तो कहेगी, मेरे जैसा।

"....उस बेचारे ने लाला की दुकान पर जाकर अपनी जेब से गिलट का रुपया निकाला। वह लाला के भरे गल्ले के पास रुपये को ले जाकर कहने लगा, "ले खींच ले...खींच ले न...।"

"हाँ जी, क्या खींचना है?" लाला ने पूछा।

वह व्यक्ति कहने लगा, "जी, मैंने सुना है, पैसा पैसे को खींचता है। आपका गल्ला रुपयों से भरा है, मैंने सोचा, थोड़े से खींच लूँ...।"

लाला ने कहा, "तुम रुपया ऊपर की ओर उछालो।"

उस व्यक्ति ने रुपया ऊपर की ओर उछाल दिया। रुपया लाला के गल्ले में जा गिरा। लाला खीं-खीं करके हँसने लगा। उसने अपने हिलते मोटे पेट के साथ कहा, "तुमने अधूरी बात सुनी है, पूरी मैं बताता हूँ। ज़्यादा पैसा थोड़े पैसे को अपनी ओर खींचता है।"

वह आदमी वो पैसा भी लुटा कर, ख़ाली हाथ घर की ओर चल दिया। सर, सरकारी स्कूलों में पहले ही बच्चे बहुत कम हैं। जिनके घर में दो वक्त की रोटी पकती है, वे अपने बच्चों को सरकारी स्कूल में पढ़ाना नहीं चाहते। आज हमें प्राइवेट स्कूल में बच्चों को लेकर जाना है। कहीं वहाँ की तड़क-भड़क देखकर ये बच्चे भी अपने माँ-बाप के नाक में दम न करने लगें कि इन्हें भी वहीं पढ़ना है। जो गिलट के रुपये हमारे पास हैं, वे भी प्राइवेट स्कूलों के गल्लों में न जा गिरें। अपनी नौकरी ख़तरे में पड़ जाएगी।"

मैंने यह बात सोची नहीं थी। मैंने कहना चाहा, "सभी बच्चों को एक जैसी और अच्छी शिक्षा मिलनी चाहिए। जो बच्चे हमारे पास पढ़ते हैं, वे गिलट नहीं, सोने के सिक्के हैं।"

अपनी बात ख़त्म कर मैडम कहने लगी, "सर, जो बात आपसे कहने के लिए बुलाया, वह है, जिंदू को भी साथ ले जाओ। बस इसका पूरा ध्यान रखना होगा। इसे खींच कर रखना।"

"मैडम जी, अभी तो आपने कहा था, इस 'आफत' को ...।" मैंने कहा।

"सर, कभी दिमाग़ से भी काम लिया करो।" वह सुबह के अपने वक्तव्य से नेताओं समान एकदम से मुकर गई। "बच्चे पहले ही कम आए हैं। उनकी हाज़िरी एस. डी. एम. ऑफ़िस में जाएगी। बाद में कारण बताओ नोटिस का जवाब तो मुझे ही देना पड़ेगा। बच्चों के साथ आप जा रहे है। मैंने 'ऑर्डर बुक' में लिख दिया है। यहाँ हस्ताक्षर कर दो। मेरे पास बहुत काम हैं करने के लिए। 'डाक' तैयार करनी है। मिड-डे मील का सारा हिसाब राशन, दूध, सब्ज़ियाँ, गेहूँ की पिसाई, गैस सिलैंडर इन सभी सामान की रसीदें लगानी हैं। एस. सी. बच्चों का 'वज़ीफा' आया हुआ है, वह डाक सबसे अधिक ज़रूरी है। आज ही ऑफ़िस पहुँचानी है। ...सर, प्लीज, आप बच्चों को पब्लिक स्कूल में छोड़ कर, दो काम और कर देना। एक तो चक्की से आटा पिसवा कर लाना है, दूसरा गैस सिलैंडर भी ख़त्म है।"

मैडम भाव-भंगिमाएँ बनाते हुए, काम पर काम बताये जा रही थी।

गुरु नानक पब्लिक स्कूल की वैन आ खड़ी हुई। सभी बच्चे बहुत चाव से बस में जा बैठे। मैं भी उनके साथ जा बैठा। रास्ते में ऊँची इमारतें देखकर कई बच्चे बहुत अंचभित हो रहे थे। जो घर से कम ही बाहर जाते थे। दीप ने बढ़िया कोठी की ओर इशारा करके कहा, "वह मेरी है।"

जिंदू ने सबसे बड़ी इमारत की ओर इशारा करके कहा, "मेरी वह है।"

दीप ने उसे घुड़का, "नहीं, वो मेरी है। पहले मैंने कहा था।" जिंदू कह रहा था, "गेलू वाले, पहले मैंने कहा है, इसलिए मेरी है।" दोनों ने एक-दूसरे के गिरेबान पकड़ लिए। मैंने दोनों को घूर कर देखा। उन्हें एक-दूसरे से छुड़ाया। मैं इन मासूमों को क्या बताता, ये ऊँची इमारतें तो उन पूँजीपतियों ने हमें लूट कर ही बनायी हैं। ये तुम लोगों की हो सकें, उसके लिए लड़ना पड़ेगा।

मुझे याद आया, जब जिंदू अभी दूसरी कक्षा में था। एक दिन घर से बहुत ख़ुश आया और मुझसे कहने लगा, "सर जी, हमने सरोई पायी है।" मुझे उसकी बात समझ में न आई। इसने क्या पहना है, कपड़े तो वही पुराने पहने हुए है। चप्पल भी घिसी हुई हैं। यह सरोई क्या है। "चल काम दिखा, जो घर से करके लाया है।" मैंने उसे घूर कर वापस भेज दिया।

छुट्टी के समय मैं जब मोटरसाइकिल पर इसके घर के आगे से निकला तो एक कमरे के घर के सामने पुरानी ईंटों और गारे से गुस्लखाने समान एक और कोठरी बनी देखी। मैं तुरंत समझ गया, जिंदू इसलिए इतना ख़ुश था कि उनके घर में रसोई बनी थी।

हम वैन से गुरु नानक पब्लिक स्कूल जा पहुँचे। बच्चे वैन में झूले खाने के कारण बहुत ख़ुश थे। जैसा कि एस. डी. एम. साहब का आदेश था। पब्लिक स्कूल के अध्यापक कुछ छात्रों के साथ हमारा अभिवादन करने के लिए खड़े थे। हमने अपने बच्चों को सिखाया था, प्राइवेट स्कूल के विद्यार्थी हमारे विद्यार्थियों से गले मिले। उन्होंने एक-दूसरे को फूल भेंट किए। मैंने ध्यान से देखा, पब्लिक स्कूल के स्टाफ में अधिकांश अध्यापिकाएँ थी। सभी फूलों समान खिली हुई, ख़ुशबू बिखेरती हुई। मैं सोचने लगा, अधिक तनख़्वाह लेने वाली सरकारी स्कूल की अधिकांश अध्यापिकों के चेहरों पर धूल उड़ती है, समानता कहाँ से आ जाएगी...? इनमें से ही किसी से शादी हो जाए। मुझ जैसे जट्ट के पास ज़मीन ना होने और अस्थायी नौकरी के कारण मेरा अभी तक विवाह नहीं हुआ था। एक मैडम जिसने मोटे शीशे का चश्मा लगा रखा था। उसके बाल कटे हुए थे पर उसने उन्हें पौनी में बाँध रखा था। वह कबूतरी समान गुटरगूँ-गुटरगूँ करती घूम रही थी। 'काश! यह भी मुझे फूल भेंट कर गले से....।' फिर मुझे अपनी सोच पर शर्म आई। एक अध्यापक को ऐसा नहीं सोचना चाहिए।

गुरु नानक पब्लिक स्कूल की प्रिंसीपल ने संक्षेप सा भाषण दिया, "प्यारे छात्रों, यह स्कूल जिस महान् हस्ती के नाम पर है, उन्होंने हमेशा हमें मनुष्यों की समानता के लिए जात-पात, अमीर-ग़रीब और असमानता के विरुद्ध, मनुष्य के अधिकारों के लिए लड़ना सिखाया। हम सभी मनुष्य एक समान हैं।"

मैं सोचने लगा, 'गुरु नानक के नाम पर कई पूँजीपति घरानों ने अपना काला धन सफ़ेद करने के उद्देश्य से स्कूल नहीं, दुकानें खोल रखी हैं, जहाँ वे विद्यार्थियों के माता-पिता का खून चूस रहे हैं। अध्यापकों का शोषण कर रहे हैं।

राष्ट्रीय गान के बाद तिरंगा फहराया गया। उसके पश्चात् छात्रों की सांस्कृतिक गतिविधियाँ थी। जिनमें खेल, चित्रकारी आदि द्वारा बच्चों को अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन करना था।

बाहर मौसम ख़राब था। बच्चों को ए. सी. कमरों में प्रोग्राम करने के लिए बिठाया गया। अलग-अलग कमरों में अलग-अलग स्कूलों के बच्चे बैठ गए। उनके साथ गुरु नानक स्कूल के कुछ छात्र अपनी अध्यापकों संग वहाँ शामिल हुए। मेरी अच्छी क़िस्मत के कारण, हमारे कमरे में वही मोटे शीशे के चश्मे वाली मैडम आ गई। उसने आते ही मेरी ओर मुस्करा कर इस प्रकार देखा, मानो कह रही हो, 'हम आपको समानता की नज़र से देखते हैं। सरकारी चैंप....।'

मैंने सिर झुका कर उसका अभिवादन किया। उसने अपना नाम अलका बताया और कहने लगी, "सर, पहले बच्चों से पोइमज़ सुन लेते हैं?" उसने आदेशात्मक ढंग से पूछा।

"जी हाँ, ज़रूर, ज़रूर...।" मैं पता नहीं किस ख़ुशी के मूड में था। उनके बच्चों ने बहुत सुंदर भाव-भंगिमा कर, अंग्रेज़ी की पोइमज़ सुना रहे थे।

"जी, इन्हें आपने पंजाबी की कविताएँ नहीं सिखायी।" मैंने पूछा।

"सर, यहाँ बच्चों को पंजाबी बोलने पर जुर्माना होता है।" उसने आँखें झपकाते हुए कहा।

जब मैं ने अपने स्कूल के छात्र को खड़ा किया, उसने ग़लत सा गीत छेड़ दिया, "होइया की जे नचदी दी बाँह फड़ लई, डाका तां नी मारिया।"

मैं मैडम के सामने शर्मिंदा हो गया।

"सर, आपने बच्चों को पंजाबी कविता नहीं सिखाई?" अब मैडम चहचहायी।

"जी बस, अन्य कामों से ही फुर्सत नहीं मिलती। प्राइवेट स्कूलों के बच्चे दो काम बढ़िया करते हैं, रटी-रटायी पोइमज़ सुनाने और रट्टा मार कर पेपर करने के।" मैंने हँसते हुए कहा।

मैडम भी हँस दी, "सर, हम मशीनें पैदा कर रहे हैं। इन बच्चों का बचपन ख़त्म कर रहे हैं।"

अब छात्र ड्राइंग्स बना रहे थे। हमारे बच्चों ने भी अच्छी ड्राइंग्स बनाई परन्तु किसी के पास भी उनमें भरने के लिए रंग नहीं थे। उन्हें देखकर मैडम ने कहा, "सर, यह बेरंग होकर भी ख़ूबसूरत हैं।" हालाँकि मुझे ऐसा महसूस हुआ, जैसे कह रही हो, 'आप सरकारी स्कूल वाले कुछ नहीं करवाते।' गुरु नानक पब्लिक स्कूल के छात्रों ने स्क्रिप्ट पेश की। मैडम बार-बार मेरी पीठ लगवा रही थी। मैं निराश होकर बैठ गया। जिंदू ने मेरी ओर देखा। अपनी आदत अनुसार वह खड़ा हो गया। मैंने सोचा, अब तो बेड़ा डूबा समझो...। यह तो रोकने पर भी रुकने वाला नहीं। इतनी सुंदर मैडम के सामने इसे डपट भी नहीं सकता।

जिंदू ने अपने साथ दो अन्य बच्चों को खड़ा कर लिया। उन्हें परे ले जाकर कुछ समझाया। फिर कहने लगा, "सर, मैं भी स्क्रिप्ट पेश करूँगा।"

मैंने उसे घूरते हुए रोकना चाहा परन्तु उसने आदत अनुसार मेरी ओर ध्यान ही न दिया।

स्क्रिप्ट पेश करते हुए जिंदू शराबी बन कहने लगा, "तुम तो कहती हो, मैं दस आदमियों जितना काम करती हूँ...तुम कुतिया हो, कहती हो, मैंने सब कुछ नशे में बहा दिया....तुम कहती हो मैंने तुम्हारी कमर तोड़ दी...। कुतिया कहीं की, अच्छी-भली तो है। मैं तुम्हारा खसम हूँ ...मेरे बराबर बोलती है...। चल, मुझे पेशाब करवा कर ला।" साथ खड़े बच्चे पत्नी और बेटा बन, उसे दोनों ओर से सँभालते हुए बाथरूम की ओर चल दिए। वह उनके कंधों पर झूलते हुए भी लड़खड़ा रहा है। कभी गिर जाता। वे फिर से उसे उठाते। पत्नी ने उसकी ओर ग़ुस्से से देखा, "कुतिया, मुझे घूरती है। मेरी बराबरी करती है...तू मेरे पैर की जूती है...जूती...।" सारे बच्चे हँस-हँस कर पागल हो रहे थे। मैं और अलका मैडम हैरान होकर देख रहे थे। जिंदू ने शराबी के रोल में जान डाल दी थी।

"वाह, सब कितना नैचुरल है।" अलका मैडम ने उसे बाँहों में लेकर, शबाशी दी। मेरी जान में जान आई।

मैंने उसे प्यार से थपथपाया और पूछा, "यह कहाँ से सीखा, बदमाश?" फिर सोचा, मैडम के सामने नहीं पूछना चाहिए था। यह तो सिखाने का श्रेय मुझे दे रही थी।

"सर जी, हमारा बापू हर रोज़ यही तो करता है।" जिंदू की बात सन कर मैं सुन्न हो गया।

अलका मैडम थोड़ी सी और खुल गई। उसने बताया, वह एम.एस.सी. और पीऍच. डी. है। स्कूल वाले सारा दिन ख़ून निचोड़ कर केवल पाँच हज़ार तनख्वाह देते हैं। हस्ताक्षर पूरी तनख़्वाह पर करवाते हैं।

"इतने में तो आपके सूट ही आते होंगे।" मैंने हँस कर कहा। मेरी बात सुनकर वह भी हँस दी, उदास सी।

मॉडल स्कूल में एडमिशन के समय प्रिंसीपल माता-पिता से कहती है, "आपको सारा सामान स्कूल से मिलेगा, जैसे बुक्स, यूनीफार्म, शूज़, बैल्ट आदि।"

बच्चे के पिता ने पूछा, "और एजुकेशन?"

प्रिंसीपल ने कहा, "उसके लिए बाहर ट्यूशन लगवा देना।" इतना कह कर मैं हँस दिया। इस चुटकले पर वह भी मुस्करा दी।

दोपहर के खाने के समय पर, सभी बच्चों ने एक साथ बैठ कर भोजन किया। कईयों ने टिफन बदल कर खाना खाया। मैडम मोनिका का बेटा लवप्रीत भी किसी बच्चे के साथ 'टिफन' बदल कर खाना खा रहा था। इसी कारण शायद मैडम ने मटर पुलाव बनवा कर भेजा था।

चलते समय मैं अलका मैडम से फ़ोन नंबर न ले पाया। जाते समय उसने मुस्करा कर विदा किया और मुझे लगा, समानता-दिवस काफी सार्थक रहा।

वैन ने हमें स्कूल में छोड़ दिया। छुट्टी का समय हो रहा था। मैं ऑफ़िस में हाज़िरी लगाने के लिए गया, देखा, मैडम मोनिका एस. सी. बच्चों के स्कॉलरशिप की लिस्ट को अंतिम रूप दे रही थी। मुझे डर था, कहेगी, तुम आटा पिसवा कर नहीं लाये। गैस सिलैंडर की बात करेगी।

मैडम ने सिर उठा कर, भंगिमा बनाते हुए, मेरी ओर देखा और चश्मा उतार कर मेज़ पर रखते हुए पूछने लगी, "फिर कैसा रहा सर?" फिर मेरी बात सुनने से पहले ही बताने लगी, "सर, लवप्रीत का फ़ोन आया था, कह रहा था, 'मम्मी, आपने कृष्ण-सुदामा वाली कहानी सुनाई थी न, जिसमें कृष्ण ने ग़रीब सुदामा से लेकर उसके सत्तू खाए थे। ....आज मैंने सत्तू खाए थे। ...सर, मेरी हँसी नहीं रुक रही थी। सर, ये भोले-भाले बच्चे कई बार कितनी समझदारी भरी बातें कर देते हैं। सर, मुझे बुरा नहीं लगा, क्योंकि मटर पुलाव हमने स्कूल से बना कर भेजे थे।" मुझे मैडम की बात समझ में आए या न आए, पर उसे ध्यान से सुनने का नाटक अवश्य करना पड़ता है। साथ ही हामी भरते हुए 'हाँ जी.., जी हाँ' भी कहना पड़ता है।

मैं 'हाँ जी' कह कर चुप हो गया।

वह फिर से लिस्ट बनाने लगी। छुट्टी होने ही वाली थी। मैडम ने कहा, "सर, मैंने सारी डाक तैयार कर ली, बस दो मिनट और लगेंगे। आप इसे लेकर जाना। आज ही बड़े ऑफ़िस पहुँचाना ज़रूरी है।"

मैं मैडम के सामने पड़ी ख़ाली कुर्सी पर बैठ गया। वैसे उसे बदर्शत नहीं होता कि वह काम करे और कोई दूसरा उसके सामने ख़ाली बैठे। मैं हाज़िरी रजिस्टर उठा कर बच्चों की हाज़िरी लगाने लगा। फिर अपनी हाज़िरी भी लगा दी।

मैडम बहुत तेज़ी से स्कॉलरशिप की लिस्टें तैयार कर रही है। स्कॉलरशिप कैसा, बस, ऊँट के मुँह में जीरा समझो। स्कॉलरशिप दो तरह का आता है, एक जाति के आधार पर, दूसरा धर्म के आधार पर। जाति के आधार पर एस. सी. बच्चों को मिलता है, धर्म के आधार पर अल्पसंख्यक धर्मों को मिलता है। इस बार एस. सी. बच्चों का स्कॉलरशिप आया है।

जिंदू कहीं से ऑफ़िस में आ घुसा, जैसे अचानक कोई बात याद आ गई हो। आकर मैडम से पूछने लगा, "मैडम जी, मेरी मम्मी ने पूछा है, मेरा वज़ीफा आया है?" आज वह शायद हीरो बन कर आया था, इसलिए पूछने की हिम्मत कर बैठा।

मैडम जल्दी-जल्दी कागज़ों पर कुछ लिख रही थी। उसने जिंदू की ओर देखे बिना ही पूछा, "क्या हो तुम?"

जिंदू ने मैडम के मुँह की ओर देखा, जैसे मैडम की बात समझ में न आई हो। मुझे जिंदू का शरारती चेहरा मासूम लगा।

"जी, मैं जिंदू हूँ मैडम जी।" उसने भोलेपन से कहा।

मैडम ने 'कौन हो तुम' नहीं पूछा था, पूछा था, 'तुम क्या हो।'

"चल भाग यहाँ से, कि जूता मारूँ?" मैडम ने कड़क कर कहा। फिर डाक तैयार करने लगी। जिंदू ने ख़ाली नज़रों से मेरी ओर देखा और बाहर की ओर चल दिया।

मैं उठ कर क्लास में आ गया। बच्चे खेल रहे थे। जिंदू उदास बैठा, अपने बैग की ज़िप लगाने की कोशिश कर रहा था, जो कभी आगे से खुल जाती थी, कभी पीछे से। मैंने उसकी पीठ सहलाते हुए कहा, "वज़ीफा भी मिल जाएगा बेटा। अच्छा यह बता, बड़ा होकर क्या बनेगा?" जिंदू ने कुछ न कहा। वह नज़रें झुका कर, अपने बैग की ख़राब ज़िप की ओर देखता रहा। मुझे लगा, वह मैडम का सवाल समझ गया था।

"फिल्मों में हीरो बनेगा हमारा राजा।" मैंने उसे थपथपाते हुए कहा, "हम स्कूल में नाटक तैयार करेंगे।" जिंदू की आँखों में चमक नज़र आई।

मैंने सोच कर, ख़ुद को दिलासा दिया, 'हाशिया हमेशा मौजूद होता है, हम ही ज़रूरत के समय उसकी ओर देखते हैं।'

000

लघुकथा

रिचार्ज

सुरेश सौरभ

चटाक ऽऽऽऽ.... वह गाल पकड़ कर सहम गया।

"उत्ती देर से देख रही हूँ, गालियाँ बक रहा है। बकवास कर रहा है।

गाल सहलाते हुए वह बोला-" मम्मी मैं तो खेल रहा था।"

"यह भी कोई खेल है कि खेल-खेल में माँ-बहन की गाली बकना।"

वह क्षुब्ध, ख़ामोश था।

"कहाँ से सीखता है ये सब, बता-बता...।"

"एक नेता जी कह रहे थे, एंकर उसे दोहरा रहे थे।"

"हाँ अब बस यही सब देख गाली-गलौच वाले कार्यक्रम, पहले नेता बके फिर एंकर बके, फिर तुम सब बको, इसी बकवासबाज़ी के लिए एलसीडी डिश का रिचार्ज कराती हूँ। आने दे तेरे पापा को शाम को...।"

"पापा के साथ ही तो देख रहा था, उस दिन।" ग़ुस्से से लाल-लाल आँखों से वह बोला।

मम्मी, नि:शब्द, क्षुब्ध, और हतप्रभ।

000

सुरेश सौरभ
निर्मल नगर लखीमपुर खीरी
उत्तर प्रदेश पिन-262701
मोबाइल- 7860600355

भाषांतर

सिसकती ज़िंदगी

प्रवासी पंजाबी कहानी

मूल लेखक : रविंदर सिंह सोढी

अनुवाद : प्रो. नव संगीत सिंह

रविन्द्र सिंह सोढी,
रिचमंड (कनाडा)
मोबाइल- 001 604 369 2371

प्रो. नव संगीत सिंह,
अकाल यूनिवर्सिटी
तलवंडी साबो- 151302
बठिंडा, पंजाब
ईमेल- navsangeetsingh1957@gmail.com

"हैलो...तमन्ना कहाँ है?" मैंने पूछा।

"वह तो रात दस बजते ही गैस स्टेशन पर चली गई है। जल्दी में अपना मोबाइल भी भूल गई।"

"क्या! गैस स्टेशन? कल शाम को तो वह छह बजे काम से घर आई थी। और दस बजे फिर चली गई?" मैंने आश्चर्य से कहा।

"हाँ, काम से आते ही उसने मुझे बताया था कि गैस स्टेशन वालों का फ़ोन आया था, नाइट शिफ्ट करने के लिए।"

"किस गैस स्टेशन पर?

"स्कॉट रोड वाला।"

"ठीक है, मैं वहीं जा रहा हूँ। मैं बेसमेंट के बाहर से तुम्हें फ़ोन करूँगा, तुम उसका मोबाइल दे जाना।" इतना कह कर मैंने फ़ोन रख दिया।

मैंने घड़ी देखी। सात बज रहे थे। मैंने अनुमान लगाया कि उसकी शिफ्ट आठ बजे तक होगी। मुझे आश्चर्य हुआ कि वह इतना काम कैसे कर सकती है? पिछले हफ्ते भी उसकी तीन-तीन दिन की दो-दो शिफ्टें थीं। रविवार को भी उसने छुट्टी नहीं की। वह पहले भी अक्सर ऐसा ही करती थी। न तो उसे अपने खाने-पीने का ध्यान है और न ही अपनी सेहत का। मैंने कई बार उसे समझाने की कोशिश की है कि इतना काम नहीं करना चाहिए, लेकिन वह हँसकर टाल देती थी। एक-दो बार मैं उसके साथ बेसमेंट में रहने वाली लड़कियों के सामने उस पर ग़ुस्सा भी हुआ। उसके साथ रहने वाली लड़कियों ने भी बताया कि यह किसी की नहीं सुनती। कभी-कभी तो वह भूखी ही काम पर चली जाती है। उसके चेहरे से भी ऐसा लग रहा था जैसे वह अंदर ही अंदर किसी बात को लेकर परेशान हो। मेरे बार-बार पूछने पर भी उसने अपना हृदय नहीं खोला। उसकी सहेलियों और मेरे करीबी दोस्तों को हमारी आपसी घनिष्ठता के बारे में पता था। मैंने तमन्ना से कई बार कहा था कि एक-दूसरे के करीब होने, एक-दूसरे को चाहने का मतलब यह नहीं होता कि कुछ समय इकट्ठे बिता लिया, चलते-फिरते एक-दूसरे का हाथ पकड़ लिया, या फिर एक-दूसरे को गले लगा लिया...। ऐसी घनिष्ठता लंबे समय तक नहीं टिकती, जब तक प्रेमी अपने सुख-दुख साझा न करें। तमन्ना ये बातें सुनकर ख़ूब हँसती थी या फिर ज़्यादा से ज़्यादा मेरे हाथों को अपने हाथों में भींच कर अपने होंठों पर रख लेती और कहती, "प्रवीण, तुम सिर्फ नाम से ही प्रवीण नहीं हो, बल्कि हक़ीक़त में भी प्रवीण हो। तुम्हारी बातें दार्शनिकों जैसी होती हैं। कई बार तो मुझे लगता है कि मैं किसी ऐसे इंसान के साथ पूरी ज़िंदगी कैसे बिताऊँगी जो इतनी बड़ी-बड़ी बातें करता है।" यह कहते हुए वह अपना सिर मेरे कंधों पर रख देती थी।

मैंने अपना लैपटॉप बंद किया और वॉशरूम चला गया। मेरा ज़्यादातर काम घर से ही होता था। कोविड फैलने से कंप्यूटर-कर्मियों को फ़ायदा यह हुआ कि महामारी ख़त्म होने के बाद भी

उन्हें घर से काम करने की आज़ादी मिल गई। दस-पंद्रह दिन बाद ज़रूरत पड़ने पर ऑफ़िस जाना होता।

बीस मिनट में तैयार होकर मैंने तमन्ना की सहेली ख़ुशी को फ़ोन किया कि मैं आ रहा हूँ। ख़ुशी कहने लगी कि तुम दस मिनट पहले आ जाओ तो अच्छा है, मैं तुमसे तमन्ना के बारे में बात करना चाहती हूँ। मैं उसकी ये बात सुनकर हैरान रह गया। मुझे घबराहट हो रही थी कि ख़ुशी मुझे तमन्ना के बारे में कुछ उल्टी-सीधी बात न बता दे, लेकिन मैं ख़ुशी से तमन्ना का मोबाइल फ़ोन लेने वाला था, इसलिए मुझे उसकी बात तो सुननी ही पड़ेगी। दस मिनट बाद मैंने धड़कते दिल से ख़ुशी के बेसमेंट की घंटी बजाई। वह मेरा ही इंतज़ार कर रही थी।

अन्दर जाकर मैं लिविंग रूम में पड़ी तीन कुर्सियों में से एक पर बैठ गया और कहा कि मैं चाय पी कर आया हूँ, इसलिए किसी औपचारिकता में न पड़ें। ख़ुशी भी मेरे पास वाली कुर्सी पर बैठ गई। दरअसल, ये लिविंग रूम किचन का ही एक हिस्सा था। वहाँ दो और छोटे कमरे थे जिनमें तमन्ना, ख़ुशी और दो अन्य लड़कियाँ रहती थीं। केवल तमन्ना वर्क परमिट पर थी, बाकी तीन लड़कियाँ अभी पढ़ रही थीं। मैंने तमन्ना से कई बार कहा था कि अब उसे बड़े बेसमेंट में रहने वाली लड़कियों के पास शिफ्ट हो जाना चाहिए, लेकिन उसने कहा कि ये तीनों लड़कियाँ अच्छी हैं, इसलिए वह अभी उन्हीं के साथ रहना चाहती है। एक साल बाद पढ़ाई पूरी करने के पश्चात् जब उनका वर्क परमिट भी आ गया तो वह एक बड़ा बेसमेंट देख लेंगी। दूसरे, उसका काम भी यहीं पास में है, उसे केवल पंद्रह मिनट पैदल चलना पड़ता है, इसलिए वह बिना कार के काम चला रही है।

ख़ुशी ने बताया कि तमन्ना हमेशा ख़ामोश और उदास सी रहती है। वह उनसे खुलकर बात भी नहीं करती। कई बार तो वह रात में डर के मारे उठ जाती है और फिर काफी देर तक जागती रहती है। पता नहीं वह हर वक्त क्या सोचती रहती है?

"क्या उसके घर से कभी फ़ोन आता है?" मैंने ख़ुशी से पूछा।

"हाँ, फ़ोन तो लगभग रोज़ ही आता है, लेकिन कई बार वह घर वालों से हाँ-हूँ कहकर बात ख़त्म कर देती है।"

ख़ुशी की इस बात ने मेरी बेचैनी बढ़ा दी। मैंने उससे कहा कि वह तमन्ना का टूथब्रश, तौलिया और एक सूट एक बैग में रख दे, मैं उसे गैस स्टेशन से घर ले जाऊँगा। मैं उससे दिल की बात पूछने की कोशिश करता हूँ।

ख़ुशी ने उसका ज़रूरी सामान बैग में रख दिया, उसका मोबाइल मैंने जेब में रख लिया। जाते समय मैंने ख़ुशी से कहा, "ख़ुशी, वह भी तुम्हारे बहुत क़रीब है। तुम भी उसकी ख़ामोशी का राज़ जानने की कोशिश करना। कभी-कभी मुझे डर लगता है जैसे वह अपने दिल पर बहुत बड़ा बोझ लेकर चल रही हो। अगर वह अपने दिल की बात किसी से साझा करेगी तो ही कुछ किया जा सकता है।" यह कह कर मैं बाहर आ गया।

पाँच मिनट में मैं गैस स्टेशन पहुँच गया। कार को पार्किंग में पार्क करने के बाद, मैं गैस स्टेशन के अंदर चला गया। तमन्ना मुझे देखकर ख़ुश तो हुई, लेकिन नींद न आने के कारण वह अपने चेहरे की थकान छुपा नहीं सकी।

"तुम यहाँ कैसे?" उसने काउंटर के पीछे से पूछा।

मैंने उसे कोई जवाब नहीं दिया। उसका मोबाइल फ़ोन उसकी ओर बढ़ाया।

"तुम्हें यह कहाँ से मिला?" मेरा जवाब सुनने से पहले ही वह बोली, "क्या तुम बेसमेंट गए थे?"

"हाँ", मैंने बस इतना ही कहा।

"क्या बात है, ख़ामोश क्यों हो, ठीक तो हो न?" उसने कुछ चिंता के साथ पूछा।

"मैं बाहर कार में तुम्हारा इंतज़ार कर रहा हूँ।" यह कह कर मैं बाहर चला आया।

तमन्ना ने मुझे एक-दो बार आवाज़ भी दी, लेकिन मैं नहीं रुका। तभी दो ग्राहक आ गए। तमन्ना उनसे बातचीत करने लगी।

मैं जानता था कि अभी उसे पन्द्रह-बीस मिनट और लगेंगे। हालाँकि उसने मुझसे मुस्कराकर बात करने की कोशिश की थी, लेकिन उसकी थकान उसके चेहरे पर साफ़ दिखाई दे रही थी। मुझे यह भी यक़ीन था कि काम में व्यस्त होने के कारण उसे खाने का समय ही नहीं मिला होगा, इसलिए मैंने पास के एक इंडियन रेस्तराँ में फ़ोन करके तमन्ना की पसंदीदा पनीर पराँठे का ऑर्डर कर दिया।

पन्द्रह मिनट बाद ही तमन्ना आ गई। कार में बैठते ही उसने पूछा, "प्लीज़, मुझे मत बताओ कि ख़ामोश क्यों हो?"

मैं उसे यह एहसास दिलाना चाहता था कि मुझे उसका दो-दो शिफ्टों में काम करना बिल्कुल भी पसंद नहीं है, इसलिए मैंने जानबूझकर व्यंग्य किया, "इसके बाद तुम्हें किसी तीसरी जगह काम करने तो नहीं जाना?" उसे मेरी आवाज़ के लहजे से ही मेरी नाराज़गी का अंदाज़ा हो गया था। उसने मेरा हाथ पकड़ कर कहा, "प्लीज प्रवीण, ऐसी बातें मत करो। मैं तो तुम्हें देखकर ख़ुश हुई थी कि तुमसे बात करके मेरी सारी थकान दूर हो जाएगी, लेकिन तुम तो मेरी थकान को और भी बढ़ा रहे हो।"

"अगर सरकार मेरा हाथ छोड़ दे तो मैं गाड़ी का गियर बदल सकूँगा।" मेरी नाराज़गी अभी तक ख़त्म नहीं हुई थी।

उसने मेरे हाथ को और कसकर पकड़ लिया और बोली, "जाओ, मैं तुम्हारा हाथ नहीं छोड़ती।" इतना कहकर वह ज़ोर से हँस पड़ी।

अचानक उसकी नज़र पिछली सीट पर रखे बैग पर गई।"मेरा बैग? तुम्हारी गाड़ी में कैसे आया?"

"उड़कर।"

"प्रवीण, गाड़ी रोको। मैं तुम्हारे साथ कहीं नहीं जाऊँगी। मैं स्वयं चलकर बेसमेंट तक चली जाऊँगी।" वह मेरी आवाज़ के लहजे से नाराज़ थी।

"पहले कुछ खा-पी कर पेट भर लो। रात के भूखे पेट में चूहे नाच रहे होंगे। क्या तुमने कभी दर्पण में अपना चेहरा देखा है?"

"क्यों, मेरे चेहरे को क्या हुआ? यह तो अच्छा-भला है," उसने मुँह फुलाते हुए कहा।

"तुम्हारे गाल कितने अंदर को धसे हुए हैं, भले ही कोई तुम्हारी सारी हड्डियाँ गिन ले। रंग तवे जैसा काला हो रहा है। कभी आईने के

सामने खड़े होकर अपने को अच्छी तरह से देखना।" मेरा ग़ुस्सा अभी भी बरकरार था।

तमन्ना जान गई थी कि मैं उससे किस बात पर नाराज़ हूँ। उसने चुप रहना ही बेहतर समझा। वह कार से बाहर देखने लगी। उसने अपने पर्स से पानी की बोतल निकाल कर पानी पिया।

थोड़ी देर बाद कार इंडियन रेस्तराँ की पार्किंग में पहुँच गई। मैं बिना कुछ कहे अन्दर चला गया। पाँच मिनट बाद खाने का लिफाफा लेकर आया और उसे दे दिया। पराँठे की ख़ुशबू से उसका चेहरा खिल उठा। जैसे ही मैं कार में बैठा, उसने मेरा हाथ पकड़ कर चूम लिया और अपनी सीट से थोड़ा उठकर मुझसे लिपट गई। बिना कुछ कहे उसने एक हाथ से अपना एक कान खींच लिया। उसका यह प्यार देखकर मैं भी कुछ देर के लिए अपना ग़ुस्सा भूल गया।

रास्ते में हमारी कोई ख़ास बातचीत नहीं हुई। मैंने कार को अपने अपार्टमेंट की पार्किंग में पार्क किया। तमन्ना के पास अपना बैग और नाश्ते का लिफाफा था। मैंने कार की पिछली सीट से उसका कपड़ों वाला बैग उठाया और हम दोनों सीढ़ियों से ऊपर दूसरी मंज़िल पर चले गए। अपार्टमेंट का ताला खोलने के बाद हम अंदर चले गए। लिविंग-कम-ऑफ़िस में रखे सोफे पर उसने हाथ वाला बैग रखा और वहीं बैठ गई। मैंने उसके हाथ से पराँठे वाला लिफाफा लिया और दो कुर्सियों वाले डायनिंग टेबल पर रख दिया। वह सोफ़े पर ही लेट गई। मैंने उसकी हालत का अंदाज़ा लगाया कि वह बहुत थकी हुई है।

मैंने रसोई से प्लेटें और कटोरियाँ उठाईं, पराँठे और दही डाल दिये। तमन्ना की आँख लग गई थी। पहले मैंने सोचा कि उसे आराम करने दूँ, लेकिन फिर यह सोचकर कि पराँठे ठंडे हो जाएँगे, मुझे उसे उठाना ही पड़ा।

तमन्ना वॉशरूम गई और अपना हाथ-मुँह धोकर आई। जैसे ही उसने पहला निवाला मुँह में डाला, उसने मेरी तरफ अँगूठा उठाकर बढ़िया पराँठे लाने के लिए धन्यवाद दिया। नाश्ते के बाद मैंने उसे कपड़ों वाला बैग देकर दूसरे कमरे में जाने का इशारा किया और फ्रिज़ से टाइनेल की दो गोलियाँ उसके हाथ पर रख दीं। वह मेरा इशारा समझ गई कि मैं उसे गोलियाँ खाकर सोने को कह रहा हूँ। वह बिना कुछ कहे दूसरे कमरे में चली गई और अंदर से दरवाज़ा बंद कर लिया।

मुझे कुछ काम करना था। मैंने अपना लैपटॉप खोला और काम करने लगा। कब दोपहर का एक बज गया, पता ही नहीं चला। मैंने दूसरे कमरे का दरवाज़ा हल्का सा खोला और देखा कि तमन्ना बेफ़िक्र होकर सो रही थी। दरअसल, वह रात की ड्यूटी के कारण अनिद्रा में थी और थकी हुई भी। मैंने सोफ़े पर बैठकर मोबाइल ऑन कर लिया। करीब दो बजे तमन्ना की आँख खुली। वह मेरे पास आकर सोफे पर ही बैठ गई। मैंने उससे पूछा कि लंच के लिए क्या ऑर्डर करूँ।

"बाहर से ऑर्डर करने की क्या ज़रूरत है, घर में ही कुछ बना लेते हैं।" यह कह कर वह किचन में जाने लगी।

मैंने उसे बाँह से पकड़ कर सोफ़े पर बिठाया और पूछा, "पिज़्ज़ा चलेगा?"

उसने सिर हिलाकर सहमति व्यक्त की। मैंने पिज़्ज़ा ऑर्डर किया।

"मैं फ्रेश होकर आती हूँ।" उसने सोफ़े से उठते हुए कहा।

मैंने उसे फिर से सोफ़े पर बैठने का इशारा किया और कहा, "तमन्ना, अगर तुम बुरा न मानों तो क्या मैं तुमसे खुल कर बात कर सकता हूँ?"

उसने आश्चर्य से मेरी ओर देखा और कहा, "इसमें बुरा मनाने की क्या बात है? क्या तुम्हें मुझ पर विश्वास नहीं है?"

"नहीं तमन्ना, विश्वास करने या न करने की बात नहीं। कई बार मुझे ऐसा लगता है कि तुम मुझसे कुछ छुपा रही हो या मुझे बताना नहीं चाहती।"

"आज तुम यह कैसी बातें कर रहे हो, प्रवीण?"

"तमन्ना, सच-सच बताना, क्या तुम मुझसे कुछ छिपा तो नहीं रही हो? देखो, अभी ज़्यादा समय नहीं हुआ है, हम दोनों को एक-दूसरे के क़रीब आए हुए। एक-दूसरे को पूरी तरह से समझने में अभी थोड़ा समय और लगेगा। यदि तुम्हारे मन में कुछ और है, तो बेहतर होगा कि हम अभी अलग हो जाएँ...।"

मैंने अभी अपनी बात पूरी भी नहीं की थी कि तमन्ना ने मेरे मुँह पर हाथ रखकर मुझे चुप करा दिया। मैंने देखा, उसकी आँखों में नमी तैरने लगी थी।

वह भर्राई हुई आवाज़ में कहने लगी, "मैं कोई भी अग्निपरीक्षा देकर अपने आप को सच्चा साबित नहीं कर सकती, लेकिन अगर तुम मुझ पर विश्वास करो तो समझ लो कि तुम्हारे बिना अब तक मेरी ज़िंदगी में कोई नहीं आया।" यह कहकर वह रोने लगी।

मैंने उसे चुप कराते हुए कहा, "झल्लिये, तुम तो बात को दूसरी दिशा में ही ले गई। मेरा कहने का मतलब तो यही था कि अगर तुम किसी भी समस्या के लिए मुझसे मदद नहीं लेती या मैं अपनी कोई बात तुम से छिपाकर रखूँ, तो हमारा एक-दूसरे के क़रीब रहने का क्या फायदा। हम अपनी व्यक्तिगत या पारिवारिक समस्याओं को किसी ऐसे व्यक्ति के साथ ही साझा कर सकते हैं, जिस पर हमें भरोसा हो।"

यह सुनने के बाद भी तमन्ना रोती ही रही और कुछ नहीं बोली।

"तुम इस बात से इनकार नहीं कर सकती कि तुम किसी मुश्किल में हो। दो-दो शिफ्टों में काम करने का मतलब है कि या तो तुम्हें पैसे कमाने का लालच है या फिर तुझे इसकी ज़रूरत है। दूसरा, तुम अपनी समस्या से बचने के लिए व्यस्त रहना चाहती हो। दोनों में से कोई भी बात हो, लेकिन तेरे लिए सही नहीं है। अगर तुम्हें पैसे का लालच है तो एक बात समझ लेना कि यह लालच जीवन-भर तेरा पीछा नहीं छोड़ेगा। अगर तुम्हें पैसे की ज़रूरत है या कोई अन्य समस्या है तो जब तक तुम इसे किसी अपने से साझा नहीं करोगी तो अकेली इसका सामना कैसे करोगी। तुम्हारे चेहरे से साफ पता चलता है कि तुम हमेशा अस्त-व्यस्त रहती हो। न तो तुम्हें खाने की चिंता है और न ही पहनने की। ये भी कोई ज़िंदगी है?" यह कहते हुए मैंने तमन्ना को अपने गले से लगा लिया।

उसका रोना और भी मुखर हो गया। मैंने

उसे चुप कराने का कोई प्रयास नहीं किया। मैं जानता था कि रोने के बाद अगर इंसान के अंदर का ग़ुबार नमकीन पानी के जरिए बाहर आ जाए तो वह हल्का हो जाता है। मैं भी जब नया-नया कनाडा आया था, तो मैं बुनियादी समस्याओं से उलझा हुआ था और अकेले रोता रहता था, क्योंकि मुझे अपने परिवार की बहुत याद आती थी। रोने के बाद मन शांत हो जाता था।

मैंने तमन्ना की पीठ थपथपाई। वह पाँच-सात मिनट तक मेरे कंधे पर सिर रख कर रोती रही। फिर उसने ख़ुद ही मेरे कंधे से सिर उठाया और बिना कुछ कहे वॉशरूम चली गई। जब वह दस मिनट तक बाहर नहीं आई तो मैं समझ गया कि वह नहाकर फ्रेश होने गई है।

बीस मिनट बाद वह वॉशरूम से बाहर निकली। बदले हुए कपड़े, बाल सँवारे हुए और चेहरे पर मुस्कान। वह किचन में जाकर चाय बनाने लगी। दो कप चाय बनाकर ले आई। एक कप मुझे दिया और अपना कप कुर्सी के बगल वाली छोटी मेज़ पर रखा और वहीं बैठ गई। चाय का पहला घूँट पीते ही मैंने बातचीत के लहजे में कहा, "आज तुमने मूड में बहुत अच्छी चाय बनाई है। चाय से भी तेरी ही तरह ख़ुशबू की लपटें आ रही हैं। मेरी बात सुनकर वह हल्के से मुस्कराई, लेकिन कुछ बोली नहीं। वह चाय पीते हुए कुछ सोच भी रही थी। मैं उसके चेहरे की ओर देखता रहा।

चाय पीने के बाद तमन्ना ने अपना कप टेबल पर रखा और मेरी तरफ़ देखा। मुझे लगा जैसे वह कुछ कहना चाहती थी, लेकिन वह नहीं जानती थी कि कहाँ से शुरू करे। उसने एक-दो बार अपने होंठ खोले, लेकिन कहा कुछ नहीं। मैं एकटक उसे देखता रहा। कभी वह मेरी तरफ़ देखती तो कभी इधर-उधर देखने लगती।

आख़िरकार उसने चुप्पी तोड़ते हुए कहा, "प्रवीण, मैंने कभी तुमसे अपने परिवार के बारे में ज़्यादा बात नहीं की। मैंने तुम्हें सिर्फ़ इतना बताया है कि मेरे माता-पिता दोनों सरकारी नौकरी में हैं। मेरा एक छोटा भाई बी.कॉम. के तीसरे साल में है।" इतना कहकर वह चुप हो गई। मैं बस उसकी ओर देखता रहा।

"दरअसल, मुझे कनाडा भेजने के लिए मेरे पेरेंट्स ने अपने भविष्य निधि से पैसे निकाले, लेकिन उससे भी ख़र्च पूरा नहीं हुआ। मेरी मम्मी ने अपने बड़े भाई से पाँच लाख रुपये उधार लिये थे। यहाँ आने के बाद मुझे जल्दी काम नहीं मिला, इसके चलते मेरी फीस के लिए उन्हें दो लाख रुपये और उधार लेने पड़े। अब मामी पैसे वापस पाने के लिए मेरे मामा जी से लड़ती है। मुझे वे पैसे चुकाने की चिंता सताती रहती है। दूसरे, मेरा छोटा भाई विक्की भी पेरेंट्स को परेशान करता है कि उसे भी बी. काम. के बाद कनाडा जाना है। मम्मी-पापा उसके लिए इतने पैसे कहाँ से लाएँगे? मैं मामा जी को तीन लाख पहले ही भेज चुकी हूँ, लेकिन मामी कह रही हैं कि बाकी रकम भी जल्द से जल्द लौटा दो। मैंने उन्हें देने के लिए एक लाख रुपये और जोड़े हैं, लेकिन पूरी रकम नहीं जुटा पा रही हूँ। जब भी मम्मी का फ़ोन आता है तो वे मामी की बातें लेकर बैठ जाते हैं। कई बार तो मैं उनका फ़ोन भी नहीं उठाती। विक्की भी पैसों का इंतज़ाम करने के लिए मुझसे फ़ोन पर झगड़ा करता रहता है। मुझे समझ नहीं आ रही कि मुझे क्या करना चाहिए? इसलिए जब कहीं से भी काम मिलता है तो मजबूरी में करना ही पड़ता है। जब तक मेरी पी. आर. नहीं आती और कोई अच्छी नौकरी नहीं मिलती, मैं विक्की को यहाँ नहीं बुला सकती। समझ नहीं आ रहा कि क्या करूँ ? कई बार तो दिल करता है कि..." तमन्ना की अभी बात ख़त्म भी नहीं हुई थी कि उसके फ़ोन पर कोई कॉल आई। नाम देखते ही तमन्ना ने फ़ोन एक तरफ रख दिया।

मैंने पूछा, "बात क्यों नहीं करती, किसका फ़ोन है?"

"मम्मी का।"

"इस समय!" मैंने आश्चर्य से कहा।

"जब पापा और विक्की सो जाते हैं तो मम्मी दूसरे कमरे में जाकर बातें करती हैं। इस समय तो जब भी मम्मी का फ़ोन आता है तो मामा जी के पैसों की ही बात होती है। पापा से चोरी बताते हैं। पापा, मम्मी से लड़ते हैं कि पैसों के लिए उन्हें न कहें।"

फ़ोन बंद हो गया। तमन्ना ने राहत की साँस ली।"प्रवीण... अभी वह कुछ कहने ही वाली थी कि फ़ोन दोबारा बज उठा। तमन्ना ने दोबारा भी फ़ोन नहीं उठाया। मैंने कुछ देर सोच कर कहा, "मुझे फ़ोन दो।"

वह आश्चर्यचकित हो गई और बोली, "तुम मम्मी से क्या बात करोगे? मैंने अभी तक उन्हें तुम्हारे बारे में ज़्यादा कुछ नहीं बताया है। तुम रहने दो, मेरे लिए कोई नई मुसीबत मत खड़ी करो।" यह कहते हुए उसने मोबाइल अपने हाथ में ले लिया।

"देखो तमन्ना, एक न एक दिन तो हमें उन्हें बताना ही है, फिर क्यों न आज ही बता दें। मुझ पर विश्वास करो, मैं ठीक से बात करूँगा।" मैं सोफे से उठा और फ़ोन लेने के लिए हाथ बढ़ाते हुए उसकी कुर्सी के पास गया।

"प्लीज प्रवीण, ज़िद मत करो। जब मुझे उचित लगेगा तो मैं ख़ुद ही बात करूँगी।" तमन्ना ने गिड़गिड़ाते हुए कहा।

"नहीं तमन्ना, मुझे बात करने दो।" इतना कहकर मैंने उससे मोबाइल छीन लिया।

"हैलो आंटी, नमस्ते! मैं प्रवीण बोल रहा हूँ।"

"प्रवीण! कौन प्रवीण? तन्नु कहाँ है?" दूसरी तरफ से आवाज़ आई।

"आंटी, तमन्ना और मैं एक साथ ही काम करते हैं, हम अच्छे दोस्त भी हैं। शायद उसने आपको मेरे बारे में नहीं बताया। मैंने तो अपने माता-पिता को सब कुछ बता दिया है।"

तमन्ना, प्रवीण को फ़ोन बंद करने का इशारा कर रही थी।

"क्या बताया है? मुझे कुछ समझ नहीं आ रहा। तन्नु को फ़ोन दो।"

"आंटी घबराने की ज़रूरत नहीं है। मेरे पेरेंट्स आपको फ़ोन करके आपसे मिलने आएँगे, वे सारी बात ख़ुद ही करेंगे। सब कुछ आपकी इच्छा के अनुसार ही होगा।" मैंने कहा।

तमन्ना ने मुझसे फ़ोन छीनने की कोशिश की, लेकिन मैंने उसकी मम्मी से बातचीत जारी रखी, "आंटी, तमन्ना ने मुझे अभी अपने मामा जी से लिए गए क़र्ज़ और कनाडा आने

की पूरी बात बताई है। क्या आपने कभी उससे वीडियो कॉल की है? उसकी शक्ल देखी है कभी? दो-दो शिफ्टों में काम करके काली-कलूटी बन गई है, जिस तरह घरों में काम करने वाली मेड होती है। सोचो, अगर यह बिना आराम किये ऐसे ही काम करती रही तो इसका क्या हाल होगा? कनाडा में पैसा कमाना इतना आसान नहीं है। सच तो यह है कि स्टूडेंट वीज़ा पर आए बच्चों को यहाँ काफी दिक़्क़तों का सामना करना पड़ता है। इसने पहले मेरे साथ लोन के बारे में कोई बात ही नहीं की, नहीं तो पहले ही कुछ इंतज़ाम कर लेते।" प्रवीण ने एक ही साँस में सब कुछ बोल दिया। उधर, तमन्ना की मम्मी को पता ही नहीं चल रहा था कि यह कौन बोल रहा है, क्या कह रहा है? वह बार-बार यही कह रही थी कि उसे तन्नु से बात करनी है। तन्नु की तबीयत के बारे में सुनकर वह घबरा गई थी।

तमन्ना मेरे सामने हाथ बाँधकर खड़ी थी और मुझसे चुप रहने को कह रही थी।

"आंटी मेरी आख़िरी बात सुनो। मामा जी के लोन की कोई चिंता मत करो। हम एक दो-दिन के अंदर उनका सारा पैसा भेज देंगे। बाकी विक्की को समझा दो कि जब तक तमन्ना की पी.आर. नहीं आ जाती, वह विकी का ख़र्चा नहीं कर सकती। मैं ख़ुद विक्की को समझा दूँगा। उसे बी. कॉम. के बाद कंप्यूटर ग्राफिक्स की ट्रेनिंग लेनी चाहिए। जब भी मेरी पी.आर. आ गई तो मैं अपना ग्राफिक्स का काम शुरू कर लूँगा। फिर उसे छात्र वीज़ा के बजाय वर्क परमिट पर आमंत्रित करने का प्रयास करेंगे। आंटी, ये मत सोचो कि यह कौन पागल लड़का है, जो पहली बार में ऐसी बातें कर रहा है। दरअसल मुझे तमन्ना की सेहत की ज़्यादा चिंता है। लीजिए, अब तन्नु से बात कर लो।"

यह कहकर मैंने फ़ोन तमन्ना को दे दिया। मेरी बातें सुनकर वह घबरा गई थी कि पता नहीं मम्मी उसे क्या कहेंगे।

"मम्मी प्लीज़, मेरी बात सुनो... " इतना कहकर तमन्ना फ़ोन लेकर दूसरे कमरे में चली गई।

000

लघुकथा

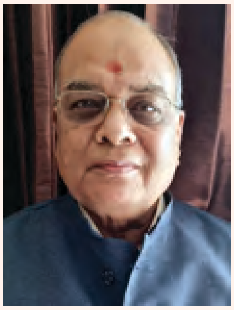

स्वाद- बेस्वाद

सतीश राठी

"इन दिनों सब्जियों में स्वाद बिल्कुल भी नहीं आ रहा है। कुछ खाने की इच्छा ही नहीं हो रही है।"

"अब स्वाद कैसे आएगा। किसान खेतों में ज़हर बो रहे हैं।"

"जहर बो रहे हैं। समझ में नहीं आया।"

"देखो समझो इस बात को। पहले छोटी-छोटी लौकी और गिलकी मिलती थीं। उसमें स्वाद होता था। अब इंजेक्शन लगाकर उस लौकी को दो दिन में बहुत बड़ा कर दिया जाता है। वजन बढ़ जाता है पर वह ज़हरीली हो जाती है। फूड पॉइज़निंग के कितने केस सामने आते हैं।"

"हाँ यह तो देखने में आ रहा है।"

"दूध पीते हो उसमें भी स्वाद नहीं है। उसमें यूरिया डाला जा रहा है।"

"ऐसा क्यों हो रहा?"

"किसान जो भी उगा रहा है उसमें स्वाद इसलिए समाप्त हो गया है, क्योंकि उसका सत्यता से परिपूर्ण जीवन जीने पर विश्वास समाप्त होता जा रहा है।"

"पर सरकार तो किसान को हर बात में अनुदान देती है। खाद के लिए, फ़सल के लिए। और तो और अच्छी क़ीमत पर ख़रीदने का मूल्य निर्धारण भी करती है।"

"देखो, समझो!! अब किसान चतुर हो गया है। शुद्धता के प्रति उसके भीतर की आस्था भी मर गई है। सब एक ही थाली के चट्टे बट्टे हैं...।"

"इस बेस्वाद को स्वाद में कैसे बदला जा सकता है, यह तो समझ में नहीं आ रहा।"

"लालच सबके भीतर बैठा है। वह समाप्त हो तो शायद स्वाद फिर से आ जाए।"

000

सतीश राठी
आर 451 महालक्ष्मी नगर,
इंदौर 452010 मप्र
मोबाइल- 9425067204

रेखाचित्र

वो पुण्यात्मा

ज्योति जैन

बात तब की है जब मेरे और शरदजी (जो अब मेरे पतिदेव हैं) के प्रेम संबंधों को दोनों परिवारों की रज़ामंदी की मोहर लग चुकी थी। मुझे पहली बार अपने ससुराल का निमंत्रण मिला था। हालाँकि घर में माँ बाबूजी के बीच युद्ध छिड़ गया था कि विवाह से पहले अपने ब्राह्मणों में कन्या ससुराल की देहली नही चढ़ती। लेकिन माँ का कहना था कि जैसे वहाँ के रिवाज़ हों अपने को रोकना नहीं चाहिए। तो मैं जाने के लिए तैयार बैठी थी.. लेकिन कोई लेने आया नहीं। तो मेरी पड़ोसी सखी अनिता ने कहा कि शायद तुझे अप्रैल फूल बना दिया है, क्योंकि आज एक अप्रैल है। मुझे भी बड़ा ग़ुस्सा आया। कोई ख़बर नहीं और होनी भी नहीं थी क्योंकि तब हमारे घर में लैंडलाइन भी नहीं था। लेकिन शाम को जब शरदजी घर आए और उन्होंने बताया, कि मम्मी ने आज लाने को मना कर दिया था, क्योंकि आज अमावस्या है। तो अब तुम्हें कल भैया-भाभी लेने आएँगे। कल गुड़ी पड़वा का दिन है इसलिए। यह मेरा मेरी सास से पहला अनुभव था। जिनके दूर रहते हुए भी मैंने उनके विचार जाने और अपनी उस समय की उम्र में उन्हें जी भरकर कोसा भी। अच्छी भली तैयार होकर बैठी थी, ये क्या बात हुई ...!

ख़ैर, अगले दिन मैं वहाँ गई । घर के सारे सदस्यों ने बहुत प्रेम और गर्मजोशी के साथ मेरा स्वागत किया। और मम्मी ने बहुत स्नेह के साथ मुझे एक गुलाबी रंग की साड़ी और एक अँगूठी भेंट की।

तय हो चुका था कि हमारा विवाह इस वर्ष के आख़िर में यानी नवंबर में हो जाएगा। 1984 नवंबर में विवाह टल गया। क्योंकि तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी को गोली लगने की वजह से कर्फ़्यू लग चुका था। तो जनवरी 1985 में मेरा विवाह हुआ। 20-21 वर्ष की उम्र बहुत बड़ी नहीं होती है लेकिन मम्मी ने (मम्मीजी कभी नहीं कहा) मुझे अपने परिवार में ढालने में कोई कसर बाक़ी नहीं रखी। माँ तो माँ ही होती है लेकिन ये चीज़ें बाद में समझ आईं और सालों लग गए समझने में कि वे देवत्व का अंश थीं। देह बेशक मनुज की थी। लेकिन कहते हैं न कि देर आए दुरस्त आए। जब जागे तब ही सवेरा। हालाँकि आभास तो मुझे उनके व्यक्तित्व का तब ही हो चला था जब विवाह के कोई आठ महीने पश्चात् मेरी माँ की सर्जरी होना थी। और जो दिन सर्जरी के लिए निर्धारित था, वही दिन मेरे नाना ससुर के तीसरे के उठावने का था। दो दिन पहले उनका निधन हुआ था। मैं भी नई बहू की तरह पशोपेश में थी कि क्या करूँ? माँ अकेली थी और सासू माँ यानी मम्मी से इजाज़त लेना बड़ा मुश्किल कार्य लग रहा था। लेकिन उन्होंने मेरी मुश्किल आसान कर दी। उन्होंने मुझे कुछ रुपये देकर कहा, जिन्हें जाना था वे तो चले गए, लेकिन जो जीवित हैं तुम उनको पहले देखो। कितनी बड़ी बात थी और कितना बड़ा दिल उनका था, इस बात का अंदाज़ा लगाना भी मेरे लिए मुश्किल था। मैं गद्‌गद् हो गई। पुराने ज़माने में ऐसे कोई रिवाज़ नहीं थे कि नई बहू को आने पर कुछ तोहफ़ा मिले, लेकिन शादी के आठ-नौ महीने पश्चात् ही यह जो तोहफ़ा मुझे मेरी सास यानी मम्मी से मिला, वह मेरे लिए इतना अनमोल है कि आज भी अपनी यादों के मखमली डिब्बे में मैंने उसे सहेजकर रखा हुआ है।

उसके बाद जब धीरे-धीरे उन्हें जानने लगी तो उनके व्यक्तित्व की बहुत सारी चीज़ों से परिचित होती गई, जिनमें प्रमुख रूप से था अपरिग्रह। हम जैनियों के 10 लक्षण धर्म में से एक अपरिग्रह है। किसी भी चीज़ को लेकर उनमें लालसा या संग्रहण की प्रवृत्ति कभी नज़र नहीं आई, चाहे खाना हो, पहनना हो। दूसरा उन्हें हमेशा देने के बारे में ही जाना। उनका बस चलता तो वे शायद अपने शरीर पर पहने हुए गहने भी किसी को उतारकर दे देतीं। उन्हें हमेशा आज में जीते देखा। पहले कभी उनकी युवावस्था में शायद उन्होंने अभाव देखे होंगे, लेकिन उन्होंने हमेशा यह चाहा कि जिन अभाव में मैं रही हूँ उस अभाव को मेरी बहुएँ महसूस न करें। और वे आज में जीती थीं। आज जो है वही अपने हाथ में है और उसे ही भरपूर जी लूँ। उन्होंने इसे बेशक शब्दों में कभी नहीं कहा, लेकिन शायद इतनी समझदार तो मैं थी कि उनके आचरण से ये सारी बातें मैंने जानी और कहीं न कहीं अपने में उतारने की कोशिश की। उन्हें हमेशा हर व्यक्ति के लिए चिंतित होते देखा। परिवार में कभी भी, किसी को भी, किसी भी प्रकार की ज़रूरत होती

ज्योति जैन
1432/24, नंदानगर
इन्दौर-452011, मप्र
मोबाइल- 930031812

मम्मी को सदैव सबसे आगे देखा। चाहे उनका मायका पक्ष हो या ससुराल पक्ष। मायके पक्ष में भी जब जहाँ उनकी ज़रूरत होती, मम्मी हमेशा तन-मन-धन से हाज़िर होतीं और ससुराल पक्ष में भी सदैव उन्हें सबके किसी भी काम में हमेशा आगे बढकर भाग लेते देखा। माथे पर उभरे छोटे से गुमड़े के साथ मध्यम आकार की लाल बिंदी और चेहरे पर सदैव एक सुस्मित मुस्कराहट वाली मम्मी की ख़ासियत थी कि बहुत ज़्यादा पैसा न होने के बावजूद भी उन्हें व्यवस्थित रहने का बड़ा शौक था। बेशक हल्का पहनो लेकिन व्यवस्थित पहनो। सस्ती साड़ी हो लेकिन कलफ़ लगी और प्रेस की हुई हो। उस समय ज़रा सा अरारोट पानी में घोलकर उबालते थे और साड़ी धोकर उसमें डुबो कर सुखाते थे और तब इस्तरी करके पहनी जाती थी। उनकी हमेशा से सोच रहती थी, जो है, जितना है उसका उपभोग कर लो। बचाकर क्या करना है। और साथ ही कई बार ऐसा होता कि बाहर जाने पर और किसी के पास पैसा न हो पर मम्मी अपने रूमाल में हमेशा पैसे साथ रखती थीं। और जब जिसको ज़रूरत हो झट से निकालकर दे देना तो उनकी ख़ासियत थी। शायद वो कभी एक पल को भी ना सोचतीं कि मैं किसे क्या दे रही हूँ। ऐसी शख्सियत तो बिरले ही मिलती है और ऐसी शख्सियत अपने परिवार में.. अपने आसपास हो, तो नि:संदेह उनसे बहुत कुछ सीखा जा सकता है। लगता था कि मम्मी दूसरी दुनिया की स्त्री हैं, क्योंकि आमतौर पर दूसरी स्त्रियों में जो परिग्रह होता है, वो मम्मी में कभी नहीं देखा। और शायद यही कारण है कि उनके प्राण इतनी आसानी से निकले। आम तौर पर उस उम्र के लोगों को जो बीमारियाँ होती हैं शुगर, ब्लड प्रेशर, थायराइड... कोई बीमारी नहीं। कोई टेबलेट नहीं खाती थीं।

मुझे याद है वह दिन, जिस दिन उन्होंने अपनी देह त्यागी। मदर्स डे यानी मातृ दिवस से चार दिन बाद। उस दिन मातृदिवस पर मैं अपनी बेटी के पास मुंबई थी। और वहाँ से मैंने मम्मी को फ़ोन किया। हालाँकि उनकी एक और विशेषता थी कि उन्हें इस तरह के डे पसंद नहीं थे या कभी उनके लिए तोहफ़े लाती, तो भी वो पसंद नहीं करतीं। और उस दिन मैंने सोचा भी कि मैं फ़ोन करूँगी तो मम्मी कहेंगी कि अरे क्या है ये दिन तुम लोग कुछ करते रहते हो...? तो मैंने एक बार मोबाइल हाथ में लेकर वापस रख दिया। लेकिन फिर भी पता नहीं मन ने क्या कहा और मैंने मम्मी को फ़ोन किया। मम्मी ने फ़ोन उठाया, तो वो उस वक्त अपने मायके में यानी मामाजी के यहाँ थीं। उन्होंने सभी को बड़े ख़ुश होकर बताया कि ज्योति का फ़ोन आया है बॉम्बे से... और मदर्स डे की बधाई दे रही है। मुझे उनकी आवाज़ में थोड़ी सी गर्वमिश्रित प्रसन्नता सुनाई दी। हम स्त्रियों की ख़ासियत होती है कि कई अनकही चीज़ें भी हम महसूस कर लेते हैं, सुन लेते हैं। उस दिन मम्मी के स्वर में मुझे वो गर्वमिश्रित स्वर सुनाई दिया। मैंने अनुमान लगाया कि शायद मायके में उन्हें यह बताना अच्छा लग रहा होगा कि बहू ने मदर्स डे पर बधाई देने के लिए ..या प्रणाम करने के लिए फ़ोन किया। और मैंने ईश्वर को धन्यवाद दिया कि दिमाग़ दिल पर हावी नहीं हो पाया और मैंने फ़ोन कर लिया। मुझे ख़ुशी हुई कि चलो आज एक काम अच्छा हुआ। बस फिर इधर-उधर की बातें हुई। मम्मी ने पूछा कब आ रही हो..? मैंने कहा, मम्मी 16 को आ रहे हैं। 16 तारीख को मैं आई। आने के बाद मम्मी से बात हुई। अगले दिन मम्मी को शायद तबीयत कुछ ठीक नहीं लग रही थी। बोलीं एसिडिटी जैसा लग रहा है। डॉक्टर को दिखाने का कहा तो बोलीं एक दिन देखती हूँ.. करके उन्होंने एक दिन निकाल दिया। यहाँ मैं थोड़ा सा परेशान हो जाती हूँ कि आमतौर पर औरतों की यही प्रवृत्ति होती है कि जहाँ अपने स्वास्थ्य पर बात आती है उसको टाल देती हैं। जबकि घर के किसी भी सदस्य के स्वास्थ्य की बात हो तो आसमान सिर पर उठा लेंगी, भागादौड़ी करेंगी, पल्ला कमर में खोसकर काम में जुट जाएँगी, लेकिन जहाँ अपनी सेहत की बात हो, स्त्री पता नहीं कितनी तरह के समझौते करती है। मम्मी में भी निश्चित तौर पर वो स्त्री तो थी ही। तो मम्मी ने टाल दिया, लेकिन अगले दिन मेरे देवर नहीं माने, कहा कि नहीं मम्मी डॉक्टर से टाइम लिया है। डॉक्टर को दिखाया तो उन्हें कुछ हार्ट से संबंधित समस्या लगी और उन्हें तुरंत बॉम्बे हॉस्पिटल रेफर किया। बॉम्बे हॉस्पिटल जाने के बाद जब हम लोगों को पता चला, हम सब भागे। मम्मी आईसीयू में थीं, उनकी एन्जियोग्राफी होनी थी। डॉक्टर ने बताया उनका हार्ट केवल बीस प्रतिशत काम कर रहा था। कितनी अजीब बात थी.. लोगों के लिए संवेदनाओं से, प्यार से, मदद से, हर तरह से लोगों की फ़िक्र से भरा हुआ दिल, ऐसा कैसे हो सकता है कि काम ही नहीं कर रहा। मैं सकते में थी और डॉक्टर इदरीस परिचित थे। उन्होंने जैसे ही मुझे देखा, मैंने पूछा मम्मी कैसी हैं..? उन्होंने कहा आप मेरे साथ अंदर आओ। मैं अंदर आईसीयू में जैसे ही गई, पता चला डॉक्टर उनकी धड़कनें वापस लाने का प्रयास कर रहे थे। वह प्रयास नाकाम रहा और मुझे दिखाई दिया कि मम्मी ने मेरे सामने अपनी देह त्याग दी। बहुत अफ़सोस और बहुत रोने के साथ यह बात समझ में आई कि ऐसी ही तो पुण्य आत्माएँ होती हैं। जिन्हें इस तरह की मौत मिलती है कि घर से पैदल चलीं, गाड़ी तक आईं, बिना किसी सहारे के डॉक्टर के यहाँ गईं और वापिस घर नहीं आईं।

वो पुण्यात्मा देने का सुख जानती थीं। लेकिन उन्हें पता था कि किसी को पीड़ा नहीं देना है, किसी को कष्ट नहीं देना है। वो चली गईं। लेकिन इतनी सारी चीज़ें अपने पीछे छोड़ गईं, इतनी सारी सीख छोड़ गईं, इतना सारा प्यार और इतना सारा अपनापन, सबको इकट्ठा करने की ताक़त, क्योंकि वो हमारे घर की की-पर्सन थीं। इतनी सारी चीज़ें उन्होंने अपने पीछे छोड़ी हैं कि इकट्ठा करते-करते मेरा आँचल ही छोटा पड़ गया।

और यह उनका आशीर्वाद है कि हम जहाँ हैं, जिस मुकाम पर हैं..., ख़ुश हैं, सुखी हैं, संतुष्ट हैं। और उन्हीं की वजह से देने का सुख जानते हैं। इससे ज़्यादा और क्या चाहिए। निश्चित रूप से वो ऊपर बैठे-बैठे भी आशीर्वाद ही दे रही होंगी। केवल देना जो जानती थीं।

000

अमेरिका में राम

रेखा भाटिया

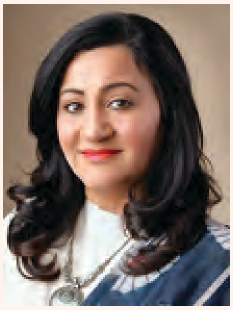

रेखा भाटिया
9305 लिंडन ट्री लेन, शार्लोट, नॉर्थ कैरोलाइना, यू एस ए -28277
मोबाइल- 704.975.4898
ईमेल- rekhabhatia@hotmail.com

जब से मोर्रिस्विल्ल की भव्य रामलीला से लौटी हूँ, तब से उसे मेरे ज़ेहन से एक मिनट भी बाहर निकाल नहीं पा रही हूँ। मेरी सोचों ने आवेग पकड़ा है। राम को हर पहलू से, नए सिरे से जानने को मन तड़प रहा है। राम का जीवन क्या एक और कहानी है या एक जीवन के पूर्ण से सम्पूर्ण को पा जाने का अनुभव और उदाहरण। युग बीत गए, सदियाँ बीत गई लेकिन आज भी राम जन-जन के मन में और जीवन में समाहित हैं। मेरे मन में कौंधे प्रश्नों का उत्तर मैंने डॉ. सुधा ओम ढींगरा से जानना चाहा, उन्होंने मेरी जिज्ञासाओं को शांत किया लेकिन जीवन की एक और परत को हटा दिया जो अब तक धुँधली थी, "राम को समझने के लिए तुम्हें अध्ययन करना होगा!"

हर आयु के उत्साहित हज़ारों दर्शक मोर्रिस्विल्ल के भव्य हॉल में और हॉल के बाहर लगी बड़ी-बड़ी टीवी स्क्रीन पर नज़रें गड़ाए बेसब्री से उस क्षण की प्रतीक्षा में थे, उनकी उत्तेजना चरम पर थी मानों वह स्थान, वह हॉल, उसका प्रांगण अयोध्या में बदल गया हो और आज उनके प्रभु श्री राम वनवास की अवधि को पूरा कर, लंका को जीतकर वापस अयोध्या लौट रहे

हैं। अयोध्यावासी अपने प्रिय राजा राम को पाकर धन्य हो जाएँगे ! स्टेज का पर्दा खुलने से पहले की बेसब्री के बेकाबू स्वर स्टेज के पीछे ग्रीन रूम तक आ रहे हैं। स्थान है अमेरिका के प्रदेश नॉर्थ कैरोलाइना के शहर मोर्रिस्विल्ल, और दृश्य है वहाँ की रामलीला के मंचन का।

जब-जब हौले से ग्रीन रूम का द्वार खुलता, एक गंभीर, अनुभवी और कुशल सेनापति की भाँति डॉ. सुधा ओम ढींगरा अपने विश्वस्त सौनिकों यानी अपनी टीम के साथ तेज़ी से हाथ चलातीं, बड़ी मुस्तैदी और बारीकी के सभी कलाकारों का निरीक्षण कर रही थीं। उन्हें तरह- तरह की हिदायतें दे रही थीं। उन्हीं क्षणों में उनसे हज़ारों प्रश्न पूछे जा

रहे थे, " आभूषण कहाँ हैं, वस्त्र कहाँ हैं, यह पोशाक ढीली है, यह विग कैसे पहनें, क्या साड़ी ठीक से बँधी है, स्टेज की लाइट काम नहीं कर रही, अभी तक फलाँ कलाकार नहीं आया, क्या करना है ?"

खाने- पीने, सामान, ध्वनि- प्रकाश- संगीत, धनुष-गदा, मुकुट -हनुमान की पूँछ, लंकेश्वर के भारी-भरकम आभूषण, वेषधारी साधु की दाढ़ी, मंथरा के बाल अनगिनत सवालों के जवाब डॉ. सुधा बड़े इत्मीनान से देतीं सभी को तैयार कर रही थीं। सभी का हौसला बढ़ातीं, कई जिज्ञासाएँ शांत करती साथ ही कई हिदायतें देतीं ! उनकी फुर्ती और समझ ग्रीन रूम में उपस्थित सभी जनों में नई ऊर्जा भर रही थी। कुछ कलाकार अनुभवी और मँझे हुए थे और कुछ नए पहली बार स्टेज पर जा रहे थे। लेकिन शो शुरू होने से पहले सभी की दिलों की धड़कनें बढ़ी हुई थीं, यह परीक्षा की घड़ी थी। रामलीला की तैयारी और अभ्यास महीनों से चल रहा था। यह कोई साधारण रामलीला नहीं थी। मात्र तीन घंटों की राम लीला में राम के बालपन, युवावस्था, विवाह, कैकेयी का कोप भवन जाना, राम वनवास, केवट दृश्य, सीता हरण, अशोक वाटिका के दृश्य, युद्ध, रावण वध सम्पूर्ण रामायण का मंचन होना था।

तीन घंटों की कड़ी मेहनत के बाद सभी कलाकार अपने-अपने पात्र के लिए मेकअप करवा कर तैयार थे। सभी कलाकारों को विश्वास था आज की रामलीला बहुत सफल रहेगी और उनकी सफलता की मज़बूत डोर

बँधी थी उनकी कैप्टन डॉ. सुधा ओम ढींगरा और उनकी टीम के अथक प्रयास, परिश्रम और समर्पण से।

इस अलौकिक रामलीला का मंचन दृश्य दर दृश्य शुरू हुआ, मोर्रिस्विल्ल के हिन्दू सेंटर के प्रांगण में आज अद्भुत दिन था। अब तक चार से पाँच हज़ार दर्शक हॉल के भीतर और बाहर बड़ी स्क्रीनों पर साँसें थामे रामलीला का मंचन देख रहे थे। लोगों की भीड़ बढ़ती जा रही थी। बाहर मुख्य सड़क बंद कर दी गई थी और बसों से दर्शकों को प्रांगण में लाया जा रहा था। खचाखच भरे हॉल में पैर रखने की जगह नहीं थी। रामलीला के दृश्य दर दृश्य भव्य मंचन से आनंदित और मग्न भीड़ बहुत उल्लास से रामलीला का आनंद उठा रही थी। मोहित दर्शक रामलीला के मोहपाश में पूरी तरह अपने आप को भूल चुके थे और कलाकारों पर ख़ूब प्यार लुटा रहे थे। केवट ने जब एक बड़ी नाव में प्रभु श्री राम, माता सीता, लक्ष्मण को नाव में बिठाया, नाव साक्षात् स्टेज पर चलने लगी तब दर्शकों के विस्मय की कोई सीमा न थी। कहीं कोई तकनीकी ख़राबी आती, क्षण भर में ही पारंगत और अनुभवी संचालक ममता त्यागी उसे अपने ज्ञान और अनुभवों से राम के जीवन के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाल दर्शकों को अपने साथ व्यस्त कर लेतीं। किसी को पता न चलता और दर्शक एक निश्छल, निरंतर गतिशील नदी के बहाव में बहते रहते।

कैकेयी और मंथरा के वार्तालाप में मंथरा बनी रंगमंच की सधी हुई अभिनेत्री उषा बाजपेयी के चहेरे के भावों में कुटिलता, डायलॉग में कपटता के स्वर, देह से मंथरा की भाषा को प्रकट करना, लोग उनके अभिनय से दाँतों तले उँगली दबा लेते हैं। कौन यक़ीन करेगा कैकेयी का पात्र निभाने वाली युवती विरल त्रिवेदी वास्तविक जीवन में कितनी सरल, सहज और ममतामयी हैं। दशरथ के रोल में नए युवा कलाकार विपिन सेठी प्राणों के निकलने से पहले पुत्र वियोग के दु:ख में असल में स्टेज पर रो पड़ते हैं, तब दर्शक उस दर्द से सिहर उठते हैं। प्रितेश कासलीवाल के रूप में राम की निष्ठा, सौम्यता, धैर्य, दृढ़ता

और कोमलता में सजीव राम को पाकर दर्शक गदगद हो उठता है और विवेकानंद की सादगी, समर्पण और चंचलता में साक्षात् लक्ष्मण को पा लेता है। एक झलक में जीवंत कोमल माता सीता को पाकर उनका रोल कर रही मयूरी रमन को देख दर्शक ठगा-सा रह जाता है लेकिन अगले ही पल क्षत्राणी सीता का तेज जब रावण को भयभीत करता है, दर्शक सीता का दूसरा मज़बूत रूप देखते हैं। राम विरह में सीता का रुदन सबके हृदयों को रुलाता है ! नाथ, नाथ पुकारती सीता के स्वर में उतरती पीड़ा, तड़प को महसूसता दर्शक यह जान ही नहीं पाता यह स्वर डॉ. सुधा का है। हनुमान की चपलता और भक्ति में जॉन कॉल्डवेल गहराई से उतरते हैं तो रावण की तीक्ष्ण बुद्धि, प्रचंड क्रूरता और दंभ को अफ़रोज़ ताज रावण के ही अंदाज़ में सातवें आसमान की ऊँचाई पर पहुँचा देते हैं। हर कलाकार अपने पात्र को सजीवता से निभाता है। शबरी की भक्ति, केवट, साधु, राक्षस, वानर सेना, दासियाँ, रानियाँ और शूर्पणखा हर पात्र, हर दृश्य रामायण काल का प्रतीत होता है। इतने कम समय तीन घंटों में सम्पूर्ण रामायण को समेटना दर्शकों के मन पर गहरी छाप छोड़ता है और दर्शकों को इस हद तक बाँध लेता है कि दर्शक अगले वर्ष के लिए बेसब्री से फिर से राम लीला के लिए प्रतीक्षा करने पर मजबूर हो जाते हैं, यह है मोर्रिस्विल्ल की रामलीला की सफ़लता।

पिछले अट्ठारह वर्षों से सुधा ओम ढींगरा के निर्देशन में मंचित रामलीला में हर साल दर्शकों की भीड़ बढ़ती जा रही है। अमेरिका में मंचित होने वाली रामलीलाओं में यह सबसे बड़ी और भव्य रामलीला है। इस मुकाम तक पहुँचाने का पूरा श्रेय और योगदान जाता है डॉ. सुधा ओम ढींगरा और उनकी पूरी टीम, हिन्दी विकास मंडल की टीम की वर्षों की तपस्या, कठोर मेहनत, लगन, समर्पण, दूरदर्शिता और सहयोग को। हर टीम की ज़िम्मेदारी अलग होती है। रामलीला की स्क्रिप्ट को लिखा है सुधा ओम ढींगरा ने। रामलीला के मंचन से महीनों पहले से इसकी ख़ूब डटकर प्रेक्टिस होती है सुधा जी के गैराज

में। कलाकारों के खाने-पीने से लेकर अभिनय को निखारने की ज़िम्मेदारी सुधा जी की रहती है, पूरी टीम सहयोग करती है। अमेरिका में धनुष, तीर, गदा, रामायण काल के वस्त्र - आभूषण, सिंहासन, मुकुट, लोटा, नाव, साधु के कपड़े इत्यादि वस्तुएँ उपलब्ध नहीं हैं, न ही इस वस्तुओं को प्राप्त करने के कोई स्टोर्स हैं, न स्रोत हैं। तब बहुत कोशिशों से, महीनों की मेहनत के बाद इन वस्तुओं को हाथ से बनाया जाता है। ध्वनि, प्रकाश, संगीत, स्वर, स्टेज की सजावट, साज़ो-सामान, खाने-पीने की ज़िम्मेदारी की भी अलग-अलग टीमें हैं।

मंथरा की कटुता और शबरी की मिठास जैसे दिन और रात इन दोनों विपरीत पात्रों को अदा करने वाली उषा जी मंचन से पहले कई बार स्वयं को आईने में निहारती हैं और अपने चहेरे पर उम्र की कुछ अधिक झुर्रियाँ, आँखों

को डरावना दिखाने के लिए गहरा मोटा काजल फिर शबरी के रोल के लिए काले बालों में मेकअप से बहुत अधिक सफेदी चढ़वा लेने में ज़रा नहीं हिचकतीं। फिर ग्रीन रूम में स्पीकर पर चलते रामायण के हर पात्र के डायलॉग पर एक्टिंग करती हैं, जो उन्हें मुँह ज़ुबानी याद हैं। पात्रों को निखारने में अपने अनुभव से उन्हें सलाह देती हैं।

इसी साल राम लीला से जुड़ी सीता बनी मयूरी रमन का कहना था, " मैंने बहुत नाटक मंचन किये हैं लेकिन सीता माता का यह रोल मेरे जीवन का सबसे सर्वश्रेष्ठ और मूल्यवान् किरदार था। सीता माता को मैं अब तक असहाय समझती थी, रावण जिनका अपहरण करता है और वह अशोक वाटिका में अपनी

मुक्ति के लिए राम की प्रतीक्षा करती हैं। लेकिन इस रोल के बाद मैं माता सीता के व्यक्तित्व के कई पहलू समझ पाई। वह पतिव्रता, क्षत्राणी, अडिग, निष्ठावान् और वीर थीं। वनवास के दौरान भी उनके मन में अभिलाषाएँ थीं स्वर्ण मृग के लिए ! सुधा जी के स्वर में सीता का दर्द, प्रेम, पुकार, वीरता को जीवंतता मिली जिससे मुझे किरदार को निभाने में बहुत मदद मिली। हर बार सीता को समझने के लिए सुधा जी सीता के व्यक्तित्व के एक नए कोण पर प्रकाश डालतीं। जीवन में नारी के एक नए स्वरूप को मैं अब समझ पाई हूँ, महसूस कर पाई हूँ।"

इन सभी कलाकारों के जीवन को राम

लीला ने किसी न किसी तरह प्रभावित किया है, उनके जीवन में एक नया बदलाव आया है। लक्ष्मण बने विवेकानंद हों या भावना सिंह नई पीढ़ी के कई युवा अब राममय हो इस बदलाव को महसूस करते हैं और अपने अनुभव साझा करते हैं। उनके जीवन में परिपक्वता, गंभीरता और ठहराव पहले से अधिक है। सुधा ओम ढींगरा के लिए रामलीला के मंचन की गंभीरता महज एक मंचन न होकर एक उद्देश्य बन गया है, विदेशों में पल रही अगली पीढ़ी को अपने संस्कारों से जोड़े रखने का।

अमेरिका में हमारे हृदय बंजर न हो जाएँ यही डर अधिक सताता है। खाये-पीये - अघाये भोग लिया इस ज़मीन को और अपनी पहचान भी न बना पाए अपितु जो पहचान थी उसे भी खो देते। इंसान अपनी ज़रूरतों के बाद सबसे अधिक परवाह करता है तो वह है उसकी पहचान की।

उन्होंने न सिर्फ़ उस पहचान को बनाए रखने में मदद की वरन एक नई शुरुआत की, कठोर श्रम किया, वर्षों तपस्या की। हमारे हृदयों को बंजर होने से बचा कर उपजाऊ बनाया। वह जब भी कुछ नया करती हैं, मालूम है परिवर्तन तो लाएँगी ही, विश्वास रहता कुछ नया व सफ़ल कर जाएँगी और यह परिवर्तन कइयों के जीवन में बदलाव लाएगा। जब उन्हें देखते हैं, तब एक बार में समझ में नहीं आता है छोटा कद, बेहद सौम्य मुस्कान, कोमल चहेरा, हाव-भाव और बेहद मीठी आवाज़ की मल्लिका एक मज़बूत चट्टान-सा इरादा लिए अपने कन्धों पर बहुत सारी ज़िम्मेदारियों का भार उठाती हैं। सुधा ओम ढींगरा से जब मैंने पूछा, "आप क्या सोचकर कोई नया कार्य शुरू करती हैं ?" तब उनका ज़वाब था, "यह कार्य मैं अगली पीढ़ी के लिए कर रही हूँ ताकि उन्हें हमारी संस्कृति, सभ्यता, भाषा और संस्कारों की धरोहर से परिचित करवा सकूँ।" लेकिन उनके किए गए कार्यों का लाभ सीधा वर्तमान की पीढ़ी को भी मिलता है, एक सकारात्मक ठहराव और बदलाव के रूप में। एक लीला भगवान् की थी "राम लीला" उसके पीछे उद्देश्य था मर्यादा

स्थापित करना। एक लीला यह भी है भगवान् की जिसमें एक इंसान निमित्त बनता है दूसरों के जीवन में सकारात्मक बदलाव और कलात्मक ख़ूबसूरती लाने के लिए, जिसे सुनकर वह हँस पड़ती हैं। अनगिनत उपलब्धियों के बावजूद उन्हें धरातल से जुड़ कर रहना पसंद है।

रामलीला एक मंचन है लेकिन मंच से बाहर असल जीवन में रामलीला से जुड़े लोगों के जीवन में इसका बहुत अधिक महत्त्व है। मेरे जैसे कई लोगों को पता नहीं था राम लीला उत्तर भारत में दस दिनों तक आयोजित की जाती है। राम लीला की संचालक ममता त्यागी जो रुड़की से हैं इस पर प्रकाश डाला कि उत्तर भारत में घर-घर में रामायण, रामचरित मानस, उत्तर रामायण पढ़ी जाती है। बच्चा-बच्चा श्री राम के जीवन से जुड़े हर पात्र

से परिचित होता है। वहाँ विभिन्न शहरों में बड़े-बड़े स्टेज लगाए जाते हैं। नवरात्रि के नौ दिनों में हर एक दिन रामायण के विभिन्न पक्षों को लेकर रामलीला का मंचन होता है। अधिकतर पुरुष ही हर पात्र को निभाते थे। बचपन से लेकर अब तक पूरी ज़िंदगी बहुत सारी रामलीलाओं का मंचन देखा है, कई रचनाकारों की लिखी रामायण को पढ़ा है, वर्षों अध्यापन में रही वह सारा अनुभव बटोर कर रखा है। अमेरिका में इस साल जब मोर्रिस्विल्ल की रामायण के संचालन करने का सुअवसर मिला, तब जीवन के सारे अनुभव काम आए लेकिन नई पीढ़ी के सामने शुद्ध हिन्दी में जब संचालन किया और वह सराहा गया, वह मेरे जीवन का एक अविस्मरणीय अनुभव था। बड़ी गहराई से सुधा जी ने छोटे-छोटे महत्त्वपूर्ण दृश्यों को लिखकर, साथियों संग स्वर देकर बड़ी कुशलता से अल्प समय में सम्पूर्ण रामायण को मंच पर उतार दिया।

रामलीला समापन पर है। हनुमान जॉन के साथ बच्चों की एक बड़ी वानर सेना "जय श्री राम" के नाम का उदघोष करती, साथ में भक्ति में नाचती जब हॉल में प्रकट होती है और रावण दहन के स्थान की ओर बढ़ते हैं तब हज़ारों की भीड़ "जय श्री राम" के नारे लगाती उनके पीछे उत्तेजित हो चल पड़ती है। राम के बाण से रावण का पुतला धधकता है और यहाँ मोर्रिस्विल्ल में पाँच हज़ार दर्शकों के मन में राम लीला की सुखद ज्योत प्रज्ज्वलित होती है। दर्शक अपने प्रिय पात्रों संग एक तस्वीर खिंचवाने के लिए लालायित लंबी कतारों में प्रतीक्षा करते हैं इस हर क्षण को जीती, हर क्षण की गवाह बनती मैं ख़ुद को इस आलेख के लिखने से रोक न सकी। भारत में रामलीला के मंचन की प्रथा जो विलुप्त हो रही है, अमेरिका की धरती पर डॉ. सुधा ओम ढींगरा, उनके पति और परम साथी डॉ. ओम ढींगरा और उनकी पूरी टीम अपने सच्चे परिश्रम और समर्पण से उस प्रथा को ज़िंदा रखे हुए हैं। अगली पीढ़ी के लिए उनके किए गए कार्य सदा दीप्तिमान रहेंगे।

000

परिचय-न तुम हमें जानो...

वंदना मुकेश

डॉ. वंदना मुकेश,
35 ब्रुकहाउस रोड, वॉलसॉल, इंग्लैंड
WS5 3AE
मोबाइल- 0044-7886777418
ईमेल- vandanamsharma@hotmail.co.uk

आज मैं फिज़ियोथेरेपिस्ट के पास गई थी। लगभग आधा घंटा वह मुझसे मेरे दर्द के बारे में पूछती रही कि दर्द कब होता है? जैसे, सुबह ज़्यादा होता है कि शाम को? तड़पन होती है या सड़पन? खिंचन होती है कि भड़कन? टूटन होती है कि चमकन? रह रह के दर्द उठता है या लगातार? कैसे होता है, क्या करने से अधिक होता है? क्या करने से आराम मिलता है? सारा वार्तालाप तो अंग्रेज़ी में ही हो रहा था, मैंने भी दर्द के अनेक पर्यायवाचियों के माध्यम से अपना दर्द अभिव्यक्त किया। अंग्रेज़ी में बात करते-करते हिन्दी पर्यायवाचियों को भी याद करने की कोशिश कर रही थी और सोच रही थी कि दर्द के इन हिन्दी पर्यायवाचियों का सालों-साल कोई प्रयोग नहीं किया था। ये सारे शब्द मेरी कुल जमा शब्दावली के फिक्स्ड डिपॉज़िट में चले गए थे। बैंक में फिक्स्ड डिपॉज़िट में रखा पैसा तो आड़े वक्त में काम आता है। लेकिन मेरे हिन्दी के इन दर्दीले पर्यायवाचियों को कौन समझेगा? कितना आसान है शूटिंग पेन, थ्रॉबिंग, क्रेंपिंग या टिंगलिंग, डल एक, नैगिंग या स्प्लिटिंग पेन को समझ लेना।

वह मुझे समझा रही थी कि हम आम फिज़ियोथेरेपिस्ट की तरह काम नहीं करते, हम लोग शरीर रचना विज्ञान के विशेषज्ञ फिज़ियोथेरेपिस्ट हैं। हम लोग पहले दर्द के कारणों को जानते हैं उसके अनुरूप आगे के इलाज की दिशा निश्चित करते हैं। वह कह रही थी कि दर्द की प्रक्रिया को समझना बहुत ज़रूरी है। हमारा मन, मस्तिष्क और शरीर एक दूसरे से बात करता है...कि बरबस हरिवंश राय बच्चन की पंक्तियाँ होठों पर मुस्कान ले आईं कि 'पीड़ा में आनंद जिसे हो, आए मेरी मधुशाला।' ख़ैर होम्योपैथिक डॉक्टर की तरह एक लंबे सवाल-जवाबों के दौर के पश्चात्, मैं बाहर निकली। उसके कुछ प्रश्नों के उत्तरों के जवाब मैं ठीक नहीं दे पाई, लेकिन उसने मेरे भीतर अनेक प्रश्न जगा दिए।

और मैं सोचने लगी कि क्या मैं स्वयं से परिचित हूँ? हम लोग बाहरी जगत् को जानने की कोशिश में लगे रहते हैं। नहीं, अक्सर हम लोगों को जानने-परखने की कोशिश में लगे रहते हैं। उसी के अनुरूप हमारा व्यवहार-व्यापार रहता है। किंतु, क्या हम बाहरी जगत् को उसके व्यापक अर्थ में समझते हैं, अथवा बस लोगों को ही बाहरी जगत् मान लेते हैं? क्या वास्तव में हम ख़ुद को जानते हैं? हमारा ख़ुद से कितना परिचय है, अथवा हम स्वयं को जानते ही नहीं है?... याद आ रहा है कि कुछ वर्ष पूर्व किसी बड़ी विदुषी का व्याख्यान सुनने हम एकत्रित हुए। भाषण का विषय था, 'प्रेम की शक्ति'। कार्यक्रम निर्धारित समय के आधा घंटे बाद आरंभ हुआ क्योंकि मुख्य वक्ता समय पर नहीं पहुँच सकी थीं। जब वे आईं तो परंपरा के अनुसार उनका परिचय दिया गया और बताया गया कि बाद में वे प्रश्नों के समाधान के लिए भी उपस्थित रहेंगी। भाषण हुआ, लेकिन प्रेम की अनुभूति नहीं हुई। ऐसा लगता था मानों वे विदुषी प्रेम के बजाय चमत्कार पर बोल रही थीं। भाषण ख़त्म होते ही वे कुछ रुष्ट-सी, प्रेम की बजाय 'क्रोध की शक्ति' का प्रदर्शन करते हुए वहाँ से तत्काल चली गईं। बाद में आयोजकों से पता चला कि परिचय में उनकी डिग्रियों का उल्लेख करना रह गया था, जिससे वे क्रोधित हो गई थीं। उसी समय महर्षि वाल्मीकि की भाँति दो पंक्तियाँ मेरे मुख से भी निकलीं -

कई पन्ने पढ़ लिये
तुम्हारे परिचय में
तुम्हारा बोलना ही
तुम्हारा बायोडेटा है।

कितनी बार ऐसा नौकरी के साक्षात्कारों में देखा जाता है कि आवेदन पत्र में वर्णित योग्यताओं के आधार पर दो प्रतियोगियों का चयन तो हो जाता है किंतु कम योग्य होने पर भी एक को उसके संभाषण कौशल के आधार पर नौकरी दे दी जाती है। आपका परिचय आपकी डिग्रियाँ नहीं, आपका काम है जो लोगों को अपने आप ही दिखेगा। एक कार्यक्रम में एक व्यक्ति सबसे मिलते हुए यह कह रहे थे कि आप जानते नहीं है कि मैं कितना बड़ा आदमी हूँ... कुछ लोग संकोच में उनकी बात सुन रहे थे लेकिन कुछ लोग उनकी पीठ पीछे हँसी उड़ा रहे थे।

मनुष्य के मन में स्वाभाविक रूप से स्वयं के नाम और ख्याति की बड़ी गहरी इच्छा रहती है। एक तथाकथित 'बड़े' और वयोवृद्ध सज्जन हर रोज़ फेसबुक पर अपने पन्ने पर कुछ न कुछ, सार्थक या निरर्थक, ज़रूर लिखते। उसकी कुछ बानगियाँ देखें – "दो दिन से नहा नहीं सका। पानी ठंडा लगता है।"

"यह मेरी माँ की जवानी की तस्वीर है।"

"आज खाने में आलू की सब्ज़ी और रोटी बनाई।"

"आज दो बजे डॉ. का अपॉइंटमेंट है।"

इतना ही नहीं उनके तथाकथित चाहने वाले, संकोच में ही सही, हर पोस्ट पर कमेंट करते हैं। बड़े साब के अहम् को तुष्टि हो जाती। बड़े साब को इस बात से बड़ा डर लगता है कि यदि किसी दिन पोस्ट नहीं डाल सके तो लोग उन्हें भूल जाएँगे और वे यह अपरिचय की अवस्था को कैसे बर्दाश्त कर पाएँगे? लेकिन बड़े साब, बड़ा होकर भी यह नहीं समझना चाहते कि, सब दिन जात न एक समाना। पतझड़ आने पर पत्ते भी पेड़ से छूट जाते हैं। तो हमारा नाम कौन सी बड़ी चीज़ है? परिवर्तन प्रकृति का नियम है, उसे सहज भाव में स्वीकार कर लें तो डर से मुक्ति पा लेंगे।

मनुष्य का मन बहुत ही विचित्र है। हाँ! तो मैं कह रही थी, कि हम जितना दूसरों के विषय में सोचते हैं उसमें से पच्चीस-तीस प्रतिशत भी अपने बारे में सोचें तो हमारे जीवन की अनेक समस्याएँ हल हो जाएँगी। अंग्रेज़ी बोलकर दूसरों को प्रभावित करने के चक्कर में हम अपने अन्य गुणों को प्रति लापरवाह हो जाते हैं। लेकिन देखिए आप जर्मनी, स्पेन, या किसी भी अन्य ग़ैर अंग्रेज़ी भाषीय देश में चले जाएँ तो अंग्रेज़ी भाषा काम नहीं आती। लेकिन वहीं हम जहाँ भी जाते हैं तो तत्काल आवश्यकतानुसार हम झट किसी भी नई भाषा के दो-चार शब्द बोलना तो सीख जाते हैं। लेकिन दूसरी भाषा बोलते-बोलते हम अपना क्या खो चुके, इस बात पर हमारा ध्यान कभी जा ही नहीं पाता। भाषा के साथ हम अपनी पहचान, अपनी संस्कृति, अपनी पारिवारिक पृष्ठभूमि तक बिसरा देते हैं। कितने शब्द हमारी स्मृति से बाहर हो जाते हैं-जैसे एडमिशन, इंस्ट्रक्शन, किचन, वॉशरूम... सूची लंबी है। अपनी ही भाषा के शब्द सुनने में अपरिचित, अजीब और अभद्र से लगते हैं जैसे, प्रवेश लेना, निर्देश देना, रसोईघर, स्नानघर इत्यादि।

भाषा तो एक बात हुई, हम स्वयं को भी दूसरों की नज़र से देखते हैं और अपने आपसे अनजाने में एक दूरी-सी बना लेते हैं। हम भौतिक वस्तुओं में उलझे रहते हैं। अभी एक परिचिता का पाँच वर्षीय बेटा भगवान् की पूजा करते हुए 'औरेंज रंग की लंबरगिनी' कार की माँग कर रहा था। मुझे समझ नहीं आया कि भगवान् को साष्टांग प्रणाम करवाने के लिए माँ-बाप की प्रशंसा करूँ अथवा भगवान् से महँगी कार की माँग रखवाने पर उनको कुछ उपदेश दूँ। बच्चा माँ-बाप की आँखों से दुनिया देखता है, कैसी दुनिया से परिचय करवा रहे हैं। कपड़े ब्रांडेड हो, इसकी समझ बच्चों को कहाँ होती हैं। लेकिन कभी-कभी अपराध-बोध से उबरने के लिए माँएँ यह कहने से नहीं चूकतीं, कि बच्चा मानता ही नहीं है। अच्छा, मान भी लिया कि बच्चा मानता नहीं है, लेकिन उसका परिचय किसने करवाया, उसे जिस परिवेश में बड़ा करेंगे वही उसके लिए सामान्य हो जाएगा।

हमारे आसपास के वातावरण से हम कितना कुछ सीख सकते हैं। लेकिन हम इस चकाचौंध भरे संसार में ही उलझकर रह जाते हैं। खिड़की से दूसरे की कार और अपने दरवाज़े पर अपनी कार तो खड़ी नज़र आती है। लेकिन फूल, तितली, पक्षी, पेड़- पौधों को हम देखकर भी अनदेखा कर देते हैं। प्रकृति से दूर और दूर होते जाते हैं। आकाश में बिखरे सितारे या चाँदनी रात, खुला आसमान सब हमारी पहुँच में होते हुए भी हमारे परिचय की परिधि से दूर है। मुझे याद आता है कि जब हमारी शिक्षिका हमें पूछती थी कि हमें दूध कहाँ से मिलता है तो हम कहते थे गाय से। कुछ दिन पूर्व यही प्रश्न एक बच्चे से पूछा तो उसने बताया, कि दूध टेस्को (सुपर मार्केट) से मिलता है। वैसे हर चीज़ कृत्रिम अर्थात् आर्टीफीशियल होती जा रही है। लोग घर में नकली घास बिछवा कर बगीचे का आनंद लेना चाहते हैं, लेकिन दूब कहाँ प्राप्त होगी। जब दूब से परिचय ही नहीं रहेगा तो दूब की आवश्यकता भी नहीं रहेगी। पहली बरसात में भीगी मिट्टी का सोंधी महक का ख़याल मुझे आज भी मदहोश कर देता है। लेकिन जलवायु में होते परिवर्तनों के मध्य क्या रहेगा, क्या न रहेगा, यह फिलहाल तो पहेली ही है। मेरे नाती पोते और उनके होने वाले बच्चे उस सौंधी सुगंध को अनुभूत कर सकेंगे क्या?

संपूर्ण प्राणी जगत् अन्योन्याश्रित है। एक के बगैर दूसरे का अस्तित्व संभव नहीं है। हम प्रकृति पर पूरी तरह निर्भर हैं। रोटी, कपड़ा और मकान तो हमारी मूलभूत आवश्यकताएँ हैं। हवा और पानी के विषय में तो हम कभी सोचते ही नहीं कि इनके न होने पर हमारी क्या स्थिति होगी। हमारी गाड़ियाँ भी पेट्रोल और डीजल से चलती हैं। अर्थात् हमारी प्रत्येक क्रिया और सुविधा प्रकृति प्रदत्त अथवा उस पर आश्रित है। लेकिन इस बात को पूरी तरह भुला बैठे हैं। हम तो इन सब चीज़ों को अपना अधिकार मान बैठे हैं और उसी भुलावे में अपना-अपना साम्राज्य बढ़ाने की होड़ में लगे हैं। लेकिन अपने ही दर्द को नहीं जानते। अपनों के दर्द को भी नहीं जानते। मकान ढह गए हैं, घर उजड़ गए हैं, औरतें बेवा हो गई हैं, बच्चे अनाथ हो गए हैं, उन सबकी चीखें, उन सबका दर्द उन सत्ता के अंधों के लिए अपरिचित हैं।

मेरी फिज़ियोथेरेपिस्ट ने कहा था कि हम मरीज़ के साथ इतने विस्तार से बातचीत इसलिए करते हैं कि मरीज़ स्वयं अपने दर्द को जाने, समझे। उन कारणों को खोजे, जो उसके दर्द को घटाते बढ़ाते हैं। कितनी सीधी-सादी बात हम नहीं समझ पाते। अक्सर भय भी अनजान, अपरिचित का होता है। परिचित से कैसा भय? मैं उसकी बात अच्छी तरह समझ गई हूँ। अपने शरीर और मन के अन्योन्याश्रित संबंध को समझने की ठान ली है। मैंने सोच लिया है कि धीरे -धीरे मैं अपने दर्द और शरीर से बात करूँगी और अगली बार जाऊँगी तो अपने आप से अधिक परिचित होकर जाऊँगी और इस दर्द को भगाकर ही दम लूँगी।

000

व्यंग्य

खाओ पियो मौज मनाओ पार्टी

दीपक गोस्वामी

दीपक गोस्वामी
1002, लाभ शुकन टावर, जज बंगलो के पास, बोड़क देव, अहमदाबाद 380054
मोबाइल- 9327010529

आज अचानक छेदीलाल जी अल सुबह बगीचे में टहलते हुए मिल गए। बचपन के मित्र या यूँ कहें कि लंगोटिया यार हैं तो यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगी। समय बीता, हम फटीचर ही रह गए जबकि छेदी जी दिन दूनी रात चौगुनी तरक्की करते गए। क्या धंधा करते हैं ये मुझे कभी समझ नहीं आया; क्योंकि लक्ष्मी मय्या से अपना हमेशा से छत्तीस का आँकड़ा रहा है। तो छेदी जी राजा भोज बन गए और हम गंगू तेली ही रह गए। ज़माने के रस्मो-रिवाज़ के अनुसार भोज और गंगू का मिलना भी कम होता गया।

देवानंद को आदर्श मानने वाले हमारे ज़माने के फ़ैशनेबल युवा धुएँ के छल्ले निकालते थे। बदले हुए वक़्त में अब धुएँ के छल्ले जॉगिंग में बदल गए हैं। सुबह हो या शाम, बूढ़े, बच्चे या जवान, आदमी या औरत, कुत्ते, बन्दर या बिल्ली यानी सभी सुबह शाम जॉगिंग करते हुए मिल जाते हैं। मेरा और छेदी जी का प्रात:भ्रमण भी उसी बदले हुए वक़्त की अभिव्यक्ति थी। लेकिन संयोगवश हमारा मिलना बहुत कम हो पाता था।

छेदी जी के चेहरे पर जमा चर्बी उनके बैंक बैलेंस का प्रचार कर रही थी। जबकि गालों पर छाई चमक उनके नियमित फेशियल करवाने का प्रमाण दे रही थी। सलीक़े से काले रंगे बाल किसी मधुमक्खी के छत्ते का धोखा पैदा कर रहे थे।

बेंच पर बैठ कर ज़ोर-ज़ोर से साँस ऊपर नीचे खींचने के बाद छेदी जी मुझे देख कर मुस्कराये। निर्विकार भाव से शून्य में ताकते हुए बोले-पाँच हज़ार की रसीद काटूँ या दस हज़ार की?" मैं चौंका। लेकिन मुझे ख़ुशी भी हुई कि छेदी जी मेरी हैसियत शून्य से कुछ ऊपर की तो मानते ही हैं।

मैंने प्रश्न चिह्न की मुद्रा में उनको घूरा। मेरे चेहरे पर अचानक बदले हुए भाव देख कर छेदी जी मुस्कराये और बोले-"मैंने एक राजनैतिक पार्टी बनाई है उसके लिए चंदा चाहिए।"

असली दोस्त वही होता है जो चाहे कड़वी हो लेकिन सही सलाह देता है। मैं अपनी बात आगे बढ़ते हुए बोला-"भाई बुरा न मानें तो आपकी यह राजनैतिक पार्टी निश्चित रूप से फेल हो जाएगी। भला जनता से भी कोई चंदा लेता है? चंदे के लिए तो अमीरों की तिजोरियाँ हैं न? वह क्या कहते हैं उसको इलेक्टोरल बांड। सुना है बड़े-बड़े सेठिया ख़ुशी-ख़ुशी देशभक्ति के नाम पर ये बांड खरीद कर चंदे के रूप में दान कर देते हैं।'

मैंने आगे समझाते हुए बतलाया 'जनता से चंदा नहीं लिया जाता बल्कि उनको तो लाइन में खड़ा कर के वह रंगीन फ़ोटो वाला अनाज वाला झोला मुफ़्त में बाँटा जाता है। अब आप जनता को मुफ़्त झोला न देकर चंदा माँगोगे तो सोचो क्या होगा?"

मैं अपना राजनीति का ज्ञान बघार कर अति प्रसन्नता से छेदी जी को निहारने लगा। मन ही मन सोचा कि लो भाई आप तो चंदा माँगने निकले थे अब लेने के देने पड़ गए।

घाघ शब्द किसी भी राजनेता का पर्यायवाची है इस बात का एहसास मुझे तब हुआ जब छेदी जी ने मुझे हिकारत की नज़र से देखा और मंद-मंद मुस्कराने लगे। मुझे शशोपंज में पड़ा देख कर वह बोले-"ये विषय बहुत जटिल है। मैंने प्रसिद्ध मैनेजमेंट एक्सपर्ट और इकोनॉमिस्ट शांति

नारायण को अपना राजनैतिक सलाहकार नियुक्त किया है। ऑक्सफ़ोर्ड, हॉवर्ड और पता नहीं कहाँ-कहाँ से डिग्री लेकर ये सज्जन राजनीति विज्ञान में महारत हासिल कर चुके हैं।''

''लेकिन राजनीति में हॉवर्ड की जगह हार्ड-वर्क या जुगाड़-वर्क ज़्यादा काम आता है।'' मैंने इशारों ही इशारों में समझाने की कोशिश की।

छेदी जी ने जेब से पॉलीथिन में लिपटा हुआ खैनी का पैकेट निकाला। और फिर मज़े से अपनी हथेली पर चुटकी भर खैनी लेकर चूना मलने लगे। संवाद में आई ख़ामोशी को छेदी जी ने ज़ोर-ज़ोर से ताली पीट कर डस्ट उड़ाते हुए दूर किया। इत्मीनान से खैनी को ओठों के बीच दबा कर छेदीजी फिर धीरे से बुदबुदाए-''समय बदल गया है। अब सब जगह कॉर्पोरेट कल्चर आ गया है। तकनीक और विज्ञान का ज़माना है। साम्यवाद विफल हो चुका है, उसकी जगह फिर से तानाशाही राज आ चुका है। समस्त विश्व में पूँजीवाद का बोलबोला है। इसलिए यह नया राजनीति का मॉडल अब सिर्फ़ और सिर्फ़ पैसे के बल पर ही चलता है।''

''सो तो है लेकिन सिस्टम तो पैसे देकर वोट ख़रीदने का है और आप तो जनता से ही पैसे माँगने चले हो?'' मैंने फिर अपनी विद्वता झाड़ी लेकिन छेदी बेअसर दिखे।

"देखो भाई अब कान को घुमा कर पकड़ने का वक़्त चला गया है। हर चीज़ ख़ुरीदी या बेची जा सकती है। वह मुफ़्त का राशन भी आपके ही पैसों से ख़रीद कर आपको एहसान दिखा कर वापस टिकाया जाता है। आख़िर जनता ही तो तरह-तरह के टैक्स देती है। जनता का ही पैसा है, कोई पैसे पेड़ों पर थोड़े ही लगते हैं?'' मेरे चेहरे पर उकताहट और कन्फ़्यूज़न की गहरी रेखाएँ देख कर छेदी जी थोड़ा रुके और समझाते हुए बोले- ''जनता सब जानती है। पैसा कहाँ से आता है, कहाँ जाता है। कौन कितना ईमानदार है और कौन कितना भ्रष्ट, यह सब अब वोटर के लिए मायने नहीं रखता। चाकू खरबूजे पर गिरे या खरबूजा चाकू पर, कटना तो खरबूजे को ही है। इसीलिए अब हम राजनीति में एक नया मॉडल लेकर आ रहे हैं जिसका नाम है- ''खाओ पियो मौज़ मनाओ पार्टी।''

''खाओ पियो मौज़ मनाओ पार्टी? भला यह कैसा नाम है? इसके तो नाम से ही घपले की बू आ रही है?''

''जी हाँ, इसको हम ईमानदारी से की गई बेईमानी कह सकते हैं।''

''वो कैसे?''

''देखो भाई, रिश्वत तो देनी ही पड़ती है फिर क्यों न हम रिश्वत का एक रेट कार्ड बना कर इसे एक सर्विस का नाम दे दें? हर काम का एक रेट फिक्स रहेगा और समय-समय पर मार्किट फोर्सेज़ के अनुसार बदलता रहेगा। अब लुकाने छिपाने का क्या लाभ? राशन कार्ड हो या ड्राइविंग लाइसेंस सब काम घर बैठे करवाएँ और बदले में हमको फीस चुकाएँ। सरकारी कॉन्ट्रेक्ट हो या स्कूल में एडमिशन, अगर आप मेंबर हैं तो आपको डिस्काउंट मिलेगा। मेम्बरशिप के कई रेट कार्ड हैं। पाँच हज़ार वाली सामान्य या पाँच करोड़ वाली लक्ज़री।''

''पाँच करोड़?''

''इससे भी ज़्यादा। जितना इन्वेस्टमेंट उतना बड़ा लाभ। जैसे कि कोई ठेका लेना हो या पार्लियामेंट की सीट इत्यादि। कुछ जगह तो प्रतिस्पर्धात्मक बोली लगाने का भी प्रावधान रखा गया है। विशुद्ध कारोबार है।''

''वाह वाह इसे कहते हैं खुल्ला खेल फरूखाबादी।''

''जी हाँ, धंधे का मामला है। धंधे के नियम हैं और कोई लाग लपेट नहीं, कोई भाई भतीजावाद नहीं। जितना गुड़ डालो उतना ही मीठा होगा यानी जितना बड़ा इन्वेस्टमेंट उतना ही बड़ा लाभ लेने के अवसर। सबके लिए समानता, चाहे कोई भी जाति या धर्म हो, सबके लिए जुड़ाव यानी अनेकता में एकता-एक राष्ट्र एक ही भाषा-पैसे की भाषा।''

मैंने आव देखा न ताव मोबाइल में अपने अकाउंट का बैलेंस चेक किया और तुरत फुरत में पाँच हज़ार रुपये ट्रांस्फ़र कर दिए क्योंकि अर्ली बर्ड डिस्काउंट जो लेना था।

000

दोहे

दोहे

डॉ. गोपाल राजगोपाल

भरी पड़ी हैं पोथियाँ, जिनमें लाखों शब्द।
'माँ' की व्याख्या जब करूँ, मैं होता नि:शब्द।।
चीज़ों को बाज़ार से, लाकर देते तात।
मगर बरतना चीज़ का, समझाती बस मात।।
आई याद विमान में, बचपन की वो बात।
माँ कहती थी-लौटना, छूकर अम्बर सात।।
माँ के विधि-विधान में, जीवन का आलाप।
पुत्र पराया हो भले, कभी ना देती श्राप।।
आकर गंगा घाट पर, सब धो लेते पाप।
ख़ुद मैली होती नहीं, गंगा अपने आप।।
बेटी माँ से कह रही, पड़ी सोच में आज।
दकियानूसी ही रहा, अपना सभ्य समाज।।
आजा सरहद पार से बेटा, अंतिम बार।
बापू गुज़रे रात को, बरसों थे बीमार।।
ट्रेक्टर ट्रॉली देख कर, हुई नदी मायूस।
ले जाएगी आज फिर, बेटी को मनहूस।।
नहीं लुटाती माँ अगर, ममता आठों याम।
राम न बनते राम फिर, श्याम न बनते श्याम।।
ममता के करती नहीं, माता बंद कपाट।
वह जीवन को सींचती, ज्यों नदिया का पाट।।
जग में मूरत त्याग की, कहाँ मिलेगी अन्य।
माता के आशीष से, होता जीवन होता धन्य।।
माता ने उर में किये, जमा पाँच जब तत्त्व।
हुआ तभी संतान का, दुनिया में अस्तित्व।।
माता की हर सीख से, जीवन में है साख।
डिग्री-डिप्लोमा सभी, जिसके आगे राख।।

000

डॉ. गोपाल राजगोपाल
आचार्य एवं राजभाषा संपर्क अधिकारी
आर.एन.टी.मेडिकल कॉलेज, उदयपुर
313001 राजस्थान
मोबाइल- 9414342523

व्यंग्य

दीमकों का उर्दू साहित्य से प्रेम

उर्दू व्यंग्य रचना

मूल रचनाकार - मुजतबा हुसैन

अनुवाद - अखतर अली

अखतर अली
निकट मेडी हेल्थ हास्पिटल, आमानाका, रायपुर (छत्तीसगढ़)
मोबाइल- 9826126781

उस लाइब्रेरी में उर्दू साहित्य का विशाल भंडार था जिसे हम दोस्तों ने कभी लाइब्रेरी नहीं माना, हम उसे क़ब्रस्तान कहते थे। कहते थे ये वो क़ब्रस्तान है जिसमें उर्दू साहित्य दफ़न है। उस लाईब्रेरी में क़ब्रस्तान जैसी वीरानी रहती थी। उर्दू की किताबों को चुन-चुन कर यहाँ दफ़नाने के लिये लाया गया था। सैकड़ों किताबें लेकिन पढ़ने वाला कोई नहीं। आलमारियों में किताबें बरसों से पड़ी धूल खा रही थीं। उस लाइब्रेरी में लाइब्रेरियन के अलावा कोई नहीं आता था।

लंबे अरसे के बाद एक दिन कुछ यूँ हुआ कि मेरे को इस लाइब्रेरी के पास किसी से मिलना था और उस व्यक्ति को आने में कुछ समय था अत: समय बिताने के लिये मैं उसी लाइब्रेरी में चला गया। वहाँ पुराने ज़माने के कुर्सी टेबल पर लाइब्रेरियन सो रहा था और उसके सिर पर कुर्सी टेबल जैसा पुराना पंखा चल रहा था। पंखे की चलने की गति और लाइब्रेरियन की साँस लेने की गति एक समान थी।

मैं सीधा अंदर चला गया। वहाँ मेरे को ऐसा लगने लगा मैं किसी भूत बंगले में आ गया हूँ। मैंने डरते-डरते धूल में भरी हुई "कुलिय्यात ए मीर" खोली तो देखा उस में से दीमक भागने की कोशिश कर रही है। मैं उसे मारना ही चाहता था कि अचानक दीमक ने कृश्नचंदर के गधे की तरह कहा–ख़बरदार जो मेरे को हाथ लगाया तो मैं दीमकों की मलिका हूँ और अब उर्दू साहित्य पर हमारी हुकूमत है। मैं अभी-अभी मुहम्मद हुसैन आज़ाद की "आब ए हयात" चट करी हूँ जो आब ए हयात को निगल ले उसे भला कौन मार सकता है ? क़ातिल से दबने वाले ए आसमाँ नहीं हम।

दीमक के मुँह इतनी अच्छी उर्दू सुन कर मैं दंग रह गया। मैंने आश्चर्य से कहा – तुम तो बहुत अच्छी उर्दू बोल लेती हो।

दीमक बोली – अब हम दीमकों का तो उठना-बैठना, खाना-पीना ओढ़ना-बिछाना सब उर्दू साहित्य ही तो है। तुम्हारे लिये भले यह पुस्तकालय है मेरे लिये तो खाद्य विभाग का गोदाम है। उर्दू साहित्य के बीच हम लोग बहुत सुख और शांति से रहते हैं, इधर कोई हमें परेशान करने नहीं आता। आज तुम आए हो तो जान लो मुद्दतों बाद कोई आया है, लगता है तुम भी लेखक हो।

दीमक की यह बात मेरे को बहुत सुकून दे गई कि किसी ने तो स्वीकारा कि मैं लेखक हूँ। मैंने दीमक से पूछा–तुम्हें कैसे मालूम कि मैं लेखक हूँ ?

दीमक बोली–एक बार मैं एक रिसाले के व्यंग्य विशेषांक को खा रही थी उसी में तुम्हारी फ़ोटो देखी थी। मैंने तुमको थोड़ा सा खाया भी था लेकिन मज़ा नहीं आया। तुमने फ़ोटो जवानी वाली लगाई थी, उर्दू रचनाकारों की यह आदत बहुत ख़राब है आप लोग रचना के साथ फ़ोटो जवानी वाली देते हो और रचना बच्चों जैसी होती है, फ़ोटो भले बचपन वाली हो पर लेखन में जवानी होनी चाहिए।

मैंने कहा–उर्दू साहित्यकारों के बारे में तुम्हारी जानकारी गहरी है, और कुछ सुनाओ।

दीमक बोली–तुमने ग़ालिब को कभी बिना टोपी के देखा है, नहीं देखा है तो पीछे वाली रैक में जो ग़ालिब का दीवान है उसे देखो मैंने उनकी टोपी खा ली है मैं तो दाढ़ी भी खाने वाली थी फिर सोचा टोपी और दाढ़ी दोनों खा लूँगी तो फिर ग़ालिब को लोग वैसे ही पहचान नहीं पाएँगे जैसे उनकी शायरी को समझ नहीं पाते हैं। दीवान ए ग़ालिब का मुख्य पृष्ठ हमारी खाऊ कला का जीता-जागता नमूना है। पहले तो ग़ालिब मेरे को भी समझ नहीं आ रहे थे फिर अली सरदार जाफरी द्वारा संपादित किताब के चार पन्ने खाई तब कहीं जाकर उनको खाने में मज़ा आया। तस्वीरों में मुस्कराहट मेरे को बहुत पसंद है ख़ासकर मोनालिसा का चेहरा तो बहुत ही पसंद है। उसके चेहरे के ज़ायका का क्या कहने, उसमें जो तरी है वह तो कमाल की है उसे खाओ तो पेट भर जाए पर मन न भरे।

एक बार मैंने जोश मलीहाबादी की रूबाई चाट ली थी बाप रे इतना जी मतलाने लगा था कि

क्या बोलूँ, जब जाँनिसार अखतर साहब की घर-आँगन वाली शायरी के चंद शेर खाई तब ज़रा राहत मिली। इतना काबिल शायर पर न बिका, न टिका।

मैंने पूछा–तुमने तो समूचा उर्दू साहित्य चाट लिया है तो यह बताओ दाग़ देहलवी के बारे में तुम्हारी क्या राय है।

दीमक बोली–इनकी ग़ज़लें खाने की लालच में दीमकों की टोलियाँ कोठे पर जा बैठी हैं। मेरे को तो इनकी शायरी सारंगी तबले के बगैर समझ ही नहीं आती है।

और मौलाना आज़ाद ?

दीमक बोली–मौलाना के साथ अजीब हादसा हुआ। ज़िंदगी भर अरबी लिखते रहे और लोग उसे उर्दू समझ कर पढ़ते रहे। अरबी का यह एकमात्र शायर है जो उर्दू में मशहूर हुआ।

मैंने कहा– तुमने तो समूचा उर्दू साहित्य चट कर लिया है, बताओ यह तुम्हें कैसा लगा?

दीमक बोली–जो किताब बीवी के ज़ेवर बेच कर छपाई गई थी उनका स्वाद कसैला था, ग़लत छपाई वाला पृष्ठ खाओ तो ऐसा लगता है जैसे चावल में कंकड़ आ गया हो। जो किताब उर्दू अकादमी की मदद से छापी गई है उसकी तो बात ही निराली होती है चिकने कागज़ खाने में मज़ा आ जाता है। भले उसमें साहित्य उम्दा न हो पर काग़ज़ बढ़िया होता है। इन किताबों में शुक्रिया इतना अदा किया जाता है, इतना आभार व्यक्त किया जाता है कि उसके नीचे दब कर साहित्य का दम घुट जाता है। एक किताब चमड़े के व्यापारी से प्राप्त आर्थिक सहयोग से प्रकाशित की गई थी। विमोचन समारोह में उर्दू के लेखक उसके आगे-पीछे ऐसे नाच रहे थे कि समझ नहीं आ रहा था ये किस चीज़ का व्यापारी है चमड़े का कि चमड़ी का ?

मैंने कहा तो क्या उर्दू के लेखकों को अब किसी का शुक्रिया अदा नहीं करना चाहिए ?

दीमक बोली–अदा करना चाहिए लेकिन सिर्फ़ मेरा; क्योंकि अब मेरे अतिरिक्त कोई भी उर्दू साहित्य की तरफ़ देखता भी नहीं है।

000

ग़ज़ल

ग़ज़ल

जय चक्रवर्ती

बन्दीगृह में क़ैद दरिंदे छोड़े जाएँगे,
बेरहमी से चिड़ियों के पर नोचे जाएँगे
दौड़ रहा है अश्व अहं का वल्गाएँ तोड़े,
तय है अब जन गण के सपने रौंदे जाएँगे
चौतरफा अंधेर मचा है, चौपट राजा है,
सोना-पीतल एक बराबर तोले जाएँगे
धरती से अंबर तक की सत्ता हथियाने को,
साँपों से गिद्धों के रिश्ते जोड़े जाएँगे
बच न सकेगा कोई, अब पूरी तैयारी है,
अंतिम क़तरे तक सब जिस्म निचोड़े जाएँगे
000

इस डगर या उस डगर तय कीजिए,
आपको जाना किधर तय कीजिए
प्यार के दो दिन कि नफ़रत की सदी ?
आप ख़ुद अपनी डगर तय कीजिए
जाएगी लेकर कहाँ ये ज़िन्दगी,
तय नहीं कुछ भी, मगर तय कीजिए
बात वापस लौटकर आती नहीं,
बोलना क्या, सोचकर तय कीजिए
कब रुका है वक़्त किसके वास्ते,
वक़्त अपना वक़्त पर तय कीजिए
000

पाँच अंजुरी मुफ्त राशन एक अंधी कोठरी,
एक राशन-कार्ड भर है आदमी की ज़िंदगी
मज़हबों के नाम पर नफ़रत की फ़सलें हर तरफ,
राजसत्ता के लिए वरदान है त्रासदी
सल्तनत ने दी रियाया को मदद कुछ इस तरह,
एक टन अहसान, केवल एक रत्ती सब्सिडी
छीलना चमड़ी सरापा, बाद में पुचकारना,
है हुकूमत के लिए हिकमत ये कितनी लाजिमी
उम्र-भर मिल-बाँट कर हमने जिये सुख और दुख,
आपकी इस बादशाहत में हुए हम अजनबी
000

है खड़ा सामने तेरे हर वक़्त डर,
या तो विद्रोह कर, या कि बेमौत मर
क्यों बिजूका बना फिर रहा हर समय,
आदमी-सा तो दिख आदमी है अगर
थोड़ी ज़िद थोड़ा सच थोड़ा ईमान रख,
ताकि हो तेरी आवाज़ का कुछ असर
छोड़ मत सोचना, देखना, बोलना,
तेरी बोटी पे चीलों की चस्पाँ नज़र
तेरे होने की देंगी गवाही यही,
चंद चिनगारियाँ दिल में रख ढूँढ़कर
000

उगलते आग हो हरदम ज़बाँ से,
तुम्हें मिलती है ये हिम्मत कहाँ से?
अगर ये ज़िन्दगी इक इम्तिहाँ है,
डरें हम किसलिए फिर इम्तिहाँ से
तलाशो हमसफ़र कोई यहीं पर,
नहीं उतरेगा कोई आसमाँ से
हदें अपनी अगर पहचाननी हैं,
घटाकर देख ख़ुद को कारवाँ से
चमन में हर तरफ है क्यों उदासी,
उठो, बेख़ौफ़ पूछो बागवाँ से
000

जय चक्रवर्ती
एम.1/149. जवाहरविहार,
रायबरेली-229010 उप्र
मोबाइल- 9839665691
ईमेल - jai.chakrawarti@gmail.com

ग्रैंड कैनियन का सफ़र-तृष्णा या तृप्ति

रेखा भाटिया

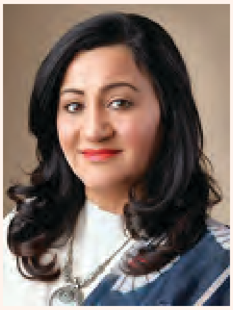

रेखा भाटिया
9305 लिंडन ट्री लेन, शार्लोट, नॉर्थ कैरोलाइना, यू एस ए -28277
मोबाइल- 704.975.4898
ईमेल- rekhabhatia@hotmail.com

अब शुरू से शुरुआत करते हैं क्रमश: से आगे क्योंकि सफ़र अभी जारी है। ग्रैंड कैनियन की उस अधूरी प्रेम कहानी को पूरा करने का। क्या था पूरा वाक़या जानने के लिए कहानी को आगे बढ़ाना पड़ेगा?

यह साधारण यात्रा संस्मरण है या एक निश्चित होनी या एक असाधारण अनुभव है, यह आप सुनिश्चित करें! स्कूल में शिक्षिका ने अध्यापन के दौरान जानकारी दी तब पहली बार जाना, "पृथ्वी का केंद्र निफे 3000 किलोमीटर से बड़ा है और यहाँ चट्टानें पिघली अवस्था में रहती हैं। पृथ्वी पर ही स्थान है ग्रैंड कैनियन यहाँ पृथ्वी की भीतरी सतह डेढ़ किलोमीटर से ज़्यादा उजागर है, यहाँ पृथ्वी की भीतरी संरचना के विभिन्न समय कालों की चट्टानों की परतें देखी जा सकती है। इस सतह की तलहटी में कोलोराडो नदी बहती है। एक तीव्र उत्तेजना, रोमांच और एक स्वप्न हृदय के भीतर जहाज़ के लंगर की भाँति मज़बूती से हुक डालकर बैठ गया।

प्रारब्ध था जीवन में अमेरिका आ गए। संघर्षों में स्वप्न कहीं धुँधला पड़ गया और स्मृतियों में से ओझल हो गया। वह कहते हैं न, "जिसे दिल से पाने की ख़्वाहिश करो, ब्रह्माण्ड उसे तुमसे मिलाने की कोशिश करता है।" मुझे लगता मैं सफ़ेद कबूतर हूँ जो जन्मों-जन्मों से ग्रैंड कैनियन की तलाश में भटक रहा है। मेरी मार्गदर्शिका ने कई बार आगाह किया, समझाया कि प्रकृति का आनंद सब जगह है, भीतर है, बाहर है, थोड़ा ठहरो, सँभलो क्यों इतनी बेचैन रहती हो? यह बेचैनी अच्छी नहीं है।"

मैं जीवन के कार्यों, लेखन, नृत्य और पेंटिंग के बीच से समय चुराकर उसे यूट्यूब पर देखती। उसे देखने की मेरी तृष्णा भीतर ही भीतर विशालता ले रही थी। एक फितूर भर गया दिमाग़ में। वैसे यह कोई बड़ी बात नहीं है अमेरिका और पूरी दुनिया से हर साल पचास लाख लोग ग्रैंड कैनियन देखने आते हैं, एक सामान्य बात है फिर क्या ख़ास था।

मेरी यात्रा की कहानी को आगे बढ़ाते हैं। सन् 2021 में कोरोना (कोरोना तो शायद अब भी है) के बाद कैलिफ़ोर्निया से ग्रैंड कैनियन जाने का प्रोग्राम बनाया। कैलिफ़ोर्निया गए थे बच्चों के पास पर वहाँ जाकर ग्रैंड कैनियन जाने की ज़िद पकड़ ली। बच्चे ख़ुश न हुए लेकिन सारी योजना

बना होटल, कार रेंटल और हवाई टिकट्स करवा दिए। महीना था कड़कड़ाती ठंड दिसंबर का। उसी समय में पूरा अमेरिका सड़कों पर घूमने निकल पड़ा था। कारों की कमी आ गई। कोरोना में सप्लाई पर बुरा असर पड़ा। बस इतना जान लीजिए एक दिन का कार का किराया तीन सौ डॉलर था। घूमने की सीजन में हवाई टिकट, होटल बहुत महँगे थे। साथ ही मैंने ग्रैंड कैनियन की तलहटी में उतरने के लिए हेलीकॉप्टर का टूर भी बुक कर लिया। अब हर दिन मैं ग्रैंड कैनियन की जलवायु जाँच लेती। शुरू में स्नो पड़ने के कोई आसार नहीं थे, बाद में 40 प्रतिशत स्नो (बर्फ़) गिरने के आसार दिखाई पड़े। मैंने झटपट फ्लैगस्टाफ़ शहर (ग्रैंड कैनियन से डेढ़ घंटा दूर) में बुक होटल को कैंसिल कर ग्रैंड कैनियन के भीतर गाँव में होटल करवा दिया। फ्लैगस्टाफ़ में बुक होटल का किराया वापस नहीं मिला लेकिन मुझे तो हर हाल में ग्रैंड कैनियन जाने की तृष्णा ने लपेट रखा था। कैलिफ़ोर्निया से एरिज़ोना स्टेट की राजधानी फीनिक्स की उड़ान भरी। फीनिक्स में बारिश पड़ चुकी थी, मौसम ठंडा था लेकिन शहर में पहाड़ देख कर मैं रोमांच से भर उठी। कार लेकर जब सपाट, उबड़-खाबड़ पथरीले, केक्टस से घिरे मीलों खुले मैदान, चट्टानें और पहाड़ों के मध्य गाड़ी भागने लगी मैं अपनी सुधबुध खो बैठी। यहाँ मीलों तक धरती, उसकी विविधता, भूरी-पीली रंग की चट्टानें और भिन्न-भिन्न पहाड़ देखकर आँखों में तारे नाचने लगे। हाईवे दूर मीलों तक दिखाई देता, " दिखाई दिए यूँ कि बेख़ुद किया" हिन्दी गाने की तर्ज़ पर रंगीन सपने आँखों में तैरते रहे।

रास्ते भर इसी विविधता में खोये रहे। रास्ते में कैंप वरडे शहर में बादलों ने पहाड़ों पर नाचना-कूदना शुरू कर दिया, हम पहाड़ों पर बादलों की अठखेलियों में मग्न हो गए। प्रकृति को निहारना भाता है लेकिन जिस रूप का सम्मोहन मन में लिए हम प्रकृति को निहारना चाहें, वह ज़रूरी नहीं उस वक्त उस स्थान पर वैसा ही मिले। यह तर्क जीवन के कितना क़रीब है, यह अब समझ पाई हूँ। हम

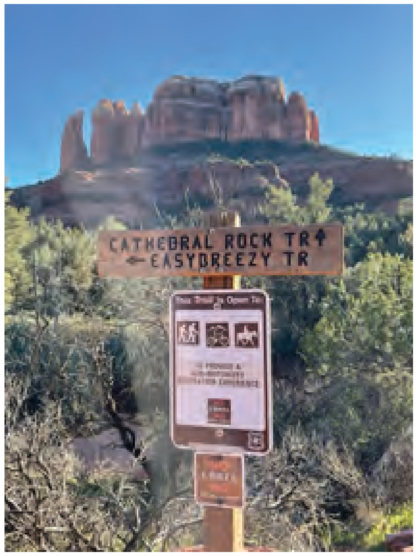

एक यात्रा पर निकले, सब कुछ उत्तम था। पैसा पास में, अच्छा स्वास्थ, बहुत उत्साह, यात्रा का सारा इंतज़ाम बहुत बढ़िया, अच्छी विश्वसनीय कार, होटल ! अंत में एक बात भूल जाते हैं कर्म तेरे बस में है, परिणाम नहीं। यात्रा चल रही थी, बादलों ने अब अपना खेल खेलना शुरू किया। अचानक घटाएँ घिर आईं और श्याम बादलों ने धरती को चूमना शुरू किया। पहाड़ आधे-बादलों में खो गए, स्याह पड़ गए, दिन का उजाला वैसे ही स्याह था।

जब पहुँचे ग्रैंड कैनियन नेशनल पार्क, पार्क के बाहर कारों की लंबी कतारों के पीछे कार रोकनी पड़ी। कई कारें स्नो में फँसी हुई थीं। नंबर आते-आते हम विवेक शून्य, ऊँची उम्मीदों के साथ पार्क में प्रवेश कर गए। पार्क में जमा बर्फ़ की परतों ने धरती को ढँक रखा था, पाइन ट्री के जंगल और उसमें मंगल

एल्क और हिरणों के झुण्ड दिखाई दिए। लगा स्वर्ग में विचरण कर रहे हैं। लेकिन कहाँ हैं लाल रंग की सम्मोहिनी ग्रैंड कैनियन की वादियाँ और पहाड़ ? तब पहाड़ों और कैनियन का अंतर यानी परिभाषा भी पता नहीं थी। एक भटकाव, एक छलावा बस यही लिखा था इस यात्रा में। मैप देखकर कुछ समझ न आया, एक पार्किंग लॉट में रुक एक पर्यटक से पूछा। पार्किंग लॉट में बहुत बर्फ़ जमा थी।

सूरज अब क्षितिज के अंतिम छोर पर पहुँच रहा था। जल्दबाज़ी में जो हाथ में आया गिलाफ़, मफलर और हम गाड़ी से बाहर निकल आए। हम चले भागते, सूर्यास्त के दृश्य की तलाश में सूरज के डूबने से पहले। जब पहुँचे ग्रैंड कैनियन के अंतिम दर्शनों के लिए, एक शांत स्वर्ग, अलौकिक आभा मंडल लिए कोहरे और गहरे बादलों से ढका था, जिस पर रुपहली सुनहरी, नारंगी, कोमल सूर्य की अंतिम किरणें पड़ रही थीं। मैंने आँखों से नहीं कैमरे से उस दृश्य को मन में क़ैद करना अधिक उचित समझा। आँखों पर विश्वास कम हो रहा था एक परिमंडल कुछ मिनटों में नज़रें कैसे पकड़ पातीं ? ठंड में मेरी उँगलियाँ नीली पड़ जमने लगीं, पैरों में बूट्स थे लेकिन सुन्न पड़ता शरीर। तुरंत फ़ैसला लिया होटल चला जाए, कल आ जाएँगे यह सोचकर ! मेरे साथी का हाल मुझसे भी बुरा था। होटल में चेक इन की लंबी कतार, खाने का ठिकाना नहीं, घनी-काली रात। होटल जाकर ख़ूब प्लानिंग की हमने कि सुबह जल्दी उठकर हेलीकॉप्टर में बैठकर स्वर्ग घूम लेंगे, फिर उस स्वर्ग की पगडंडियों पर विचरण करेंगे, फलाँ-फलाँ करेंगे। रात ही फ्लाइट की टिकेट्स दोबारा बुक कीं। आज का दिन नष्ट हो चुका था, बर्फ़ और कारों की लंबी कतारों की वजह से पार्क में आते-आते सात-आठ घंटे लगे थे। रेंटल कार की अवधि बढ़ाई। होटल में स्टे बढ़ा दिया। रात को सिर्फ़ 40 प्रतिशत स्नो गिरने की संभावना थी ! यही एक डर था जो बेवजह परेशान कर रहा था। यक़ीन मानिए अमेरिका में ज़र, ज़मीन का विश्वास करना लेकिन जाड़े का नहीं। उत्तेजना में सुबह

तड़के उठे, बाहर खिड़की से झाँका ग्रैंड कैनियन विलेज की सड़कें सफ़ेद कंबल पहने, ओझल हुई गहरी नींद में सो रही थीं। शरीर पर कई परतें चढ़ा लीं जाड़े से बचने के लिए। हम सारे हथियारों संग यारां तैयार थे सैनिकों की भाँति मोर्चे पर जाने के लिए। बर्फ़ साफ की, जल्द गाड़ी में बैठे, सफ़ेद धरती पर फिसलन भरे बर्फ़ के ढेरों के बीच बमुश्किल रास्तों पर चले, मन बैठा जा रहा था। जब मेदर पॉइंट पहुँचे, ग्रैंड कैनियन की साउथ रिम बादलों के मोटे कंबल से ढकी शीत में काँप रही थी। यह स्वर्ग तो बादलों के शहर में तब्दील हो चुका था, घाटी के किनारे से लगी बर्फ़ से ढकी कैनियन के अलावा कुछ नज़र न आता था। सब कुछ बहुत ख़ूबसूरत था लेकिन इंसानी अपेक्षाओं के विरुद्ध था। पर्यटकों की भीड़ में रोते-काँपते बच्चे, कलपते लोग, ठंड से बचते बुज़ुर्ग और टूटा हुआ टुकड़ों में हमारा दिल। और हाँ यह बताना भूल गई यहाँ, हेलिकॉप्टर का टूर भी कैंसिल हो गया था जिसने आसमान से हमें ज़मीन पर ला पटका था। मेरा बचपन का पला स्वप्न टूटा था, मेरी तृष्णा अब चरम पर थी। मैं रो पड़ी।

सिलसिला यह चला कि दो बार होटल, फ्लाइट, रेंटल कार बुक हुए। हम फीनिक्स से ग्रैंड कैनियन और वापस स्नो फॉल में ड्राइव कर फीनिक्स कुल 25 घंटे की ड्राइविंग की। पैसे ख़र्च होते रहे, मेरी तृष्णा और हमारी ख़ैरियत पर। तीन बार ग्रैंड कैनियन पार्क में जब भीतर प्रवेश किया, सड़कें थीं कहाँ, हालत खस्ता थी। जब-जब मेदर पॉइंट पर पहुँचे, श्याम बादलों और बर्फ़ का गहरा तालमेल, सम्पूर्ण ग्रैंड कैनियन सफ़ेदी में डूब कर स्याह पड़ रही थी ठिठुर कर। कहीं-कहीं कोई बादल का टुकड़ा शरारत करता, दूर एक दृश्य उभरता, चोटी पर जमा बर्फ़ किसी एक कैनियन की झलक कुछ सेकंड दिखाई देती। मैं रुआँसी हो आई थी, कहाँ है शिव, कहाँ हैं मेरे इष्ट, कहाँ है विष्णु टेम्पल, ब्रह्मा टेम्पल, सारी सृष्टि गुटमुट हो सफ़ेदी में रम गई थी!

आप सोच रहे होगें मैं इसे एक प्रेम कहानी का नाम क्यों दे रही हूँ जिसे मैं अधूरा मान रही हूँ ? ग्रैंड कैनियन की रूह मेरी रूह से कैसे

जुड़ी ?अब वक्त आ गया है उस रहस्य को जानने का ! मेरी कहानी को अब तक पढ़ रहे हैं, आपका बहुत शुक्रिया।

जीवन का एक कटु सत्य है। हम जिन्हें बहुत प्यार करते हैं, उन रिश्तों पर हम स्वयं को पूरी तरह आश्रित कर लेते हैं। जैसे सुबह सूर्य पर, रात शाम पर, वर्षा बादलों पर, प्रकृति में एक-दूसरे पर आश्रित निश्छल प्रक्रिया। मैं भी पूरी तरह समर्पित थी, उन रिश्तों में मेरी दुनिया बसी थी। मैंने किसी को भी मेरी दुनिया में उन रिश्तों के अलावा प्रवेश नहीं करने दिया। मोह भटकाता है रिश्तों के जाल में, एक छलावा है और तब बुद्धि मंद पड़ जाती है। कुछ भी स्थायी नहीं है, गीता में लिखा है। लेकिन जिन रिश्तों के जाल में मैं उलझी रही। जब उनका छल मेरे सामने आया, मैंने उनकी ईमानदारी और सच्चाई पर सीधे प्रश्न खड़ा

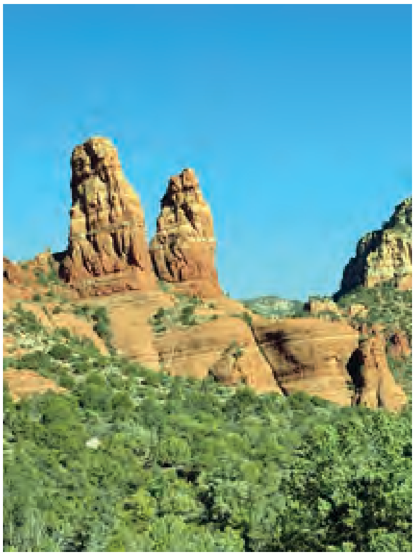

किया। मेरे स्वाभिमान के लिए मैंने वह रिश्ते तोड़ दिए। अब मैं दुनिया में अकेली खड़ी थी, अकेलेपन की मार से त्रस्त। मन स्वीकार नहीं कर पा रहा था, ऐसा भी हो सकता है और वह भी मेरे साथ!

हैरान-परेशान अपने आप को सँभालने के लिए मैं प्रकृति प्रेमी, फिर से प्रकृति की गोद में सुकून तलाशती उसके क़रीब जाने लगी। मेरी अतृप्त तृष्णा अब गहरी हो मुझे बेचैन करने लगी, ग्रैंड कैनियन में मुझे मेरे इष्ट मिलेंगे। एक ज़िद, सुकून और शांति की तलाश में भटकता मन। एक आस्था बढ़ रही थी। यह सच है, आप जिस भी हाल में हैं प्रकृति हर हाल में आपको अपनाकर आपके घावों को भरने लगती है, बड़े प्यार से दुलारती है। मेरा फितूर बढ़ा, साथी ने सलाह दी बसंत में लॉस वेगस से चलते हैं, स्नो भी बंद हो जाएगी। यहाँ से शुरुआत हुई मेरी दूसरी यात्रा की, आ पहुँचे लॉस वेगस। एक यात्रा का वृतांत आप जान चुके हैं, अब दोबारा तलाश ग्रैंड कैनियन की।

सन् 2023 मार्च अंत का समय, तगड़ा बंदोबस्त किया गया, मौसम का हॉल दुरुस्त था। आठ दिन, सात रातें, रिसोर्ट बुक था। समय ही समय था। यूटाह स्ट्रेट और नवाडा स्ट्रेट दोनों राज्यों की खाक छान ली, घूमा-फिरा। चौथे दिन पूरे गाजे-बाजे और तैयारी संग सुबह तड़के निकल पड़े। मौसम बहुत ठंडा था लेकिन उस दिन धूप निकल आई थी, घटाओं ने आज तीन दिन बाद विदाई ली थी।

हम अपनी ही धुन में बढ़ रहे थे। कुछ घंटों बाद जब हम एरिज़ोना स्ट्रेट के हाईवे 40 पर पहुँचे, अचानक हमारी कार का पिछला टायर एक बड़े खड्ड से गुज़रा और पंचर हो गया। किसी तरह साथी ने कार का संतुलन सँभाला। असंतुलित कार किसी ट्रक से टकरा जाती, तब हम किसी बड़ी दुर्घटना के अवश्य शिकार हो जाते। पिछली यात्रा में हाईवे पर स्नो के तूफ़ान और जमी बर्फ़ में भी हमने घंटों कार चलाई थी परन्तु आज नियति को फिर कुछ और ही मंज़ूर था। कार को सड़क के किनारे रोक दिया। यहाँ फ़ोन और इंटरनेट के सिग्नल बमुश्किल मिल रहे थे। पिछली यात्रा में मौसम आड़े आया, इस यात्रा में परिवहन। हमें

पता ही नहीं चल रहा था बीहड़ में हम कहाँ हैं? कार कंपनी को किसी तरह कॉल किया। गहरी निराशा और अनिश्चितता, स्थिति तब बहुत जटिल हो आई थी। अंततः पाँच घंटों बाद मदद आई। यह अनुभव एक कड़वा सच उघाड़ रहा था, "ग्रैंड कैनियन को देखने की मेरी तृष्णा का क्या यह दुष्परिणाम है?" लेकिन यह अनुभव यादगार भी बन गया, हम ऐतिहासिक हाईवे "रूट 66" पर बसे एक बहुत छोटे से गाँव "सेलिगमैन" में पहुँचे। वहाँ नेटिव इंडियंस रहते हैं। उनकी आत्मीयता और मेहमानवाज़ी देखी। यहाँ एक रेस्तराँ ने हमें वेजिटेरियन खाना बना कर खिलाया, जिन्हें वेजिटेरियन खाने का अनुभव भी नहीं था। कार गेराज की महिला का व्यवहार भारत के गाँव की किसी बुज़ुर्ग महिला-सा आत्मीय था। भारत तो याद आना ही था।

शाम सवा पाँच बजे हम ग्रैंड कैनियन नेशनल पार्क की साऊथ रिम पहुँचे। आज एक और अवसर, अंततः अब होगी सारी अभिलाषाएँ पूरी। मेरी तृष्णा को तृप्ति मिलेगी या नए पंख उग आएँगे, देखते हैं! यहाँ सूरज अब भी आसमान में चमक रहा था। एक बड़ी राहत की साँस ली मैंने और अनगिनत उम्मीदें, एक अधूरी प्रेम कहानी के पूरा होने का वक्त था। कार से बाहर आए, बाहर बहुत ठंड थी, बसंत में भी बर्फ़ जमा थी।

मैं जैकेट, टोपी पहनकर आज एक बार फिर एक साल के भीतर ही समुद्र तल से 7, 500 फ़ीट ऊँची, 277 मील वर्ग क्षेत्र तक फ़ैली, संसार के सात रमणीक अजूबों में से एक, अनुपम छटा की मल्लिका, अविस्मरणीय, मादक सौंदर्य की स्वामिनी ग्रैंड कैनियन के दक्षिण छोर के सबसे प्रचलित स्थान "मेदर पॉइंट" पर खड़ी थी। सुनहरी-स्वप्निल शाम की मीठी धूप में अनोखे लाल, नारंगी रंगों में छटा बिखेरती ग्रैंड कैनियन की घाटियों से मुझे गूँजता संगीत सुनाई दे रहा था मानों सम्पूर्ण कैनियन की हर एक चट्टान, हर कैनियन गीत गा रही हो और नीचे तलहटी में कोलोराडो नदी उस धुन पर थिरक रही हो। असंख्य घंटियों की आवाज सुनाई दे रही हो और हर कैनियन एक-एक विशाल मंदिर हो।

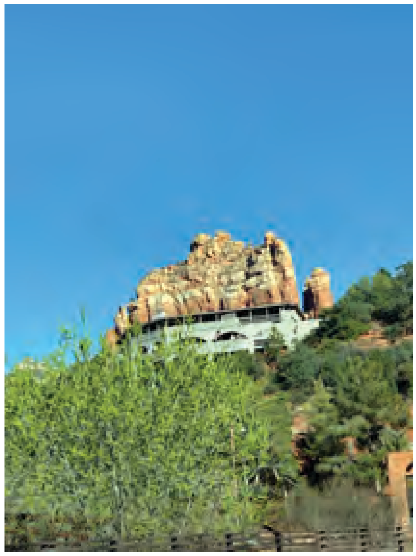

कई विशाल मंदिर यहाँ लाखों-करोड़ों वर्षों से स्थापित हों।

यहाँ ऐसा आभास होता है मानों लाखों वर्षों से कई सभ्यताएँ जन्म लेकर यहाँ एक-एक कैनियन के रूप में खड़ी हैं। भाँति-भाँति के कई विशाल क़िले अपने-अपने स्थान पर मज़बूती से खड़े हैं। आज ग्रैंड कैनियन प्रत्यक्ष, बहुत साफ़ दिखाई दे रही थी। मुझे याद आ रहे थे अजंता-एलोरा, जोधपुर के किले, मीनाक्षी टेम्पल मदुराई, विवेकानंद रॉक, माण्डव, सुचिन्द्रम टेम्पल-कन्याकुमारी, महेश्वर-ओमकारेश्वर मानों सभी एक साथ आँखों के आगे आकर एक गहरी घाटी में तैर रहे हों। पूरा दृश्य एक बार आँखों में समाता नहीं था। मेरी आँखें नम थीं। तभी कानों में स्वर सुनाई पड़े "ॐ नमो भगवते वासुदेवाय"! एक बुज़ुर्ग पिता वहाँ

नाम जप रहे थे। मेदर पॉइन्ट से ग्रैंड कैनियन का भव्य दृश्य नज़र आता है। जिसमें एक कैनियन 7, 533 फुट ऊँची "विष्णु टेम्पल" का अद्भुत दृश्य नज़र आता है। यह क़ुदरत का करिश्मा ही कहिए, 55 लाख वर्ष पहले क़ुदरत की उकेरी गई ग्रैंड कैनियन की एक कैनियन की बनावट भारत में 1500 साल पहले बने विष्णु मंदिर से मिलती है। ग्रैंड कैनियन में कई विशाल कैनियन के नाम हिंदू देवताओं के नाम पर रखे गए है जैसे "शिवा टेम्पल", "ब्रह्मा टेम्पल", "बुद्धा टेम्पल", "राम टेम्पल", "कृष्णा टेम्पल" जिसे जानकर जिज्ञासा जागती है। "मेदर पॉइन्ट" से 7, 000 फ़ीट गहराई में कोलोराडो नदी बहती दिखती है, जैसे भारत में नदियों के घाट पर मंदिर बने होते हैं। यहाँ भी ऐसा ही प्रतीत हो रहा था। यह देखने वाले की मन की आँखों पर भी निर्भर करता है, धरती पर प्रकृति के इस अजूबे को आप किन नज़र से देखना चाहेंगे!

ग्रैंड कैनियन अमेरिका के एरिज़ोना राज्य के उत्तर-पश्चिम में स्थित है। यहाँ पहुँचने के लिए फ़ीनिक्स और लॉस वेगस से साढ़े चार घंटे में कार या बस द्वारा पहुँचा जा सकता है। ग्रैंड कैनियन एक नेशनल पार्क है। यह 12 लाख एकड़ तक फैला है। इस पार्क में भीतर जाने के चार रिम द्वार हैं पूर्व, पश्चिम (वेस्ट), उत्तर (नॉर्थ) और दक्षिण (सॉउथ) रिम हैं। सबसे प्रसिद्ध रिम सॉउथ है, 90 प्रतिशत पर्यटक यहीं घूमने आते हैं। यहाँ ग्रैंड कैनियन विलेज (गाँव) है, जिसमें होटल, रेस्तराँ के साथ बाक़ी सारी सुख-सुविधाएँ हैं। लेकिन शाकाहारी खाना अब भी ठीक से नहीं मिलता है।

सॉउथ रिम की बारह जगहों से पार्क का दृश्य सबसे आकर्षक दिखाई देता है। उत्तर और दक्षिण की रिम के बीच 18 मीलों तक ग्रैंड कैनियन फ़ैली हुई है। नॉर्थ रिम 8000 फ़ीट से ज़्यादा गहरी है और साऊथ रिम 7000 फ़ीट से ज़्यादा गहरी है, बीच में कई छोटी-बड़ी कैनियन के कारण लंबाई बदलती रहती है। एक रिम से दूसरी रिम पर कार से जाने में साढ़े चार घंटे लगते हैं। ग्रैंड कैनियन की तलहटी में बहती कोलोराडो नदी का

उद्गम कोलोराडो राज्य के रॉकी माउंटेन्स से होता है। ग्रैंड कैनियन में पृथ्वी के धरातल में विभिन्न समय काल में आए बदलावों से बनी विभिन्न चट्टानों की परतें विभिन्न रंगों में दिखाई देती हैं और इन चट्टानों के रंगों का बहुत भौगोलिक महत्त्व है। यहाँ चट्टानों का लाल और नारंगी रंग इसे बहुत अलौकिकता प्रदान करता है।

धरती के एक छोर पर खड़े होकर पृथ्वी के भीतर की एक मील से गहरी सतह की परतों के रंगों को देखना और मीलों तक फ़ैली ऊँची-ऊँची कैनियन जो धरती के भीतर हैं, एक बहुत दुर्लभ अनुभव है। पूरे संसार में यही एक ऐसा स्थान है जहाँ पृथ्वी की भीतरी परतें एक मील से ज़्यादा खुली हुई हैं और बिना कोई श्रम किए, बिना धरती खोदे इन्हें देखा जा सकता है। ऊपरी परतें 50 लाख वर्ष, मध्य परतें 250 लाख वर्ष और निचली परतें 350 लाख वर्ष पुरानी हैं। चट्टानों से बनी इन परतों में ऊपरी परतों का रंग पहले हल्का भूरा फिर दो तिहाई लाल, उसके बाद हरा फिर तलहटी में कत्थई और अंत में काला है। तलहटी की नींव की चट्टानों को "विष्णु शिस्ट" नाम दिया गया है। यह चट्टानें 1.8 सौ करोड़ वर्ष पुरानी हैं। उसके बाद "ब्रह्मा शिस्ट", उसके कुछ लाख वर्षों बाद बनी चट्टानें को "रामा शिस्ट" के नाम से पुकारा जाता है। पृथ्वी की इस खुली दरार में पाई जाने वाली चट्टानों में भिन्न-भिन्न समय काल के जिव-जंतुओं के जीवाश्म मिलते हैं। पृथ्वी की भीतरी सतह, विभिन्न समय में होने वाले भौगोलिक परिवर्तन और विभिन्न समय काल में पृथ्वी पर रहने वाले जीवों का कैसे विकास हुआ, इनमें कौन से बदलाव आए ? भूगर्भ शास्त्र और जीव विज्ञान की इन महत्त्वपूर्ण जानकारियों के विस्तृत अध्ययन करने की विश्व में ऐसी एक ही लेबोरेटरी है। इसी कारण विश्व में यह स्थान विशिष्ट और महत्त्वपूर्ण है।

यहाँ 1000 से ज़्यादा गुफाएँ हैं लेकिन भीतर जाने की अनुमति नहीं है। विश्व की इस ऐतिहासिक धरोहर का बहुत कड़ाई से संरक्षण किया जाता है। इस स्थान पर 12,000 वर्षों से मानव की उपस्थिति के प्रमाण मिले हैं।

अमेरिका के इतिहास की दृष्टि से भी यह बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। ग्रैंड कैनियन की जलवायु में भी उसकी एक और जलवायु है, इसीलिए यहाँ कई सौ तरह के पंछियों, पशुओं, वनस्पति की प्रजातियाँ पाई जाती हैं। भू वैज्ञानिकों के अनुसार दो सौ करोड़ साल पहले एरिज़ोना राज्य छिछला समुद्री क्षेत्र था, यहाँ आठ बार समुद्री पानी भीतर तक आ गया। 800 लाख वर्ष पूर्व यह भाग समुद्र में डूबा। 500 लाख वर्ष पहले यह क्षेत्र सिर्फ दलदली था। 200 लाख वर्ष पहले पृथ्वी के भीतर लगातार होते बदलावों की वजह से इस भूभाग में कोलोराडो पठार धरती की सतह से एक मील ऊपर उठा। दबाव की वजह से यहाँ धरती में बड़ी दरार आई, उस दरार में समय-समय पर बड़ी झीलें बनी। बाढ़ के कारण यहाँ धरती का कटाव होने लगा और पचास से साठ

लाख वर्षों पूर्व कोलोराडो नदी ने इस रास्ते से बहना शुरू किया। नदी के रास्ते में कई बार ज्वालामुखी फटने से और पानी, रेत, वायुमंडल का प्रभाव और दबाव बनने से ग्रैंड कैनियन की उत्पत्ति हुई, जिसे आज हम देखते हैं। एक सदी में कोलोराडो नदी एक इंच गहरा ग्रैंड कैनियन को काटती है। परिवर्तन निरंतर जारी है। प्रकृति अपना काम कितने धीरज, तल्लीनता और तन्मयता के साथ लगातार करती रहती है!

प्रतिवर्ष यहाँ पचास लाख पर्यटक आते हैं। यात्राओं में मैं बहुत अलग-अलग लोगों से बात करती हूँ। टूरिस्ट बसों में यहाँ चीन और जापान के असंख्य पर्यटक परिवारों सहित आ रहे थे। असंख्य परिवार यूरोप से आए थे। कानों में कई तरह की भाषाएँ पड़ रही थीं। मेरे पूछने पर सभी यात्री यही कह रहे थे, यह बहुत रमणीक और अद्भुत स्थान है। यूरोप में ऐसी जगहें नहीं हैं, वहाँ की जगहें यहाँ से भिन्न हैं। 70 प्रतिशत पर्यटक बाहर देशों से यहाँ घूमने आए थे।

यहाँ विभिन्न पॉइंट्स पर रुककर ग्रैंड कैनियन के दृश्यों को देखा जा सकता है, जिसके लिए पार्क में शटल बस चलती है। यहाँ कई हाईकिंग ट्रेल बने हुए हैं जिनसे नीचे तलहटी तक और सॉउथ रिम से नॉर्थ रिम तक हाईकिंग की जाती है। खच्चर पर बैठ कर तलहटी में जा सकते हैं। तलहटी में फेंटम रेंच में रात रुकने और खाने-पीने की व्यवस्था है, कैंपिंग भी कर सकते हैं लेकिन इन सभी चीज़ों के लिए विशेष परमिट लेनी पड़ती है। कोलोराडो नदी में राफ्टिंग और कयाकिंग की सुविधा है। विभिन्न कंपनियाँ, विभिन्न तरह के टूर देती हैं जैसे बसों से, जीप से, हैलीकॉप्टर से।

कुछ क़बीले सदियों से कैनियन में और कुछ तलहटी में रहते हैं। पंद्रहवीं सदी में स्पेनिश खोजकर्ता इस क्षेत्र में पहली बार आए। अट्ठारवीं सदी तक ग्रैंड कैनियन दुनिया से छिपा रहा। सन् 1869 में खोजकर्ता वेस्ली पॉवेल ने पूरी कोलोराडो नदी की यात्रा की। उसने गवरमेंट को मरुस्थल में पानी के स्रोत्र की जानकारी दी। अब अमेरिका का

पश्चिमी तट बसने लगा। दो बड़ी झीलें बनाई गई, डेम बनाए गए। पानी के आसपास ही सभ्यताएँ पनपती हैं और यहाँ विकास होता गया। यहाँ सरकार और कबीलों की खींचातानी भी रही। सन्1870 में अमेरिका के एक भूवैज्ञानिक आर्मी ऑफ़िसर क्लारेंस डुटोन ने यहाँ मंदिरों जैसी दिखने वाली पहाड़ियों और पठारों के नाम हिंदू देवताओं के नाम पर रखे। उसने लिखा, "ऐसा लगता है मानों वायु और पानी ने स्वयं छेना और हथौड़ी लेकर इन मंदिरों को तराशा है।" सन् 1919 में ग्रैंड कैनियन एक नेशनल पार्क घोषित हुआ। यहाँ कई म्यूज़ियम हैं जैसे "यावापाई पॉइन्ट", "डेज़र्ट व्यू टॉवर", जिनमें यहाँ की भौगोलिक सरंचना के तथ्य और साक्ष्यों की प्रदर्शनी देखने को मिलती है साथ ही नेटिव इंडियंस की कलाकृतियाँ, शिल्प जो उनकी सांस्कृतिक विरासत को प्रदर्शित करते हैं, देखने को मिलते हैं।

पूरी ग्रैंड कैनियन की कहानी सुनाते चलते-चलते मैं एक ऐसे पॉइंट पर आ खड़ी हुई, जहाँ "विष्णु शिस्ट" चट्टान को रखा गया है, उसे छूकर देखा करीब दो सौ करोड़ वर्ष पुरानी चट्टान। मैं और साथी ख़ामोश अपनी-अपनी शांति की तलाश में चलते रहे। मैं आकर चुपचाप एक जगह बैठ गई थी, सामने एक अलौकिक दृश्य था। सुनहरी किरणें लाल घाटी में बसे मंदिरों के प्रांगणों में अठखेलियाँ कर रही थी, कई विशाल कैनियन सुनहली दमक रही थीं, उनके आभामंडल में बड़ी शांति और सम्मोहन था। मैंने कई वीडियो बनाए, कई तस्वीरें ली। सूरज ने जाने से पहले ग्रैंड कैनियन पर अपनी पूर्ण शक्ति से लाली बिखेर दी थी, दूर लाल पठारों के पीछे डूबता सूरज और ऊपर आसमान में चाँद उग आया था। मैं खोई हुई थी तब साथी ने मुझे ढूँढ़ लिया। मैं और साथी फिर साथ हो लिए, घूमते रहे, नीचे नदी दृष्टि से ओझल हो रही थी और टिमटिमाती रोशनियाँ तलहटी में चमक रही थीं। हमने बाहर देर तक ख़ामोश ख़ुद को प्रकृति की विशालता में समा लिया। ग्रैंड कैनियन अँधेरे में छिप गई।

अगले दिन सुबह हम आलीशान होटल

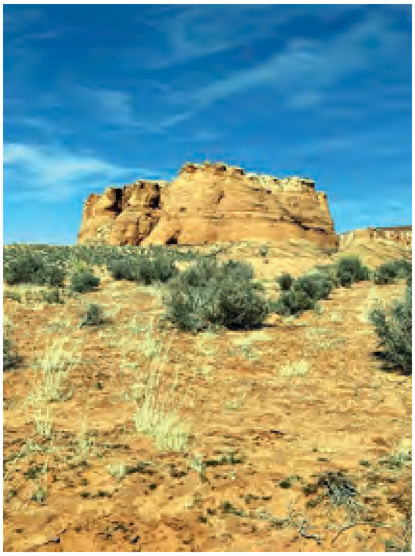

और आराम का मोह त्याग तड़के ही वापस ग्रैंड कैनियन आ गए और 22 मील लंबे रोड "डेज़र्ट व्यू ड्राइव" पर ड्राइविंग शुरू की। यहाँ कई पॉइंट्स पर रुकते-चलते एक ओर बर्फ से ढके ऊँचे पाइन वृक्षों के जंगल और पहाड़ों का आनंद लेते रहे तो दूसरी ओर ग्रैंड कैनियन की नयनाभिराम सुंदरता का रसास्वादन करते रहे, कभी लगता स्विज़रलैंड में हैं, कभी नॉर्थ कैरोलाइना के पहाड़ों पर और नज़र घुमाने पर ग्रैंड कैनियन में। हम ईस्ट रिम के अंतिम पॉइन्ट पर पहुँचे। यहाँ से धरती की समतल सतह उस पर छोटे पहाड़, ज्वालामुखी के मुख वाला पहाड़, धरती की सतह के कटे हुए किनारे, कोलोराडो नदी का घुमाव, कोनों में असंख्य कैनियन पर समय की जमीं उघाड़ परतें दिखीं साथ दिखे असंख्य पर्यटक अपने-अपने सपनों में खोए, यादों को समेटते।

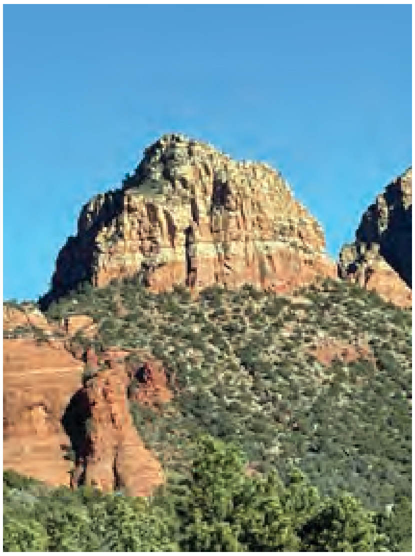

सबकी आँखों की चमक, सूरज की चमक और आज दिन खिल आया था। सच ! आज एक अप्रैल का दिन था और मौसम ने भी आज रंग बदल लिया था। हम ईस्ट रिम के द्वार से निकल असंख्य यादों को मन-मस्तिष्क में समेटे ग्रैंड कैनियन से विदा ले रहे थे। मेरी भावनाएँ मिश्रित थीं। मैंने चाहा था ग्रैंड कैनियन में थोड़ी हाइकिंग कर उसे तलहटी से देखूँगी परन्तु वक्त और हालात कुछ और कहानी लिख गए, मनस्मृतियों में कुछ और नए अध्याय जुड़ गए। हाँ एक और बात बताना भूल गई थी, कल हम अँधेरे तक प्रकृति की विशालता में ऐसे खोए रहे कि हम अपनी कार को खोज न पाए थे। शटल बस पकड़ ग़लत पार्किंग लॉट में आ गए, सुबह कार के साथ हुए हादसे को याद कर फिर किसी अनहोनी के अंदेशे से हमारे हाथ-पैर फूल गए थे। फिर एक बाईस वर्षीय युवती ने अनजानों पर भरोसा कर आधे घंटे तक खोज कर हमें हमारी कार तक पहुँचाया था। वह युवती एक बड़ी वैन में पूरे महीने भर का रहने-खाने का सामान भर अकेले लंबी यात्रा पर निकली थी। यात्राएँ अनुभव देती हैं, इंसानियत अभी भी ज़िंदा है ! मेरी तृष्णा का क्या यहीं अंत हुआ था ? मेरी अधूरी प्रेम कहानी पूरी हुई या नहीं यह तो अपनी-अपनी सोच पर निर्भर है...

यात्राओं पर अब मैं बहुत पैसा ख़र्च कर चुकी थी। एक वरदान माँगने का अवसर मिले तब क्या माँगूगी ? जब कुछ रिश्ते टूट जाते हैं तब हम क्या करते हैं आरोप-प्रत्यारोप, दोष, कमियाँ और दूसरों को आँकते हैं। कुछ रिश्तों के टूटने से मैं स्वयं में टूट रही थी। मैं अपना ग़म भुलाने के लिए प्रकृति के क़रीब आती रही। उसके क़रीब आते-आते धीरे-धीरे मैं ख़ुद के करीब आती चली गई, अपनी क्षमताओं को पहचान उन पर भरोसा करने लगी। जिस एहसास के प्रकाशमान होने की मुझे तलाश थी, उसकी तलाश ने अब नए द्वार खोले थे। प्रकृति ने मुझे क्या उपहार में दिया है? ग्रैंड कैनियन के पूर्वी द्वार से बाहर निकलते वक्त मैं यही सोच रही थी।

000

ललित निबंध

छूटने का बंधन

पंकज त्रिवेदी

जब एक कदम आगे बढ़ते हैं हम, एक कदम पीछे छूट जाती है ज़मीं। छूटता रहता है सब कुछ नई राह पर, छूटता है हर कोई इंसान एक रिश्ते से नए रिश्ते के पंख लिए। कितना कुछ छूट जाता है प्रतिदिन हमारे हाथों से, पैरों से, मन से, आत्मा से ....!

छूटते-छूटते न जाने हम कभी किसी के लिए अछूते हो जाते हैं, किसी के लिए दुश्मन तो कभी दोस्त बन जाते हैं, रिश्तों के बंधन में बँधते हुए भी अनगिनत धारणाओं से छूटने लगते हैं या फिर छूटी हुई धारणाओं के बंधन में ख़ुद को बाँधकर आगे बढ़ते हैं किसी के लिए प्रभाव या अभाव को लिए!

मेले में बच्चों को लेकर जाते है तो गैस के गुब्बारों सा मन बच्चों के बहाने हवा में लहराता है और हम पल भर के लिए बच्चे बन जाते हैं। जवानी छूट जाती है तो बुढ़ापा आता है और वहाँ से फिर कभी छूटकर मन बच्चा बन जाता है। छूटना और छोड़ना ही नियति है तो हम क्यूँ बार-बार बंधन में फँसने लगते है? छूटने की मंशा, ख़्वाहिश, इच्छा... ये सब कुछ बंधन का ही परिणाम है। तो फिर बंधन के प्रति इतनी घृणा, अस्वीकार या तर्क करने की ज़रूरत ही कहाँ?

सब कुछ छोड़कर, समाज का त्याग करते हुए, जीने का अर्थ साधुता तो नहीं है न? हम अगर धर्म की आड़ में, संसार के सुख को भोगने का त्याग करके घर से निकल पड़ते हैं। तब एक इंसान के नाम की पहचान को पूर्वाश्रम में छोड़कर नए अवतार में जन्म लेते हैं। वहाँ भी एक नया परिवेश हमारा इंतज़ार करता हुआ हमें बाँध लेता है। वह बंधन होता है समाज के लोगों की नज़रों में साधुता का! इस रूप में भी हम पर अनगिनत आँखों के द्वारा निगरानी होती है। हमारे यूनीफ़ॉर्म होते हैं एक साधु, सन्यासी या फ़कीर के। उन लोगों के लिए निश्चित किए गए यूनीफ़ॉर्म में रहना, भौतिक सुविधाओं को त्यागना, नंगे पाँव चलते हुए धर्मग्रंथों की, ज्ञान की या उपदेश की बातें करना... यह सब कुछ करना बंधन नहीं है? हम मुक्ति पाने को निकले हुए हैं फिर भी मुक्ति के नाम पर छूटने की प्रक्रिया होती ही नहीं है।

छूटने की प्रबलता हमें उन बंधनों में कुछ ज़्यादा ही घसीटकर ले जाती है, जिससे हम ऊब चुके हैं, नफ़रत का अनुभव करते हैं और 'कुछ' नहीं से शुरू होती यात्रा 'कुछ' की खोज में हमें ले जाती है आगे। हम पल-पल छोड़ते हुए कुछ न कुछ पकड़ लेते हैं। सब कुछ छोड़ने का दावा करने वाला इंसान चाहे किसी भी रूप में इस धरती पर विचरण कर रहा हो, क्या वह अपनी संवेदना, मन की भावनाएँ, अपने विचार और अपनी इच्छाओं को छोड़ पाता है? अगर इंसान से कुछ भी छूटता नहीं है तो फिर सब कुछ छोड़ने की जद्दोजहद में क्यूँ फँसने लगे हैं हम? संसार की रचना के अनुसार कोई भी इंसान दूसरे इंसान के साथ किसी भी कारणों से जुड़ा हुआ रहता है। आप उसे गुरु-शिष्य, परिवार के सदस्य, दोस्ती या किसी रिश्ते का नाम दें या नहीं भी देते हैं। इंसान इस धरती को छोड़कर कहीं भी नहीं जा सकता। अगर जाता है तो उनका शरीर जाता है, उनकी आत्मा अविनाशी है इसलिए वह किसी न किसी रूप में इस धरती पर विचरण करता है।

जब हम छूटने का अनुभव करते हैं तो हमें यह भी समझना चाहिए कि हम कहीं, किसी अलग रूप में किसी दूसरे के साथ जुड़ जाते हैं। हर कदम पर एक नई साँस, नई राह, नया साथ, नई दिशा और नया मुकाम होता है। हमें बस चलते रहना है एक इंसान के रूप में जो ईश्वर का अंश है। समय के साथ आते बदलाव में ज़िंदगी को ढालते हुए साक्षी भाव से जीना है। अपने व्यक्तित्व की आभा से बाहर रहकर ख़ुद के व्यक्तित्व को देखना है, उनके बारे में सोचना है और उसे ईश्वर के दूत के रूप में ढालते हुए ज़िंदगी को आगे ले जाना है। ज़िंदगी के साथ समय चलता है और समय ही हमारे मुकाम को तय करता है, वो ही हमें एक हाथ से दूसरे के हाथों में सौंपता है और हमें सिर्फ समय की कठपूतली बनकर उसका साथ निभाना है। छोड़ने की ज़िद्द से ज़्यादा जो छूट रहा है, भूलकर जो जुड़ रहा है उसका स्वागत करना है, उसी में हमारी नियति और ख़ुशी का स्वीकार करना है। जो कुछ हमसे छूट जाता है या हम छोड़कर कदम बढ़ाते हैं, उसके बाद हर नया क़दम हमें एक नए बंधन से जोड़ देता है।

000

पंकज त्रिवेदी
गोकुलपार्क सोसायटी 80 फिट रोड,
सुरेन्द्रनगर 363001- गुजरात
मोबाइल : 96625 14007
ईमेल- vishwagatha@gmail.com

नए वर्ष का संकल्प हमने भी ले लिया

पिछले दिनों एक कार्यक्रम में भाग लेने का अवसर मिला। कार्यक्रम था तो हिन्दी साहित्य का ही, किन्तु उसका प्रारूप एकदम भव्य था। पूँजी के साहित्य में प्रवेश से हिन्दी के थके-माँदे कार्यक्रम भी अब भव्य (...?) तथा रंगारंग (...?) होने लगे हैं। हाँ यह बात अवश्य सोचने वाली है कि इन कार्यक्रमों में कितनी हिन्दी होती है तथा कितना साहित्य होता है। लेकिन पूँजी का प्रवेश जहाँ भी हो जाता है, वहाँ इस प्रकार के प्रश्न एकदम बेमानी हो जाते हैं। ख़ैर तो बात चल रही थी भव्य तथा रंगारंग साहित्यिक कार्यक्रम की। जिधर देखो उधर साहित्यकार ही साहित्यकार दिखाई दे रहे थे। वे सब भी जो बरसों से पूँजी के विरोध की मशाल उठाए हुए हैं, वे भी अपनी-अपनी मशालों को कुछ देर के लिए बुझा कर वहाँ घूमते दिखाई दे रहे थे। असल में पूँजीवाद का विरोध केवल तब तक किया जाता है, जब तक पूँजी आपके पड़ोसी के घर आ रही हो। जैसे ही पूँजी का प्रवाह आपकी तरफ़ होने लग जाता है, आपका सारा प्रतिरोध, विरोध सब समाप्त हो जाता है। फिर बात भटक गई है, हम फिर मुद्दे पर आते हैं। तो मैं भी वहाँ एक प्रतिभागी के रूप में शामिल था, मेरे गले में भी एक पट्टा लटका हुआ था, जैसे...। चूँकि बड़ा भव्य आयोजन था, इसलिए एक साथ कई-कई सत्र चल रहे थे। मेरा भी एक सत्र था। मेरे सत्र में मेरे साथ तीन अन्य वक्ता भी थे। हमें कुल मिला कर एक घंटे का समय मिला था अपने सत्र के लिए। क्योंकि हमारे सत्र के पहले भी एक सत्र था तथा बाद में भी तुरंत ही एक सत्र था, इसलिए समय सीमा का ध्यान रखना बहुत आवश्यक था। मैं अपने लिए दस-बारह मिनट का वक्तव्य तैयार कर के ले गया था।

सत्र में हम तीन कनिष्ठ तथा एक अत्यंत वरिष्ठ थे। जैसा कि आपको इस तरह के लिट-फेस्ट कार्यक्रमों के बारे में पता होगा कि यहाँ वरिष्ठ पहले बोलते हैं, गोष्ठियों की तरह अंत में नहीं। हमारे साथ जो वरिष्ठ थे उनको संचालक ने माइक दिया, और उसके बाद मुझे ऐसा लगा जैसे सदियाँ गुज़रती रहीं, गुज़रती रहीं। वरिष्ठ महोदय जैसे विषय से संबंधित पूरा ज्ञान उसी दिन देने आये थे। बीच-बीच में वे हिकारत से हम कनिष्ठों की तरफ़ भी देख लेते थे, इस अंदाज़ में- 'इस विषय पर तुम क्या बोलोगे, मुझसे अधिक क्या ज्ञान है तुमको इस विषय का।' मंच संचालक भी संभवत: उनके वरिष्ठपने से आक्रांत थे, इसलिए वे भी इस प्रकार हो गए जैसे वे यहाँ हैं ही नहीं। इस बीच आक्रांत श्रोताओं ने भी सभागार से पलायन का क्रम प्रारंभ कर दिया था। हम तीन कनिष्ठ बैठे-बैठे जाते हुए श्रोताओं को देख रहे थे और बचे हुओं को गिन रहे थे। एक घंटे के सत्र में जब वरिष्ठ महोदय अपना वक्तव्य देकर चुप हुए तो पचपन मिनट का समय बीत चुका था। संचालक ने जब हम कनिष्ठों में से पहले को आमंत्रित किया तो इस उम्मीद के साथ किया कि संक्षेप में अपनी बात कहें क्योंकि आगे तुरंत दूसरा सत्र होना है तथा अभी मंचासीन अतिथियों को स्मृति चिह्न आदि भी प्रदान किये जाने हैं। दो से तीन मिनट स्मृति चिह्न वितरण के, मतलब हम तीनों के हिस्से में पूरा एक मिनट भी नहीं आ रहा था। कुछ सेकेंड्स हमारे हिस्से में थे। उतने अल्प समय में जो कुछ किया जा सकता था, वही हमने किया। तीनों ने आयोजक संस्था को बुलाने, खिलाने-पिलाने (पिलाने...?), पारिश्रमिक की अच्छी राशि प्रदान करने तथा और भी बहुत सारी बातों के लिए आभार प्रदान किया। जब मैं अंतिम वक्ता के रूप में आभार प्रदान कर रहा था, तब अगले सत्र के वक्ता मंच के पीछे आकर खड़े हो चुके थे। (फूट लो अब...) मैंने नए वर्ष में संकल्प वहीं ले लिया कि इस तरह के कार्यक्रमों में आगे भी शामिल होता रहूँगा, क्योंकि पैसे अच्छे मिल जाते हैं। (आप क्या सोच रहे थे कि नहीं जाने का संकल्प लूँगा..? बड़े भोले हैं आप, ख़ुद तो जाते रहना चाहते हैं, मेरी दुकानदारी बंद कर देना चाहते हैं।) बाक़ी नहीं बोल पाने का जो दु:ख है, उसको तो कहीं न कहीं बोल कर दूर किया ही जा सकता है। तो यह है मेरा इस साल का नए वर्ष 2024 का संकल्प, कैसा लगा..? **सादर आपका ही**

पंकज सुबीर

पंकज सुबीर
पी. सी. लैब, शॉप नंबर 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001
मोबाइल- 9977855399
ईमेल- subeerin@gmail.com

शिवना प्रकाशन द्वारा प्रकाशित नई पुस्तकें

सपने मरते नहीं
कहानी संग्रह
लेखक - तेजेन्द्र शर्मा
मूल्य- 300 रुपये, वर्ष- 2024

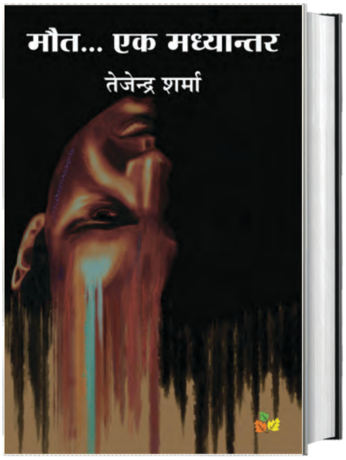

मौत... एक मध्यांतर
कहानी संग्रह
लेखक - तेजेन्द्र शर्मा
मूल्य- 300 रुपये, वर्ष- 2024

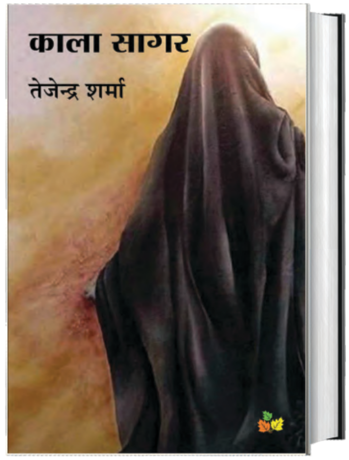

काला सागर
कहानी संग्रह
लेखक - तेजेन्द्र शर्मा
मूल्य- 300 रुपये, वर्ष- 2024

ढिबरी टाइट
कहानी संग्रह
लेखक - तेजेन्द्र शर्मा
मूल्य- 300 रुपये, वर्ष- 2024

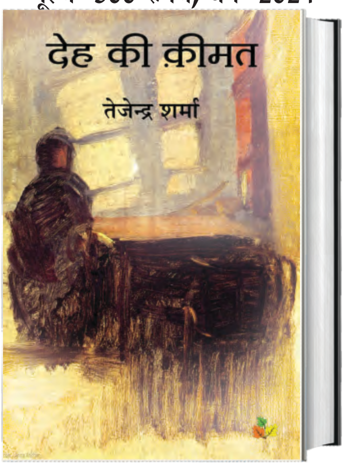

देह की क़ीमत
कहानी संग्रह
लेखक - तेजेन्द्र शर्मा
मूल्य- 300 रुपये, वर्ष- 2024

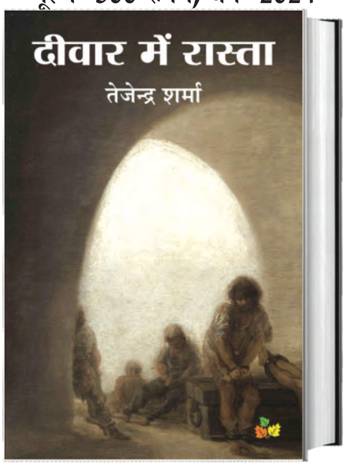

दीवार में रास्ता
कहानी संग्रह
लेखक - तेजेन्द्र शर्मा
मूल्य- 300 रुपये, वर्ष- 2024

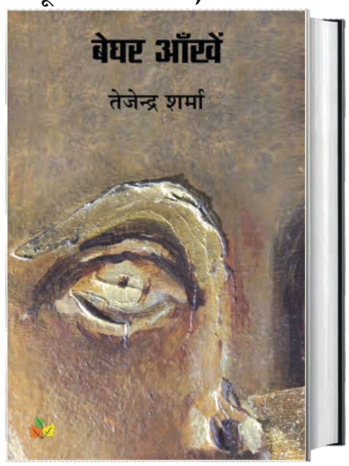

बेघर आँखें
कहानी संग्रह
लेखक - तेजेन्द्र शर्मा
मूल्य- 300 रुपये, वर्ष- 2024

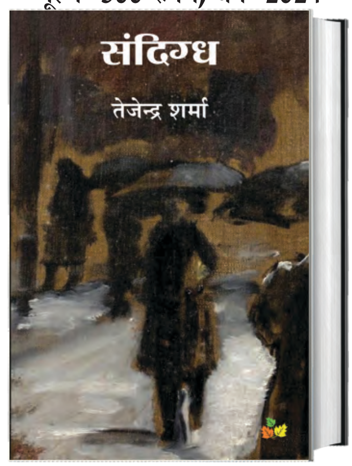

संदिग्ध
कहानी संग्रह
लेखक - तेजेन्द्र शर्मा
मूल्य- 300 रुपये, वर्ष- 2024

मेरे हिस्से का आकाश
कविता संग्रह
लेखक - ज्योति जैन
मूल्य- 220 रुपये, वर्ष- 2024

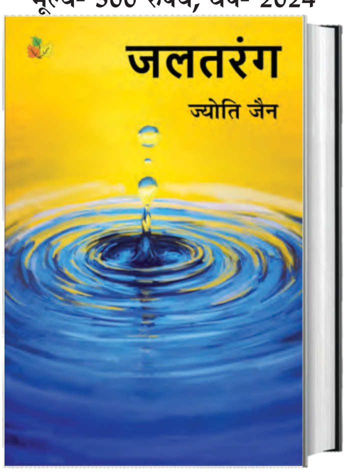

जलतरंग
लघुकथा संग्रह
लेखक - ज्योति जैन
मूल्य- 150 रुपये, वर्ष- 2024

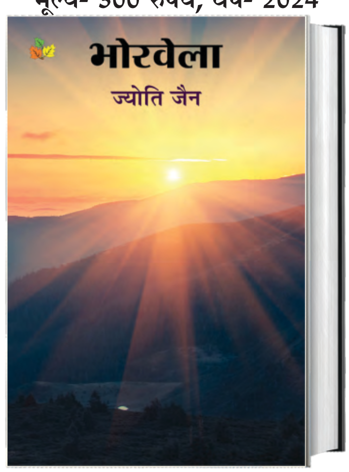

भोरवेला
कहानी संग्रह
लेखक - ज्योति जैन
मूल्य- 200 रुपये, वर्ष- 2024

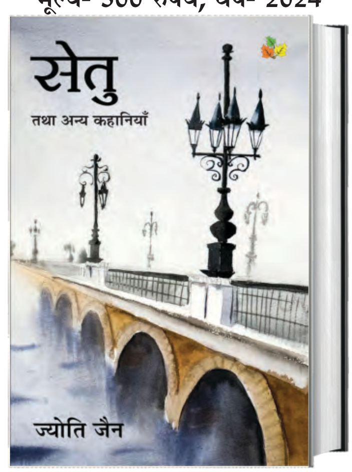

सेतु
कहानी संग्रह
लेखक - ज्योति जैन
मूल्य- 200 रुपये, वर्ष- 2024

शिवना प्रकाशन

शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने
सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in

amazon
http://www.amazon.in

flipkart.com
http://www.flipkart.com

Mobile - +91-9806162184, +91-6265665580
WhatsApp +91-8819806162
twitter https://twitter.com/shivnac
facebook https://www.facebook.com/shivna.prakashan
You Tube https://www.youtube.com/c/ShivnaCreations
Email- shivna.prakashan@gmail.com

Vibhom Swar ● Quarterly ● January-March 2024● RNI No. MPHIN/2016/70609 ● ISSN2455-9814

शिवना प्रकाशन द्वारा प्रकाशित नई पुस्तकें

विमर्श - रूदादे-सफ़र
उपन्यास
संपादक - सुधा ओम ढींगरा
मूल्य- 300 रुपये, वर्ष- 2024

उत्कृष्ट लघुकथा विमर्श
आलोचना
लेखक - दीपक गिरकर
मूल्य- 400 रुपये, वर्ष- 2024

तुम्हारे नाम
ग़ज़ल संग्रह
लेखक - नरेश नदीम
मूल्य- 325 रुपये, वर्ष- 2024

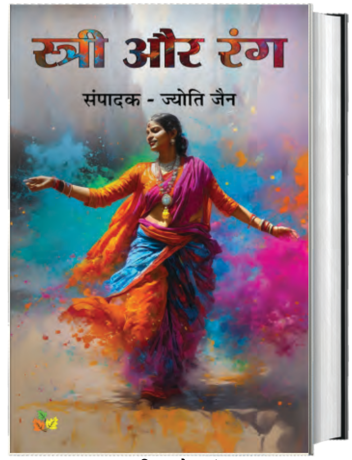

स्त्री और रंग
कविता संकलन
संपादक - ज्योति जैन
मूल्य- 200 रुपये, वर्ष- 2024

शब्द चित्र माय क्लास रूम
काव्य-चित्र
लेखक - विश्वास सोनी
मूल्य- 150 रुपये, वर्ष- 2024

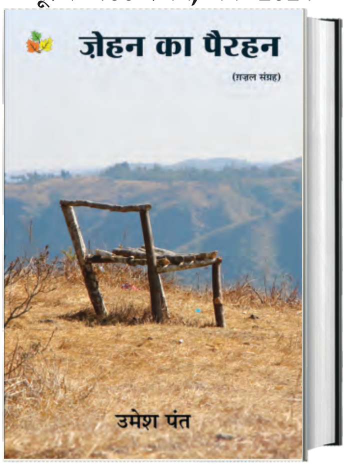

ज़ेहन का पैरहन
ग़ज़ल संग्रह
लेखक - उमेश पंत
मूल्य- 250 रुपये, वर्ष- 2024

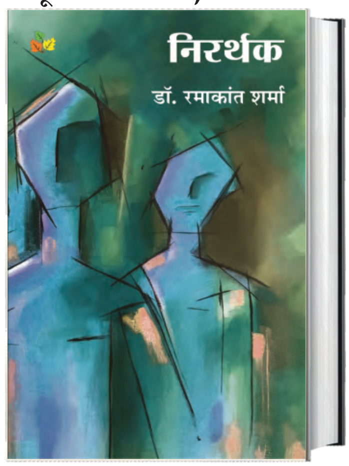

निरर्थक
उपन्यास
डॉ. रमाकांत शर्मा
मूल्य- 250 रुपये, वर्ष- 2024

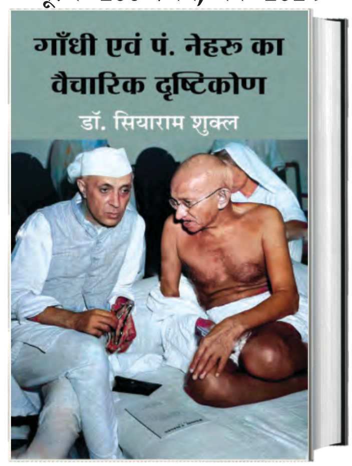

गांधी एवं पं. नेहरू का वैचारिक दृष्टिकोण (इतिहास)
डॉ. सियाराम शुक्ल
मूल्य- 200 रुपये, वर्ष- 2024

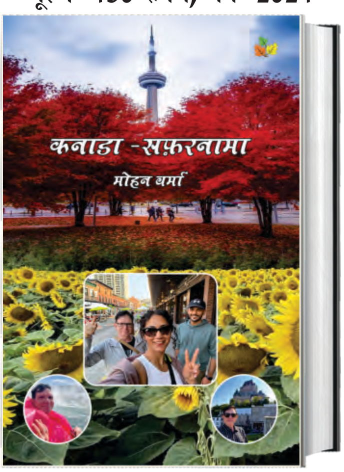

कनाडा - सफ़रनामा
यात्रा संस्मरण
लेखक - मोहन वर्मा
मूल्य- 175 रुपये, वर्ष- 2024

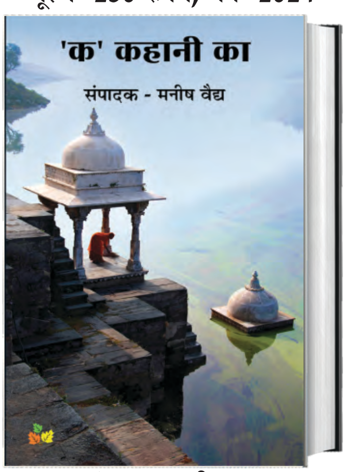

'क' कहानी का
कहानी संकलन
संपादक - मनीश वैद्य
मूल्य- 250 रुपये, वर्ष- 2024

नीलकंठी प्रार्थनाएँ
गीत-नवगीत
लेखक - रघुवीर शर्मा
मूल्य- 200 रुपये, वर्ष- 2024

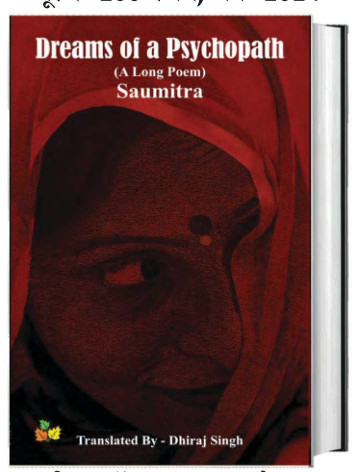

ड्रीम्स ऑफ एक सायकोपाथ
लम्बी कविता
लेखक - सौमित्र
मूल्य- 200 रुपये, वर्ष- 2024

If Undelivered Please Return to :
P. C. Lab, Shop No. 3-4-5-6, Samrat Complex Basement, Opp. Bus Stand, Sehore, M.P. 466001
Phone 07562-405545, 07562-695918, Mobile 09584425995, 07828313926, 09806162184

स्वत्वधिकारी एवं प्रकाशक पंकज कुमार पुरोहित के लिए पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001 से प्रकाशित तथा मुद्रक ज़ुबैर शेख़ द्वारा शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एम पी नगर, भोपाल, मध्य प्रदेश 462011 से मुद्रित।